रामनाम जान्यो नहीं

प्रवचन-क्रम

1. भीतर के राम से पहचान...2
2. मैं जीवन सिखाता हूं..17
3. प्रेम: समाधि की छाया..32
4. मौलिक क्रांति: ध्यान..51
5. मैं धर्म नहीं, धार्मिकता दे रहा हूं...70
6. मेरा एकमात्र प्रयोजनः तुम जागो..86
7. धर्म-अधर्म के पारः कोरा आकाश...105
8. जीवन का शंखनाद...127
9. अनुशासन नहीं--स्वतंत्रता..145 10..मनुष्य बीज है भगवत्ता का 165

रामनाम जान्यो नहीं
पहला प्रवचन

भीतर के राम से पहचान

पहला प्रश्नः ओशो, रामनाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि।।
आपने महाकवि रहीम के इस दोहे से आज प्रारंभ होने वाली प्रवचनमाला को नाम दिया हैः रामनाम जान्यो नहीं। ओशो, क्या सच ही मृत्यु सिर्फ उनके लिए है जो राम को नहीं जानते हैं? इस राम को कैसे जाना जाता है? और ओशो, पूजा क्या है?

नरेंद्र बोधिसत्व, जीवन एक अवसर है। जीवन तथ्य नहीं, केवल एक संभावना है--जैसे बीज, बीज में छिपे हैं हजारों फूल, पर प्रकट नहीं--अप्रकट हैं, प्रच्छन्न हैं। बहुत गहरी खोज करोगे तो पा सकोगे। पा लोगे तो जीवन धन्य हो जाएगा। फूलों की सारी सुगंध फिर तुम्हारी है, और उनके सारे रंग भी, और उनकी कोमलता, और उनका सौंदर्य, और उनसे प्रकट होने वाली परमात्मा की अनुभूति। फूल तो नृत्य हैं अस्तित्व के। फूल तो आकांक्षा हैं पृथ्वी की आकाश
के तारों को छू लेने के लिए। लेकिन जो बीज ही रह जाए, वह अभागा है--हुआ भी और न भी हुआ; व्यर्थ ही हुआ। होने और न होने में क्या भेद? अगर बीज ही रह जाना है, तो न भी होते तो भी चल जाता। अंतर तो तब पड़ेगा जब वसंत आएगा। अंतर तो तब पड़ेगा जब फूल हवाओं में और सूरज की किरणों में नाचेंगे। अंतर तो तब पड़ेगा जब मधुमक्खियां और तितलियां उनके पास गीत गाएंगी। उस रास से अंतर पड़ेगा। फूल की बांसुरी पर जब पक्षी अपनी धुन बिठाने लगेंगे, तब बीज को पता चलेगा कि मैं वस्तुतः क्या था। वह नहीं था जो दिखाई पड़ता था; वह था जो कभी दिखाई नहीं पड़ता था। दृश्य नहीं था, अदृश्य था।
लेकिन स्मरण रहे कि बीज को तोड़ कर तुम फूल नहीं पा सकते हो। बीज को खंड-खंड करके फूल पाना तो दूर, फूलों की संभावना भी समाप्त हो जाएगी।
और तर्क यही करता है--बीज को तोड़ता है, टुकड़े-टुकड़े करता है, इस आशा में... आशा पर संदेह नहीं, मंशा पर संदेह नहीं, भावना बुरी नहीं, मगर भ्रांत है, मूढ़ है, अंधी है। तर्क बीज को तोड़ता है; सोचता है छिपे हैं फूल भीतर, जैसे तिजोड़ियों में खजाने छिपे होते हैं। तोड़ो तिजोड़ी, खजाने मिल जाएंगे।
लेकिन फूल यूं नहीं छिपे होते।
इसलिए तर्क आदमी में खोजने चलता है, लेकिन परमात्मा को नहीं पाता। आदमी को तोड़ लेता है, हड्डी-मांस-मज्जा पाता है, और कुछ भी नहीं। इससे तो न तोड़ा आदमी ही बेहतर था; कम से कम चमड़ी के भीतर व्यर्थ का कचरा तो छिपा था।
तर्क उसको भी उघाड़ देता है। घाव भरते नहीं और मवाद बाहर आ जाती है। फूल तो उगते नहीं; फूल तो दूर, कांटों की संभावना तक असंभव हो जाती है। तर्क इस पृथ्वी पर सबसे अधार्मिक वस्तु है।
इसलिए जो लोग धर्म के पक्ष में तर्क देते हैं, उनसे ज्यादा मूढ़ और कोई
भी नहीं। विक्षिप्त हैं वे लोग। धर्म की खोज प्रेम की खोज है। प्रेम का रास्ता बिल्कुल ही भिन्न है।
बीज को तोड़ना नहीं है, गहरी जमीन देनी है। जमीन से पत्थर, कंकड़, कूड़ा- करकट अलग करना है। जमीन को इस योग्य बनाना है कि बीज को आत्मसात कर ले। खाद देनी है। पानी देना है। सूरज की किरणें तो आ ही रही हैं, उन्हें बीज तक पहुंचने देना है। सूरज का उत्ताप अत्यंत जरूरी है ताकि बीज में छिपा हुआ जीवन गतिमान हो सके, सूरज की अग्नि जरूरी है ताकि बीज के भीतर छिपी अग्नि को आह्वान मिल सके, चुनौती मिल सके। सूरज बाहर द्वार पर दस्तक देता है और भीतर बीज के क्रांति मचनी शुरू हो जाती है।
मिट्टी पचा लेगी बीज के अहंकार को। क्योंकि बीज के चारों तरफ जो पर्त है, वही अहंकार है। उसी के कारण बीज के और अस्तित्व के बीच में बाधा है, अवरोध है, दीवाल है। बीज जैसे बंदी है। जैसे उसके हाथ और पैरों पर जंजीरें हैं। मिट्टी पचा लेगी बीज की जंजीरों को। मिट्टी से ही बनी हैं, इसलिए

पचाना कठिन नहीं। बीज के चारों तरफ खड़ी दीवालों को मिट्टी आत्मसात कर लेगी, आत्मलीन कर लेगी। और बीज में बंद आत्मा को मुक्त कर देगी।
वही आत्मा फूल बनती है। वही आत्मा सुगंध बनती है। वही आत्मा आकाश की तरफ उठने लगती है। फिर उसे पूजा कहो, प्रार्थना कहो, ध्यान कहो या जो मर्जी हो वह कहो। नाम सब गौण हैं।
एक बात स्मरण रखना, कुछ चीजें हैं जो हमेशा जीवन में नीचे की तरफ जाती हैं; और कुछ चीजें हैं जो हमेशा ऊपर की तरफ जाती हैं। जैसे दीये की लौ हमेशा ऊपर की तरफ जाती है; फूल की सुगंध हमेशा आकाश की तरफ पंख फैलाती है। जैसे ही बीज टूटता है--तर्क से नहीं, भूमि में समर्पित होकर--गलता है अपनी मर्जी से, अपनी अभीप्सा से, वैसे ही क्रांति घट जाती है। एक नये जीवन का सूत्रपात होता है। अगर बीज को तुम गिराओ पहाड़ से तो नीचे की तरफ जाएगा और सुगंध ऊपर की तरफ जाएगी। मिट्टी का दीया नीचे की तरफ जाएगा, लेकिन मिट्टी के दीये में जलती हुई ज्योति सूरज की तलाश करेगी; सूरज ही उसका स्रोत है। दीये में दो का मिलन हो रहा है--आकाश का और पृथ्वी का। बीज में भी दो का मिलन हो रहा है--अदृश्य का और दृश्य का। दृश्य पर मत अटक जाना।
और दृश्य पर ही अटके हैं लाखों-करोड़ों लोग।
इसी बात की याद है रहीम के इस दोहे में--
रामनाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि।।
"रामनाम जान्यो नहीं।"
राम से अर्थ मत ले लेना दशरथ-पुत्र राम का, नहीं तो भूल हो जाएगी; नहीं
तो बीज मुक्त होने की संभावना खो देगा। राम तो दशरथ-पुत्र राम से बहुत पुराना नाम है। स्वभावतः, नहीं तो दशरथ अपने बेटे को राम नाम कैसे देते? नाम तो पुराना रहा होगा। नाम तो पहले से रहा होगा। और भी राम हो चुके थे, परशुराम हो चुके थे। उनका कुल नाम का मतलब इतना ही है--फरसे वाले राम।
कथा तो यह है कि बाल्मीकि, इसके पहले कि उसने रामायण लिखी, लुटेरा था, हत्यारा था, डकैत था। नारद को एक सुबह उसने अपनी वीणा पर संगीत छेड़े जंगल से गुजरते देखा। रोका, और कहा कि जो भी हो तुम्हारे पास रख दो!
बहुत लोगों को रोका होगा जिंदगी में, वही उसका धंधा था, लेकिन नारद जैसा व्यक्ति उसे पहली बार मिला था। उसने दो तरह के लोग जाने थे। एक, जो रोकने से डर जाते थे, भयभीत हो जाते थे, थर-थर कांपने लगते थे। उसका नाम ही इतना भयंकर था--बाल्या भील तब उसका नाम था। उसके नाम से ही लोगों की छाती दहक जाती थी। माताएं अपने बच्चों को डराती थीं कि भीतर हो जाओ, बाल्या आ रहा है; अगर गड़बड़ की तो बाल्या को दे देंगे। तो या तो लोग घबड़ा जाते, गिड़गिड़ाने लगते, हाथ-पैर जोड़ने लगते, जो पास होता दे देते; या तलवारें खिंच जातीं, मरने-मारने को तैयार हो जाते। बस दो ही तरह के लोग देखे थे--या तो भयभीत और या फिर मरने-मारने को राजी; कायर या हिंसक। लेकिन नारद एक तीसरे तरह के व्यक्ति थे, इसका बाल्या को पहली दफा अनुभव हुआ। और उसी ने उसके जीवन में क्रांति ला दी।
नारद का गीत तो चलता ही रहा। जिसे सच्चा गीत मिल गया है, वह रुकता ही नहीं। नारद की वीणा तो बजती ही रही। जिसके भीतर की वीणा बज उठी हो, उसकी बाहर की वीणा को बजने से कौन रोक सकता है? और बाहर की वीणा टूट भी जाए तो भी कुछ अंतर नहीं पड़ता, भीतर की वीणा अहर्निश बजती रहेगी। नारद का गीत जारी रहा। न तो नारद भागे, न गिड़गिड़ाए, न लड़ने को तैयार हुए। बाल्या ठिठका। यह आदमी नये ढंग का था। कहा कि समझे नहीं क्या? मैं कहता हूं जो भी पास हो, मुझे दे दो।
नारद ने कहा, पास तो मेरे बहुत कुछ है, मगर तुम ले सकोगे? पास तो मेरे राम है, मगर लेने की तुम्हारी तैयारी है? मैं तो खोजता ही फिरता हूं उन दीवानों को जो राम को लेने के लिए तत्पर हों। क्या तुमने मुझे पागल समझा है? किसलिए यह वीणा बजा रहा हूं? और किसलिए यह गीत है? और किसलिए यह दूर जंगलों में भटक रहा हूं? अरे उन्हीं की तलाश है जो लेने को राजी हैं। तू लेने को राजी है?
यह और मुश्किल बात थी। इस धन का नाम तो बाल्या ने सुना ही नहीं था। यह कौन सा धन है राम? न कोई पहचान थी, न कोई परिचय था इस धन से।

पूछा कि यह क्या है? सुना नहीं। ये जेवर कभी देखे नहीं। ये आभूषण परिचित नहीं। तुम किस राम की बात कर रहे हो?
नारद ने कहा, मेरे भीतर अनंत का संगीत उठा है, अनाहत नाद उठा है। मेरे भीतर की हृदय-तंत्री बज उठी है। और अब एक ही आकांक्षा है, एक ही अभीप्सा है कि कितना बांटूं! कितना बांटूं! कितनों को बांट सकूं! यह अपूर्व धनराशि, जितना बांटो बढ़ती जाती है। तुम मुझे लूट न सकोगे। और बाल्या, मैं तुझे सावधान करता हूं कि मुझे लूटने चला तो खुद लुट जाएगा! यह सौदा बड़ा मंहगा है। तू सोच ले। अगर तू लुटेरा है तो हम भी लुटेरे हैं। और तू क्या खाक लूटेगा! बाहर की कुछ चीजें छीन सकता है, तो ज्यादा मेरे पास कुछ है नहीं। यह वीणा है, यह तेरी रही। मगर यह वीणा तो केवल उपकरण है, यह तो भाषांतर का एक उपाय है। जो मेरे भीतर है, उसे कोई भी छीन नहीं सकता। मृत्यु भी नहीं छीन सकती। तू अपनी तलवार म्यान में वापस रख ले। नाहक तेरा हाथ दुखने लगा होगा। मुझे तुझ पर दया आती है। मगर मैं देने को राजी हूं। मगर यह मामला यूं है कि लेने वाला पहले राजी होना चाहिए।
बाल्या ने पूछा, क्या करना होगा लेने के लिए?
तो नारद ने कहा, यह जो राम है, यह जो शब्द है राम, इसकी गुहार मचानी होगी। यह तेरे हृदय में, तेरी श्वासों में यूं ओत-प्रोत हो जाए कि जागे तो जागे, सोए तो सोए, मगर अहर्निश राम की धारा तेरे भीतर चलती रहे। तेरे हृदय की धड़कन राम का गीत बन जाए। तेरी श्वास-श्वास राम का ही अनुच्चार हो जाए। तू चुप भी रहे तो भी तेरे भीतर नाद बजता ही रहे--अखंड, अहर्निश। तब तू जीवन की परम संपदा को पाएगा। तू क्या फिजूल की बातें इकट्ठी करने में लगा है! यह चार दिन की जिंदगी है। यह कचरा इकट्ठा करके क्या करेगा? और जिस ढंग से तू इकट्ठा कर रहा है, मंहगा सौदा है। बहुत पछताएगा पीछे। मिली थी जिंदगी क्या पाने को और कचरा इकट्ठा करने में गंवा दी!
नारद की वह अपूर्व प्रतिमा, नारद का वह अदभुत रूप, वह अपूर्व क्षण, जंगल का वह सन्नाटा, वीणा पर छिड़ा हुआ मद्धम-मद्धम राम का गीत, नारद की वह आंच--बाल्या अभिभूत हो गया। अक्सर यूं होता है कि जिनको तुम तथाकथित संत कहते हो, वे ज्यादा चालबाज होते हैं, ज्यादा हिसाबी-किताबी होते हैं। बाल्या सीधा-सादा आदमी था, साधारण अपराधी था। लुटेरा था। अक्सर यूं होता है कि सीधे-सादे लोग, चाहे वे लुटेरे ही क्यों न हों, कहीं ज्यादा निर्दोष होते हैं। बात चोट कर गई।
नारद ने कहा, तू यह सारा धंधा कर रहा है लूटपाट का, किसलिए? बच्चों के लिए, पत्नी के लिए, पिता के लिए?
उसने कहा, निश्चित! परिवार है, उसकी चिंता मुझे करनी है।
तो नारद ने कहा, एक काम कर, तू पूछ आ कि इस सबके करने में वे भागीदार हैं या नहीं? और इसके परिणाम में जो भी तुझे भोगना पड़ेगा, उसमें उनकी हिस्सेदारी रहेगी कि नहीं?
बाल्या ने कहा, मुझे धोखा देने की कोशिश मत करना। यूं मत करना कि मैं
घर जाऊं और तुम भाग जाओ।
नारद ने कहा, तू मुझे इस वृक्ष से बांध दे।
बाल्या नारद को वृक्ष से बांध गया।
बंधे हुए नारद की भी वीणा बजती रही। जो मुक्त है, वह जंजीरों में भी मुक्त है। जो मुक्त है, वह कारागृह में भी मुक्त है। और जो मुक्त नहीं है, वह मुक्त आकाश के नीचे भी मुक्त नहीं है; हजार जंजीरें उसे वहां भी घेरे हैं।
बाल्या गया घर, उनसे पूछा। पत्नी ने कहा कि मुझे क्या पता तुम कैसे कमाते हो! मुझे विवाह करके ले आए थे, उस दिन तुमने जिम्मा लिया था मेरे भरण-पोषण का। तुम जानो तुम्हारा काम जाने! मेरा पेट भरना चाहिए, मेरा तन ढंकना चाहिए। मेरी क्या भागीदारी? मुझे पता नहीं कि तुम क्या करते हो, कहां से धन लाते हो। मेरी कोई भागीदारी नहीं।
बूढ़े पिता ने कहा, मेरा इसमें क्या लेना-देना है? यह तुम्हारा कर्तव्य
है कि बूढ़े पिता का भरण-पोषण करो। अब तुम पुण्य से करते हो कि पाप से, यह जिम्मेवारी तुम्हारी है।

सब इनकार कर गए। छोटे-छोटे बच्चे भी इनकार कर गए। बाल्या तो सकते में
आ गया। जिनके लिए मैं अपने जीवन को गंवा रहा हूं, उनमें से कोई भी मेरे पाप का भागीदार नहीं है!
लौटा तो दूसरा ही आदमी था। नारद को छोड़ा उसने, पैरों पर गिर पड़ा, और कहा कि मुझे दे दो वह धन, दे दो वह धन जिसको तुम राम कहते हो!
और बाल्या को नारद ने प्रभु-स्मरण की कीमिया दी। मगर बेपढ़ा-लिखा आदमी था, इसलिए कहानी बड़ी प्रीतिकर है कि वह भूल गया कि राम-राम राम-राम जपना है, वह मरा-मरा मरा-मरा जपता रहा। यूं तुम जोर-जोर से राम-राम राम-राम राम-राम जपोगे तो वह मरा-मरा मरा-मरा प्रतीत होने लगेगा। एक राम दूसरे पर चढ़ जाएगा। एक राम दूसरे से मिल जाएगा, बीच में जगह न रह जाएगी। तो राम-राम लिखा है कि मरा-मरा लिखा है, तय करना मुश्किल हो जाएगा। बेपढ़ा-लिखा आदमी था। लेकिन कहानी कहती है कि वह मरा-मरा जप कर परम सिद्धावस्था को उपलब्ध हुआ।
यह राम के जीवन के पहले की घटना है। राम पुराना नाम है।
और यह भी प्रीतिकर है स्मरण रखना कि बाल्या जब मरा-मरा जप कर... ख्याल रखना, सवाल भाव का है, विधि का नहीं। लोग विधियों को ही बिठाने में मर जाते हैं, भाव की चिंता ही नहीं लेते! लोग संस्कृत कंठस्थ करने में मर जाते हैं। सोचते हैं कि मंत्र जब तक भाषा की दृष्टि से शुद्ध न होगा तब तक कैसे सिद्ध होगा! और यह अपूर्व कथा हमारे पास है कि भाषा की अशुद्धि तो दूर, राम और मरा में क्या लेना-देना है! सच पूछो तो बात ही उलटी हो गई। राम यानी जीवन का परम सूत्र और मरा यानी मृत्यु। राम यानी जीवन! जो जीवन को पा सका मृत्यु को जप कर, किस बात की सूचना है? इस बात की सूचना है कि असली सवाल भाव का है; असली सवाल त्वरा का है; असली सवाल भीतर की आकांक्षा का है, अभीप्सा का है; बाहरी सवाल नहीं है।
और बाल्या भील ने ही राम की कथा लिखी। यह भी बात बहुत सोचनीय है कि राम
के पहले बाल्या भील ने राम की कथा लिखी। राम बाद में हुए, कथा पहले आई। राम की पूरी कहानी बाल्या भील ने लिखी। जिसके हृदय में परमात्म की प्रतीति हुई हो, उस हृदय से जो भी निकले वह सच हो जाता है। जिस हृदय में राम का साक्षात्कार हुआ हो, उस हृदय से असत्य के निकलने की संभावना ही नहीं रह जाती। इसलिए कथा पहले लिखी और फिर कहानी घटी। घटना पड़ा, मजबूरी थी। बाल्मीकि लिख गए तो वैसा ही होना जरूरी था।
तो एक बात स्मरण रखना कि रहीम का कोई संबंध दशरथ के बेटे राम से नहीं है, न मेरा कोई संबंध। राम तो केवल एक प्रतीक है। हमारे पास एक पूरा ग्रंथ है, विष्णु-सहस्रनाम, जिसमें भगवान के हजार नाम उल्लेख किए गए हैं। हजार प्रतीक है अनंत का। सभी नाम उसके हैं। इसलिए नाम पर मत अटकना।
यह जो कहा है रहीम नेः "रामनाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।"
रामनाम तो तुम सभी जानते हो। रामनाम कौन नहीं जानता? लेकिन इस जानने
की बात नहीं है। जानने से मतलब जानना है, मानना नहीं। जानने से अर्थ साक्षात्कार है। जानने से अर्थ प्रतीति है, स्वाद है, अनुभूति है। यूं तो कोई भी राम का नाम जानता है। सारी दुनिया राम का नाम जानती है। हर साल तो राम की कथा देखते हो, राम की कथा सुनते हो, रामलीला देखते हो। लेकिन यह जानना नहीं है। मानना कभी भी जानना नहीं बन पाता। और जिसने मानने से शुरू किया है, वह जानने से वंचित रह जाता है। इसलिए पहला कदम जानने की तरफ है-- मानने को छोड़ देना। मानना यानी झूठ। और झूठ से यात्रा शुरू करके कोई कैसे सत्य तक पहुंच सकता है? गलत से चलोगे तो गलत तक ही पहुंचोगे। पहला कदम बहुत जरूरी है, सोच कर उठाना। क्योंकि पहला कदम ही मंजिल की दिशा और मंजिल का अंतिम स्वभाव निर्णय करता है। सच पूछो तो पहला कदम आधी यात्रा है। "रामनाम जान्यो नहीं।"
इससे यह मत समझ लेना कि तुम्हें तो रामनाम पता है, तो यह रहीम का सूत्र तुम्हारे लिए नहीं। यह तुम्हारे लिए ही है। रहीम खुद तो मुसलमान थे, फिर भी बात बड़ी गहरी कही--रामनाम जान्यो नहीं। और मुसलमान के ओंठों से यह बात और भी गहरी हो जाती है।
साफ है कि रहीम के मन में कोई अंधश्रद्धा नहीं थी हिंदू या मुसलमान होने की। कोई पक्षपात नहीं था। कोई सिद्धांतों की दीवाल नहीं थी। आंखें

साफ थीं। चीजों को वैसा ही देख सकते थे, जैसी हैं। दर्पण की तरह निर्मल रहे होंगे।
"रामनाम जान्यो नहीं।"
मानो मत अगर जानना है। मानने को गिरा दो अगर जानना है। पीड़ा होगी गिराने में, क्योंकि सदियों-सदियों से माना है, पूजा है, आराधा है, हृदय के मंदिर में प्रतिष्ठापित किया है। गिराओगे, लगेगा मंदिर खाली हुआ।
कितना कठिन है इस दुनिया में यह जानना कि मैं हिंदू नहीं हूं, कि मुसलमान नहीं हूं, कि ईसाई नहीं हूं, कि जैन नहीं हूं, कि पारसी नहीं हूं! कितना कठिन है! होना तो नहीं चाहिए। क्योंकि कोई बच्चा न हिंदू पैदा होता है, न ईसाई पैदा होता है, न मुसलमान पैदा होता है। सभी बच्चे निर्दोष आते हैं। सभी बच्चे विश्वासमुक्त आते हैं। हम उन्हें भरते हैं कचरे से। फिर कचरे को चाहे तुम अच्छे-अच्छे नाम दे दो--गऊमाता का गोबर कहो, जो तुम्हारी मर्जी हो।
हिंदू पंचामृत पीते हैं। उसमें गाय की पांच चीजों को मिला कर पंचामृत बना लेते हैं। गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घी--ऐसी पांच चीजों को घोल-मेल करके पंचामृत बन गया। पंचामृत शब्द के पीछे क्या छिपा है, यह कोई नहीं देखता। और जब ब्राह्मण तुम्हें पंचामृत देता है तो तुम अहोभाव से स्वीकार करते हो। और वही तुमसे कहे, गोबर लोगे, गऊ-मूत्र लोगे? तो तुम्हारा जी मिचलाएगा। तुम कहोगे, कैसी बातें करते हो, होश की बातें करो। मगर पंचामृत! प्यारा शब्द है, सारी गंदगी को छिपा जाता है। प्यारे शब्दों की आड़ में बड़ी मूढ़ताएं छिपी हुई हैं।
रामनाम जान्यो नहीं, इसका अर्थ समझ लेना। जिन्होंने भी ईश्वर को मान रखा है, वे ईश्वर को कभी नहीं जान सकेंगे।
इस दुनिया में सबसे ज्यादा झूठे लोग वे आस्तिक हैं जिन्होंने बिना तलाश किए, बिना खोजे, बिना किसी अन्वेषण के, और ईश्वर को स्वीकार कर लिया है।
यह कैसी नपुंसकता है? और इस नपुंसकता की छाया में सारी पृथ्वी जी रही है। ये बड़े-बड़े चर्च, ये बड़े-बड़े मंदिर, ये आकाश छूती हुई मस्जिदों की मीनारें, तुम्हारी नपुंसकता को छिपा रही हैं, और कुछ भी नहीं। ये मंदिरों में बजते हुए घड़ियाल, ये मस्जिदों से उठती हुई अजानें, यह गिरजों में उठती हुई प्रार्थना, यह शिवालयों में जलती हुई धूप-दीप--यह सब आडंबर है, यह धोखा है, यह बेईमानी है; यह तुम्हें इस बात के लिए राजी रखना है कि मानना काफी है, जानने की कोई जरूरत नहीं। हर रविवार को चर्च हो आए, इतना काफी है। कभी- कभी सत्यनारायण की कथा करवा ली, वह भी उधार पंडित से, दो कौड़ी के आदमी से; या कभी मंदिर में प्रसाद बंटवा दिया, या कभी व्रत-उपवास कर लिया, बस काम पूरा हो गया। तुम किसको धोखा दे रहे हो?
मैं तुम्हारी आंखों में झांकता हूं तो मैं पाता हूं कि तुम किसी और को नहीं, अपने को ही धोखा दे रहे हो। और इस दुनिया में सबसे बड़ा धोखा अपने को धोखा देना है।
मानो मत अगर जानना है तो। जानने का पहला कदम है--मानने से मुक्त हो जाना। अगर तुम मुझसे पूछो, मेरा गणित पूछो, थोड़ा उलटा लगेगा, थोड़ा बेबूझ लगेगा, मगर मेरी भी मजबूरी है। मैं सत्य को वैसा ही कहने को मजबूर हूं जैसा है। अगर तुम सच में नास्तिक हो जाओ तो शायद कभी तुम आस्तिक भी हो सकते हो। नास्तिकता और आस्तिकता में विरोध नहीं है। नास्तिकता सीढ़ी है--प्राथमिक सीढ़ी है--आस्तिक होने के लिए।
अगर मेरा वश चले तो मैं हर बच्चे को नास्तिक बनाऊं। हर बच्चे को जिज्ञासा दूं, प्रश्न दूं, खोज की आकांक्षा दूं। हर बच्चे के जीवन में एक तीव्र प्रेरणा भरूं कि तू जानना, मानना मत; और जब तक तू न जान ले, ठहरना मत। बुद्ध ने जाना होगा तो बुद्ध पहुंचेंगे, और नानक ने जाना होगा तो नानक पहुंचेंगे, और कबीर ने जाना होगा तो कबीर पहुंचेंगे। उनके पहुंचने से तेरा पहुंचना नहीं हो सकता। तू जानेगा तो ही तू पहुंचेगा।
और पहले चाहिए कि तुम्हारे चित्त की स्लेट खाली हो जाए। पोंछ डालो जो
भी दूसरों ने लिख दिया है। धो लो स्लेट, साफ कर लो। कोरी कर लो तुम्हारी किताब।

और मजा यह है कि कोरी किताब तुमने क्या की कि जैसे राम को आमंत्रण मिल जाता है। कोरी किताबों पर उतरता है वह फूल। कोरी किताबों पर आती है वह किरण। कोरी किताबों पर होता है वह विस्फोट। कोरी किताब यानी निर्दोष चित्त--मान्यताओं से, विश्वासों से मुक्त।
"रामनाम जान्यो नहीं।"
फिर तुम जान सकोगे। फिर ही जान सकोगे।
"भई पूजा में हानि।"
रहीम कहते हैं, पूजा खो गई, क्योंकि राम का नाम ही लोग भूल गए। राम से पहचान ही न रही। राम के और लोगों के बीच में पंडित और पुजारी और पुरोहित और इमाम और पादरी और पोप, न मालूम कितने लोग खड़े हो गए! राम और तुम्हारे बीच इतनी भीड़ खड़ी है कि तुम्हें लोगों की सिर्फ पीठें दिखाई पड़ रही हैं। राम का चेहरा तुम्हें कहां से दिखाई पड़े!
हटा दो इस भीड़ को। पूजा में हानि हो गई है। पूजा यूं चल रही है, मगर थोथी। तुम भी जानते हो भलीभांति। मंदिर में जाकर झुक भी जाते हो, मगर तुम्हारा अहंकार नहीं झुकता। बल्कि अक्सर यह होता है, अगर मंदिर में भीड़-भाड़ हो तो तुम और रंग-रौनक से झुकते हो, शोरगुल मचाते हो।
मैं छोटा था तो मेरे गांव के जिस मंदिर में मुझे ले जाया जाता था, जैन मंदिर था, वर्ष भर तो कोई खास जाता न था, लेकिन पर्युषण के दिन जब आते तो उन दस दिनों में बड़ी भीड़ होती थी। वे दस दिन लूट के समझो। और लोगों ने भी क्या हिसाब बनाए हुए हैं! वे दस दिन आते हैं बरसात के दिनों में--जब न खेती हो सकती, न दुकानदारी हो सकती, न कोई और धंधा हो सकता; सब दुकानें खाली होती हैं, किसान घरों में बैठे होते हैं, वर्षा मूसलाधार पड़ती है। कैसे कुशल लोग हैं! दस दिन खोजे भी हैं तो यूं कि कुछ खर्चा न हो। हिसाब से खोजे हैं। खाली ही बैठे हैं और मुफ्त अगर राम भी मिलता हो तो क्यों छोड़ना!
उन दस दिनों में मैंने एक मजा देखा कि जब भीड़-भाड़ ज्यादा होती तो लोग आरतियां लेकर ऐसे नाचते, वे ही लोग जिनको मैंने कभी अकेले में नाचते नहीं देखा। दो-चार आदमी होते तो बेमन से नाचते। और भीड़ अगर खास होती, तो फिर तो यूं होता कि रुकते ही नहीं, बामुश्किल रोकना पड़ता, आपे के बाहर होकर नाचते।
ऐसे एक नाचने वाले थे। एक दिन मैं उनके पीछे हो लिया। वे मुझसे पूछने लगे, मेरे पीछे क्यों चले आ रहे हो?
मैंने कहा, एक राज की बात पूछनी है। आपको हर रंग में, हर ढंग में देखा है। जब आप अकेले होते हैं तो आप पूजा की थाली उठाते भी नहीं। दो-चार आदमी होते हैं तो थाली उठाते हैं, बस एकाध दफा घुमाई, उतारी और रख दी। दस-पंद्रह हुए तो आपके पैरों में थिरक आ जाती है। और अगर सौ, दो सौ लोग इकट्ठे होते हैं तो आपको रोकना पड़ता है, पकड़ना पड़ता है। पकड़े-पकड़े हाथ में नहीं आते थे, छूट-छूट जाते थे, निकल-निकल जाते थे, फिर-फिर थाली उठा लेते थे। आखिर लोगों को दूसरे काम भी करने हैं, घर भी जाना है, भोजन भी करना है। इसका राज क्या है?
उन्होंने कहा, इसमें राज क्या? अरे अकेले नाचने में क्या सार, कोई देखने वाला भी तो होना चाहिए! साल में दो-चार ही ऐसे मौके आते हैं जब सब इकट्ठे होते हैं।
पर्युषण के अंतिम दिन तो वे ऐसा ऊधम मचा देते थे जैसे शराब पी रखी हो।
लोग झुकते भी हैं मंदिर में तो भी वह झुकना अहंकार का समर्पण नहीं है। झुकते भी हैं तो भी वह अहंकार का ही पूजन है।
और फिर पूजा के नाम पर क्या-क्या चल रहा है! न भाव है, न प्रीति है, न समर्पण है। सिर्फ एक पाखंड है। प्रतिष्ठा मिलती है, सम्मान मिलता है। लोग कहने लगते हैं--बहुत धार्मिक! संतत्व मिलता है, आदर मिलता है। मगर ये सब तो अहंकार के आभूषण हैं।
और क्या करोगे तुम पूजा में? दोहराओगे तोतों की तरह रटे हुए ग्रंथ। काश, इस तरह दोहराने से मोक्ष मिलता होता तो तोते तुमसे पहले पहुंच जाते। एक तिब्बती लामा मेरे पास मेहमान हुआ। तिब्बती लामा एक छोटा सा यंत्र रखते हैं, पूजा-यंत्र। जैसे चरखे का चाक होता है, उस चाक में स्पोक लगे होते हैं, हर स्पोक पर मंत्र लिखा होता है। अब बार-बार क्या श्लोक कहना, तो

वे बैठे-बैठे चक्र को घुमा देते हैं। दूसरे भी काम करते रहते हैं। चके को एक धक्का मार दिया, चका घूमने लगा, जितना चका चक्कर ले लेता है, जितने स्पोक ऊपर आए और नीचे गए, ऊपर आए और नीचे गए, उतने मंत्रों का लाभ हो जाता है।
यह लामा मेरे घर मेहमान था। मैंने उससे कहा कि यह तो बड़ी अच्छी तरकीब है। मैं तुझे और भी सुविधा बना देता हूं।
उसने कहा, क्या सुविधा?
मैंने कहा, तू ठहर। मैंने एक पड़ोसी इंजीनियर को बुलाया और कहा कि इसमें प्लग लगा कर इसको बिजली से जोड़ दे। यह बेचारे को बीच-बीच में बाधा पड़ती है। यह घूमता रहेगा बिजली से और इसको पुण्य-लाभ होता रहेगा।
कुछ लोग हैं जो बैठे-बैठे किताब में राम-राम, राम-राम लिखते रहते हैं। कुछ लोग हैं जो दुकान पर बैठे-बैठे हाथ में माला लिए रहते हैं और माला को थैली में छिपाए रखते हैं, और भीतर-भीतर गुरिए सटकाते रहते हैं। थैली भी इसलिए कि कोई यह न देख ले कि कभी-कभी वे गुरिया सटकाना भूल जाते हैं। और भूल ही जाते होंगे। क्योंकि मेरे सामने ही एक हलवाई रहता था। और ग्राहक आ जाते तो वह माला भी सटकाता रहता और इशारे भी करता रहता अपने नौकर को कि मार दे, डांडी मार दे! कुत्ता घुस आता तो इशारा कर देता--कुत्ते को भगाओ!
अब इस बीच में माला तो रुक ही जाती होगी। और न भी रुकी तो मन तो कुत्ते
पर जा लगा, यह माला से तो कोई संबंध रहा नहीं।
इस हलवाई की बड़ी तोंद थी। हलवाइयों की अक्सर होती है। और तोंद ही नहीं थी, तोंद में बड़ा तुंडा भी था। तुंडा हलवाई ही उनका नाम था। बिल्कुल फुग्गा थी उनकी... । और जब भी वे भाव-भक्ति से बैठे अपनी माला जपते रहते तो मैं पहुंच जाता। वे मुझे देख कर ही डरते थे। एकदम इशारा करने लगते--क्या चाहिए? मैं उनको इशारा करता--उनके पीछे ही उनकी अलमारी सजी रहती मिठाइयों की--कि फलां चीज चाहिए। वह पीछे देखा उन्होंने और मैंने उनका तुंडा बजाया। बस, फिर उनसे जो गालियां निकलती थीं, वे माला-वाला भूल जाते। मैं उनको याद भी दिलाता कि तुंडा बाबा, माला का क्या हुआ? रामनाम का क्या हुआ? वे कहते, ऐसी की तैसी माला की! मगर वे ऐसे मोटे थे कि उठ भी नहीं सकते थे, भाग भी नहीं सकते थे, मेरा पीछा भी नहीं कर सकते थे।
क्या चलता रहता है राम के नाम से! तुम्हारी अर्चना, तुम्हारी पूजा, तुम्हारी आराधना, सब धोखा है।
"रामनाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।"
होगी ही। पूजा खो गई दुनिया से। लेकिन मैं तुम्हें याद दिला दूं, पूजा
खो गई दुनिया से नास्तिकों के कारण नहीं, वैज्ञानिकों के कारण नहीं। पूजा खो गई दुनिया से पंडितों के कारण, पुरोहितों के कारण, तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोगों के कारण। अगर दुनिया को पुनः धर्म में प्रतिष्ठापित करना हो तो इसे धार्मिक लोगों से मुक्त करना होगा। इसे मंदिरों-मस्जिदों के बाहर लाना होगा। ये कारागृह हैं। इसे वेद, कुरान और बाइबिल से छुटकारा दिलाना होगा। तो शायद फिर जिज्ञासा जगे। फिर शायद आदमी पूछने लगे कि ईश्वर है? तो कहां है? तो कैसे पाया जा सकता है?
और जब तक उस परम सत्य की अनुभूति न हो तब तक तुम्हारे जीवन में फूल न खिलेंगे। तब तक तुम बासे ही रहोगे--उदास। और तुम्हारे चेहरे पर मक्खियां रहेंगी; तुम मुर्दा रहोगे। तुम एक लाश हो जो अपने को किसी तरह ढो रहे हो। हर आदमी अपनी लाश ढो रहा है।
"रामनाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि।।"
रहीम कहते हैं, एक बात ख्याल रखना, धोखा दे सकते हो तुम पंडित को, पुरोहित को; धोखा दे सकते हो लोगों को; क्योंकि लोग अंधे हैं, तुम्हारे जैसे ही अंधे हैं। और धोखा तुम दे सकते हो मंदिर में रखी हुई पत्थर की मूर्तियों को; धोखा तुम दे सकते हो कागज पर लिखी गई किताबों को; लेकिन मौत को धोखा न दे सकोगे। और जब मौत द्वार पर दस्तक देगी तब बहुत पछताओगे, बहुत-बहुत पछताओगे, क्योंकि फिर क्षण भर का भी अवसर न बचेगा।
"कहि रहीम क्यों मानिहैं।"

एक बात पक्की समझ लेना--रहीम कहते हैं--कि जब मौत के दूत तुम्हारे द्वार पर खड़े हो जाएंगे तो तुम्हारी धोखाधड़ी की पूजा-प्रार्थना को नहीं मानेंगे। मौत को तो केवल वही जीत पाता है जो अपने भीतर के अमृत को जान लेता है।
और उसी अमृत का नाम राम है, या कहो रहीम, या कहो रहमान, या कहो अल्लाह-- कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे भीतर जो अमृत छिपा है, उसको जिसने जान लिया, फिर मौत उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। यह कसौटी है। मौत ही एकमात्र कसौटी है। मौत को जो जीतने में समर्थ है, मौत जिसका कुछ भी न बिगाड़ पाएगी। शरीर तो जाएगा, शरीर मिट्टी है। तो बीज की मिट्टी तो मिट्टी में समा जाएगी। लेकिन शरीर ही नहीं हो तुम। बीज सिर्फ बीज ही नहीं है, उसके भीतर आकाश के फूल भी छिपे हैं। जिसने अपने भीतर के फूल की खिलावट देख ली, जिसने भीतर के कमल को खिलते देख लिया, उस सहस्रदल कमल की जिसे आभा मिल गई, फिर मौत उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। मौत उसके पास भी नहीं फटक सकती, बिगाड़ना तो दूर। जिसके भीतर का दीया जल गया, क्या उसके पास अंधेरा आ सकता है? मृत्यु तो अंधकार है। चूंकि तुम्हारा भीतर का दीया नहीं जला है, इसलिए तुम्हें अंधकार घेर लेता है--घेरे ही हुए है। दीया जला कि अंधकार गया।
इस दीये जलाने को ही रहीम ने रामनाम कहा है। अपने भीतर के राम को पहचानो। अपने भीतर के शाश्वत से परिचय करो। अपने भीतर के अनंत से पहचान बनाओ। और जिसने अपने भीतर के अनंत को जान लिया--कैसे जाना, यह गौण है; किस विधि से जाना यह बेमानी है।
तुम यहां आए। तुम ट्रेन से आए, बस से आए, हवाई जहाज से आए, कि पैदल चल कर आए, कि रेलगाड़ी में आए, कि बैलगाड़ी में आए--क्या फर्क पड़ता है? तुम आ गए, फर्क इससे पड़ता है। अपने भीतर के शाश्वत को जानना है। हजारों मार्ग हैं। जो तुम्हें रुचिकर लगे, जो तुम्हें प्रीतिकर लगे, उससे ही चल पड़ो। लेकिन बैठे मत रहो, चल पड़ो।
बुद्ध ने कहा हैः चरैवेति-चरैवेति।
रुकना मत, बैठना मत--चलते रहना। खोजो, चलो, अन्वेषण करो। और दूसरों की मानना मत, नहीं तो बैठे रह जाओगे।
और सारे लोग बैठे रह गए हैं। सारे लोग गोबर-गणेश हो गए हैं। दूसरों की मान कर बैठोगे तो फिर... वे भी बैठे थे किसी और की मान कर, तुम भी बैठे हो किसी और की मान कर। इससे बड़ा और कोई मनुष्य का अपमान नहीं है कि वह किसी की मान कर बैठ जाए। मेरी भी मानने की जरूरत नहीं है। चलो! खोजो! तुम्हारा जीवन है, तुम्हें अन्वेषण करना है, तुम्हें जानना है--क्या है यह जीवन? क्या है यह चैतन्य? क्या है तुम्हारे भीतर छिपा हुआ राज? कौन हो तुम अपने अंतरतम में? कौन छिपा है तुम्हारे हृदय की गुफा में--कौन सा नाद? कौन सा संगीत? कौन सा सत्य? कौन सा सौंदर्य?
और जिसने अपने भीतर के केंद्र को पहचान लिया, उसे मिल गया निर्वाण, उसे मिल गया मोक्ष, उसे मिल गया राम। राम कोई व्यक्ति नहीं है जो तुम्हें बाहर मिलेगा। राम है तुम्हारी आंतरिक संभावना। इसलिए मैंने कहा कि तुम्हें पहले ही याद दिला दूं, मेरा प्रयोजन दशरथ के बेटे राम से नहीं है। मेरा प्रयोजन तुम्हारे भीतर बैठे हुए शाश्वत के स्वर से है।
शांत होओ, मौन होओ, निःशब्द होओ, धीरे-धीरे मन की भीड़ से बाहर निकलो, चल पड़ो अपने अंतर-गृह की तरफ। जब पूर्ण सन्नाटा रह जाए, जब कोई तरंग भी न उठती हो, जब चेतना की झील यूं हो जाए जैसे दर्पण, तब सब राज खुल जाते हैं--भीतर के भी, बाहर के भी। क्योंकि वस्तुतः भीतर और बाहर के राज अलग-अलग नहीं हैं।
भीतर और बाहर शब्द उपयोग करने पड़ते हैं तुम्हारे अहंकार के कारण। अहंकार गया तो फिर भीतर ही बाहर है और बाहर ही भीतर है। फिर एक ही शेष रह जाता है।
नामा गया कोई न कोई नामाबर गया।
तेरी खबर न आई, जमाना गुजर गया।।
हंसता हूं यूं कि हिज्र की रातें गुजर गईं।
रोता हूं यूं कि लुत्फे-दुआए-सहर गया।।
अब मुझको है करार तो सबको करार है।
दिल क्या ठहर गया कि जमाना ठहर गया।।
या रब नहीं मैं वाकिफे-रूदादे-जिंदगी।

इतना ही याद है कि जीया और मर गया।।
नामा गया कोई न कोई नामाबर गया।
तेरी खबर न आई, जमाना गुजर गया।।
क्या इरादा है? यूं ही मर जाना है?
या रब नहीं मैं वाकिफे-रूदादे-जिंदगी।
क्या जिंदगी के संगीत से नावाकिफ मर जाना है? क्या जीवन की कथा से
अपरिचित मर जाना है?
या रब नहीं मैं वाकिफे-रूदादे-जिंदगी।
इतना ही याद है कि जीया और मर गया।।
बस इतना ही करना है? जीना है और मर जाना है? खाना है, पीना है, सोना है, उठना है, और मर जाना है? या और भी आकांक्षाएं हैं, अभीप्साएं हैं? या विराट की और भी पुकार आंदोलित करती है?
यह तो कोई आदमी की जिंदगी न हुई। आदमी की जिंदगी की शुरुआत ही राम की तलाश से होती है। आदमी और पशुओं में इतना ही भेद है कि पशु सिर्फ जीते हैं और मर जाते हैं, और आदमी जीने और मरने के बीच अमृत को पा लेता है।
दीवानगी कुछ इस तरह हद से गुजर गई
दुनिया की हर निगाह जो मुझ पे ठहर गई
जब गर्दिशे हयात पर मेरी नजर गई
टपकी जिगर की चोट टपक कर बिखर गई
पीकर तेरी निगाह से इक सागरे करम
मैं ढूंढता हूं गर्दिशे दौरां किधर गई आते ही तेरे अहले चमन में ऐ दिलरुबा
फसले बाहर चूम के जुल्फें बिखर गई
सदके मैं उस निगाह के तेरी नजर से जो
मेरे जिगर में तीर की तरह उतर गई
आखिर वो बेनकाब सरे बाम आ गए
इक बदनसीब "राज" की दुनिया संवर गई
परमात्मा तो राजी है प्रकट होने को, प्रतीक्षा कर रहा है। पुकार दो! दस्तक दो! और किसी और के द्वार पर दस्तक नहीं देनी है, अपने ही द्वार पर दस्तक देनी है। और परमात्मा कहीं और नहीं छिपा है, तुम्हारे भीतर छिपा है। परमात्मा यानी तुम्हारा स्वभाव, तुम्हारा स्वरूप। तुम उससे ही बने हो। तुम्हारे रोएं-रोएं में वही व्याप्त है। मगर बेहोश, नींद में खोए, हजार सपनों में दबे भूल ही गए हो कि तुम कौन हो।
धर्म है उसकी पहचान जो हमारे भीतर मौजूद है। और अधर्म है उसकी खोज जो हमारे भीतर मौजूद नहीं है, और हम लाख करके जिसे पा भी लें तो भी कभी पा न सकेंगे।
"रामनाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि।।"
और टालना मत, मत कहना कि कल। जिसने कल पर टाला, उसने सदा के लिए टाला।
करीब मौत खड़ी है, जरा ठहर जाओ।
फिजां से आंख लड़ी है, जरा ठहर जाओ।।
थकी-थकी सी फिजाएं, बुझे-बुझे तारे।
बड़ी उदास घड़ी है, जरा ठहर जाओ।।
नहीं उम्मीद कि हम आज की सहर देखें।
ये रात हम पे कड़ी है, जरा ठहर जाओ।।
अभी न जाओ कि तारों का दिल धड़कता है।
तमाम रात पड़ी है, जरा ठहर जाओ।।
फिर इसके बाद कभी हम न तुमको रोकेंगे।
लबों पे सांस अड़ी है, जरा ठहर जाओ।।
दमे-फिराक में जी भर के तुझ को देख तो लें।
ये फैसले की घड़ी है, जरा ठहर जाओ।।
मौत हमेशा करीब खड़ी है। और हमेशा यह फैसले की घड़ी है। इसे टालना मत, स्थगित मत करना, कहना मत कि कल। और यही लोग कर रहे हैं। आज करेंगे व्यर्थ, सार्थक कल। आज खोजेंगे धन, ध्यान कल। आज पद और प्रतिष्ठा, परमात्मा कल।

नहीं, बदलो इस पूरे गणित को बदलो। परमात्मा आज! ध्यान आज! तो ही तुम्हारे जीवन में क्रांति हो सकती है। और ऐसी क्रांति, जो तुम्हें अमृत के सागर में लीन कर दे। ऐसी क्रांति, जो तुम्हें मृत्यु के पार ले जाए। ऐसी क्रांति, जिसको पाते ही सब पा लिया जाता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपको पांच वर्ष से पढ़ और सुन रहा हूं और शिविर में
भी भाग लेता हूं, लेकिन अभी तक संन्यास नहीं ले पाया। जिन मित्रों को मैंने आपके बारे में बताया, उनमें से पांच मित्र संन्यास ले चुके हैं। मैं विचित्तरसिंह खानदान से हूं, लेकिन बहुत ही डरपोक हूं। मेरी समझ में कुछ नहीं आता। आप कृपा करके कुछ मार्ग-दर्शन करें।

दर्शन सिंह, यह अवस्था करीब-करीब सबकी है। ऐसे ही आदमी सदियों से जीया है। जीवन के वास्तविक प्रश्नों को टालता हुआ, आशा रखता हुआ कि कल असली समस्याओं से जूझ लेंगे, पहले छोटी-छोटी समस्याओं से तो जूझ लें। मगर छोटी समस्याओं का कोई अंत नहीं। जीवन का अंत है, समस्याओं का कोई अंत नहीं। सो आदमी टाले चला जाता है। और एक दिन मौत एक झटके में सब समाप्त कर देती है। इस दुनिया में जहां मौत घटनी ही है, भयभीत होने का क्या कारण? जहां मौत अपरिहार्य है, वहां डरने की क्या जरूरत? देर-अबेर मरना ही होगा।
इतना ही तुमसे कह सकता हूं दर्शन सिंह, यदि मुझे सुन रहे हो, यदि मुझे समझ रहे हो, और यदि प्राणों में प्यास भी उठती है संन्यास की, तो टालो मत। और मत अपने को समझाओ कि मैं डरपोक हूं। लोग ज्यादा से ज्यादा पागल ही कहेंगे न! सो कौन सा हर्ज है? यूं भी लोग क्या कहते होंगे तुम्हारे संबंध में, तुम भी जानते हो, लोग भी जानते हैं।
एक राजनेता के संबंध में एक अखबार में खबर छपी। राजनेता बहुत नाराज था। उसने अपनी पत्नी से कहा कि मुकदमा चलाऊंगा। पत्नी ने कहा, इतने उत्तेजित न हो। जो छपा है अखबार में, नब्बे प्रतिशत लोग तो ऐसा मानते ही हैं कि तुम बेईमान हो, चोर हो, लुटेरे हो। तुम्हीं क्यों, राजनीति का सारा धंधा ही यही है। अखबार में न भी छपता तो भी लोग यही मानते। सो नब्बे प्रतिशत को तो कोई खास फर्क पड़ेगा नहीं। वे तो पहले से ही जानते थे, वे इतना ही पढ़ कर कहेंगे--अरे हमें मालूम ही था। रहे दस प्रतिशत, इनमें से पांच प्रतिशत तो पढ़ेंगे ही नहीं। वे तो अखबार उलटते हैं, पढ़ते थोड़े ही हैं। और उनको क्या पड़ी तुम्हारी! अपनी-अपनी तो सम्हल नहीं रही, दूसरों की कौन चिंता ले! बचे पांच प्रतिशत, इन पांच प्रतिशत को तुम लाख उपाय करो तो भी समझा न सकोगे। क्योंकि ये पांच प्रतिशत तुम्हारी चोरी में, बेईमानी में, धोखाधड़ी में सब सहयोगी हैं। बेहतर है तुम चुप ही रहो। अब नाहक शोरगुल मचाने से क्या सार है?
दर्शन सिंह, लोग क्या कहेंगे, यह डर संन्यास से रोकता है। मगर क्या कहेंगे? ज्यादा से ज्यादा यही कहेंगे न कि पागल हो गए! लेकिन व्यर्थ जीने से और व्यर्थ मर जाने से पागल हो जाना ज्यादा बेहतर है। सच तो यह है कि यही लोग हैं जिन्होंने बुद्ध को भी पागल कहा था; यही लोग हैं जिन्होंने महावीर को भी पागल कहा था। तो अगर ये तुम्हें भी पागल कहें तो तुम्हें अच्छी कोटि में रख रहे हैं, ढंग के लोगों के साथ तुम्हारी गिनती कर रहे हैं। कुछ बुरा नहीं।
बुद्धों के साथ पागल हो जाना बुद्धुओं के साथ होश से भरे होने से लाख दर्जा बेहतर है। यूं क्या घबड़ाना? क्या डर है? पत्नी हंसेगी? सो हंस लेगी। उस गरीब का भी थोड़ा मनोरंजन हो जाएगा। बच्चे पूछेंगे कि डैडी, आपको क्या हो गया? सो सीधा-सीधा कह देना--दीवाने हो गए। सरदार तो हो ही, अब दीवानगी में क्या बिगड़ जाएगा?
और यह कोई नयी बात तो नहीं। जो लोग नानक के साथ गए, वे भी दीवाने थे। जो जीसस के साथ गए, वे भी दीवाने थे। यह तो पुरानी कथा है।
खोने को क्या है? क्या कोई तुमसे छीन लेगा? और हर घड़ी फैसले की घड़ी है। कहीं ऐसा न हो कि तुम इन्हीं दो कौड़ी के लोगों के मंतव्यों का विचार करते- करते जीवन को गंवा दो। और तब ये उठा कर तुम्हारी अरथी को जला आएंगे और लौट कर भी न देखेंगे, निशान भी न रह जाएगा। जिस दुनिया में निशान भी मिट जाने

हैं, उस दुनिया के मंतव्यों का क्या हिसाब रखना! खोओगे तो तुम कुछ भी नहीं, लेकिन पा बहुत सकते हो। यह सौदा करने जैसा है।
लेकिन मैं जानता हूं कि बात कहां अटकती है। हमारा अहंकार लोगों के मंतव्यों पर निर्भर होता है। और जब वे अपने मंतव्य बदलने लगते हैं, हमारा अहंकार खिसकने लगता है। उन्हीं की ईंटों से बना है। उन्हीं ने कहा था बड़े समझदार, तो हम अपने को समझदार मान कर बड़े अकड़े-अकड़े चल रहे थे। वे ही कहने लगे पागल, तो हमारी क्रीज निकल जाती है।
क्या उधार जी रहे हो! इसके पहले कि वे तुम्हें पागल कहें, तुम खुद ही लौटा दो उनका सम्मान। उनका सत्कार ही क्यों लेते हो? उनका सत्कार लेना बहुत खतरनाक है, क्योंकि उसके पीछे बड़े राज छिपे हैं। अजीब-अजीब बातें लोगों ने गढ़ रखी हैं।
एक पत्र मुझे कल मिला है। बहुत दूर से नहीं, अहमदनगर से। जिन्होंने लिखा है, कभी यहां आए नहीं। कुछ ही मीलों का फासला है, पूना आते ही होंगे। पत्र में जो लिखा है, वह विचारणीय है। पत्र में लिखा है कि महान पुरुष हमेशा जनता के पास जाते हैं। आप जनता के पास क्यों नहीं जाते?
अब पहले तो वे मुझे प्रलोभन दे रहे हैं महापुरुष होने का। मुझ पर ये जालसाजियां नहीं चलतीं। स्वभावतः कोई भी फंस जाएगा। अगर महापुरुष होना है तो जनता के पास जाओ; क्योंकि महापुरुष जनता के पास जाते हैं। तो पहले तो रिश्वत। मगर रिश्वत जरा सावधानी से लेना।
मैं तो मानता ही नहीं कि कोई महापुरुष है और कोई हीन-पुरुष है। यह बात
ही गलत है। यह बात ही बेहूदी है। यह विभाजन अहंकार का है। कौन महान, कौन हीन? यहां सिर्फ एक भगवत्ता है।
मैं कोई महापुरुष नहीं। महापुरुष होने की आकांक्षा सिर्फ उन्हीं लोगों में होती है जो हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। जो अपनी हीनता को छिपाना चाहते हैं, वे महापुरुष होने का ढोंग रचते हैं। मुझ पर यह जालसाजी नहीं चलती। मैं तो जो हूं--हूं, न महापुरुष, न हीन-पुरुष। इसलिए मैं क्यों जाऊं जनता के पास?
फिर जिसको प्यास हो वह कुएं के पास आता है। कुएं कोई लोगों के पीछे नहीं घूमते, कि ऐ भाई, कहां जा रहे हो? अरे जरा ठहरो, जरा स्वाद ले लो। और इस तरह अगर कोई करता हो तो वह कुआं नहीं होगा, भिश्ती होगा।
उन सज्जन ने यह भी लिखा है कि आपको जनता के पास जाना चाहिए, जनता की सेवा करनी चाहिए।
क्यों? न मैंने जनता का कुछ बिगाड़ा, न जनता ने मेरा कुछ बिगाड़ा; क्यों मैं सेवा करूं? भगवान ने उन्हें हाथ-पैर दिए हैं, वे खुद ही अपने हाथ-पैर दबा लें या एक-दूसरे के दबा लें, जो उन्हें करना हो करें।
और मजा यह है कि ये सज्जन अहमदनगर में क्या कर रहे हैं? यह सेवा की धारणा! मगर ये सब जालसाजियां हैं समाज की। समाज सिखाता है ये बातें कि सेवा करो तो तुम महान। फिर जिसको महान होना है, उसको बेचारे को सेवा करनी पड़ती है। फिर वह ढूंढता है कोई परचुरे शास्त्री, जैसे महात्मा गांधी ने ढूंढ लिए थे, तो फिर बैठे हैं कोढ़ी के पैर दबा रहे हैं। अगर महात्मा होना है तो कोढ़ी के पैर दबाने पड़ेंगे।
मुझे महात्मा होना नहीं। मुझे किसी परचुरे शास्त्री की जरूरत नहीं है। मैं मजे में हूं। महात्मा होने से मुझे क्या लेना-देना? महात्मा होकर मुझे क्या मिल जाएगा?
लेकिन ये हमारी धारणाएं हैं। और इन धारणाओं के पीछे हजारों साल का जाल है। और यह जाल इतना गहरा हो गया है कि हम भूल ही गए हैं। एक तरफ गरीबों को पैदा करो और दूसरी तरफ गरीबों की सेवा करो! एक तरफ लोगों को नंगे और भूखे रहने दो और दूसरी तरफ जाकर कपड़े बांटो! यह कैसा शड्यंत्र है? इसकी कोई जरूरत नहीं है। दुनिया को महापुरुषों की और हीन-पुरुषों की कोई आवश्यकता नहीं है।
और हर आदमी को हम यह समझा रहे हैं... । उन्होंने पत्र में मुझे लिखा है
कि आपसे यह अपेक्षा है, जैसे महात्मा, हमारे अतीत के ऋषि-मुनि जीवन जीते थे, आदर्श जीवन, और उसी आदर्श जीवन का लोगों को शिक्षण देते थे, आप भी दें।

मैं क्यों किसी की अपेक्षा पूरी करूं? मैं अपना मालिक हूं। मुझे अपना जीवन जीना है। ये कोई मूढ़, जो अहमदनगर में निवास करते हैं, इनकी अपेक्षा मैं क्यों पूरी करूं? मैं इनसे किसी अपेक्षा की आशा नहीं रखता कि ये पूरी करें। अपेक्षा का क्या नाता? और अगर तुम्हारे ऋषि-मुनियों को अच्छा लगता था कुछ करना तो वे करते थे, जो मुझे अच्छा लग रहा है वह मैं कर रहा हूं। न तो मैं तुम्हारे ऋषि-मुनियों से कहता हूं कि मेरे अनुसार चलो, न उन्हें कोई हक है कि वे मुझसे कहें कि उनके अनुसार चलूं। मुझे तुम्हारे ऋषि-मुनियों में कुछ खास दिखाई भी नहीं पड़ता। हां, तुम्हारी अपेक्षाएं वे पूरी कर रहे थे, इसलिए तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता है; क्योंकि तुमने अपेक्षा के नाम पर उनको गुलाम बना रखा था।
यह बड़े मजे की बात है! तुम्हारे महापुरुष भी तुम्हारे दो कौड़ी के आदमियों के गुलाम होते हैं। राज बड़ा सूक्ष्म है, क्योंकि वे दो कौड़ी के आदमी तय करते हैं अपेक्षा। अगर दो कौड़ी के आदमी तय करते हैं कि महात्मा को नग्न खड़ा होना चाहिए, तो महात्मा नग्न खड़ा होता है। अगर महात्मा होना है तो नग्न खड़े होओ। अगर महात्मा नहीं होना, तुम्हारी मर्जी। गणित साफ है। मगर निर्णायक कौन है? वे दो कौड़ी के आदमी निर्णय कर रहे हैं कि अगर महात्मा होना है, अगर हमसे सर्टिफिकेट चाहिए महात्मा होने का, तो हमारी अनुकूलताएं, हमारी आकांक्षाएं, हमारी अपेक्षाएं पूरी करो।
और जो भी व्यक्ति इस दुनिया में किसी और की अपेक्षा पूरी करता है, वह
तो व्यक्ति ही नहीं है, महात्मा वगैरह तो बहुत दूर की बात है। वह तो मशीन है। उसमें तो अभी आत्मा का भी प्रारंभ नहीं हुआ। उसके भीतर कोई ज्योति नहीं है। वह तो गुलाम है। मगर उस गुलामी को भी खूब चाशनी चढ़ा कर पेश किया जाता है। अगर तुम उनके महात्मा की तरह व्यवहार करोगे तो वे तुम्हारे चरणों में गिरेंगे।
मगर मुझे कोई जरूरत नहीं किसी के मेरे चरणों में गिरने की। कोई लाभ भी नहीं। नाहक मेरे पैर को और चोट इत्यादि पहुंचा दो या तुम्हारे सिर को चोट वगैरह लग जाए, क्या फायदा! और तुम्हें बहुत ही शौक हो तो योगासन सीख लो, अपने ही चरण छू रहे हैं! स्वावलंबन भी रहेगा, व्यायाम भी होगा, और घर की बात घर में रही, बाहर भी न गई।
दर्शन सिंह, तुम्हारी अड़चन यह होगी कि लोग क्या कहेंगे! क्योंकि लोग वही करते हैं जो मछलीमार मछलियों के साथ करते हैं--कांटे पर आटा लगा देते हैं। मछली कांटे को नहीं निगलेगी, आटे को निगल जाती है। और आटे को निगला कि कांटे में फंसी। फिर मछली कितना ही कहे कि मैं तो आटा निगलती थी। यह मछली का इरादा था आटा निगलने का, लेकिन जिसने आटा लटकाया था वह कोई बेवकूफ है, उसका कोई दिमाग खराब है? उसका प्रयोजन कुछ और था।
तो दर्शन सिंह, लोग तुम्हारे आस-पास आटा लटकाए बैठे हैं। तुम आटा गटक
लो तो वे कहें--वाहे गुरुजी की फतह! वाहे गुरुजी का खालसा! चित्त प्रसन्न हो जाए, तालियां बज जाएं। और अगर तुम आटा न निगलो तो वे नाराज तो होंगे, क्योंकि उनके इरादे पूरे न हुए, वह कांटा जो छिपा बैठा था भीतर वह बेकार चला गया; मछली हाथ से निकल गई।
संन्यास समाज की अपेक्षाओं से मुक्ति का नाम है। संन्यास दो कौड़ी के लोगों की गुलामी से मुक्ति का नाम है। समाज है एक दासता का सिलसिला और संन्यास है स्वतंत्रता की घोषणा। मैं तुम्हें कोई भी और प्रलोभन नहीं दे रहा हूं, सिर्फ इतना कह रहा हूं, अपनी आत्मा का थोड़ा सम्मान करो! थोड़ी अपनी आत्मा को सादृत बनाओ! यूं दो कौड़ियों पर मत बेचो।
आदमी जिस दिन अपने भीतर का सम्मान शुरू करता है, उसी क्षण राम के करीब आना शुरू हो जाता है। समाज की अपेक्षाएं तुम्हें बाहर भटकाए रखती हैं; जैसे ही तुमने उन सारी अपेक्षाओं को छोड़ा, उसी दिन तुम्हारी घर की तरफ वापसी शुरू हो गई।
बात तुम्हें रुचती हो, आनंदित करती हो, तो सारे भयों को एक तरफ हटा कर
रख दो। क्योंकि भयभीत जीना जिंदगी में जंग खाने जैसा है, जैसे तलवार जंग खा जाए। निर्भय होकर जीओ। एक ही जीने का ढंग है दुनिया में--निर्भय होकर जीओ। और जो निर्भय होकर जीता है, परमात्मा उसका पुरस्कार है।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
दूसरा प्रवचन

मैं जीवन सिखाता हूं

पहला प्रश्नः ओशो, आप पर यह आरोप लगाया जाता है कि आपके पास कोई नया विचार या जीवन-दर्शन नहीं है। और यह भी आलोचना की जाती है कि एक ओर आप स्वयं गीता, बाइबिल, कुरान आदि धर्मग्रंथों द्वारा प्रतिपादित धर्मों को नहीं मानते, फिर आप उनके विचारों की चोरी क्यों करते हैं?
ओशो, निवेदन है कि इस विषय में कुछ कहने की अनुकंपा करें।

सत्य वेदांत, विचार कभी भी नया नहीं होता। विचार का स्वभाव ही उसे नया नहीं होने दे सकता। मौलिकता और विचार विपरीत आयाम हैं। विचार तो हमेशा ही बासा होता है; क्योंकि शब्द बासे होते हैं, भाषा बासी होती है।
अनुभूति मौलिक होती है। जीवन-सत्य का साक्षात्कार मौलिक होता है। लेकिन जैसे ही जीवन-सत्य को भाषा का वेश दिया, जैसे ही जीवन-सत्य को अभिव्यक्ति दी, वैसे ही उसकी मौलिकता आच्छादित हो जाती है।
इसलिए जो लोग कहते हैं कि मेरे पास कोई नया विचार नहीं, वे सोचते होंगे मेरी आलोचना कर रहे हैं, लेकिन वस्तुतः अनजाने वे मेरे सत्य का प्रचार कर रहे हैं।
मैंने कभी कहा नहीं कि विचार मौलिक होता है। मैंने कभी कहा नहीं कि यह विचार मेरा है। मैं कैसे मौलिक होगा? मैं तो उधार है। मेरा का भाव भी उधार है। लेकिन मैं और मेरे के पीछे भी कुछ है--चैतन्य है, साक्षी है। और उस चैतन्य में जागना, उस चैतन्य में डूबना, उस चैतन्य से आपूरित हो जाना--वह मौलिक है, वह कभी भी बासा नहीं, वह कभी उधार नहीं। लेकिन वहां मैं की कोई सीमा नहीं, वहां मैं की कोई पहुंच नहीं। इसलिए जो मौलिक है वह अस्तित्व का है; और जो उधार है वह अहंकार का है।
अब मेरी भी मजबूरी है। और मेरी ही नहीं, जिन्होंने जाना उन सबकी यही मजबूरी रही। बोलना तो पड़ेगा भाषा में, क्योंकि जिनसे बोलना है उनके पास मौन को समझने की कोई क्षमता नहीं। जो जाना है वह मौन में जाना है, और जिनसे कहना है उन्हें मौन का कुछ पता नहीं। तो भाषा का उपयोग करना होगा। और भाषा का उपयोग किया कि अनुभूति की ताजगी गई, अनुभूति का जीवन गया। भाषा आई कि अनुभूति को मौत आई। अनुभूति तो ताजी होती है, जीवंत होती है, जैसे सुबह की ओस की ताजगी, नये-नये खिले फूल की ताजगी--लेकिन अनुभूति रहे अनुभूति तो ही; भाषा के वस्त्र पहनाए कि बस बात खोनी शुरू हो गई।
फिर और भी अड़चनें हैं। मैं जब कुछ कहूंगा तो तुम वही थोड़े ही सुनोगे
जो मैंने कहा; तुम वह सुनोगे जो तुम सुन सकते हो। तुम्हारी बंधी धारणाएं हैं, तुम्हारे अपने पक्षपात हैं। उन्हीं पक्षपातों की आड़ से सुनोगे। सुनोगे नहीं--भाषांतर करते रहोगे, अपना रंग पहनाते रहोगे, अपना ढंग देते रहोगे। कहूंगा तो मैं, लेकिन सुनोगे तो तुम, और तुम आ जाओगे उस सब में जो मैंने कहा। तुम तक पहुंचते-पहुंचते वह बात मेरी न रह जाएगी, तुम्हारी हो जाएगी। और अगर तुमने फिर किसी को वह बात कही, तब तो सत्य हजारों कोस दूर छूट जाएगा।
पहली बात, मौन मौलिक है। मौलिक शब्द को समझो। मौलिक का अर्थ होता हैः
जो मूल से उगा, जो मूल से आया--मूल उदगम से, परम स्रोत से।
लेकिन भाषा तो मौलिक नहीं है, शब्द तो मौलिक नहीं हैं। शब्द आते हैं परंपरा से। शब्द आते हैं सदियों पुरानी यात्रा करके। उन पर न मालूम कितनी यात्रा की धूल जमी है। मगर उन्हीं शब्दों का उपयोग करना होगा, मजबूरी है, एक आवश्यक बुराई है।
सत्य वेदांत, तुमने जो पूछा है वैसे पत्र मेरे पास निरंतर आते हैं। जे.कृष्णमूर्ति के एक अनुयायी ने कुछ ही दिन पहले पत्र लिखा है कि मेरे विचारों में जे.कृष्णमूर्ति की झलक है।
जे.कृष्णमूर्ति को जो सुनता है, स्वभावतः उसे मेरे विचारों में जे.कृष्णमूर्ति की झलक मिल सकती है। लेकिन इस पूछने वाले को यह सवाल नहीं

उठा कि जे.कृष्णमूर्ति के विचारों में बुद्ध की झलक है या नहीं? और जे.कृष्णमूर्ति के विचारों में लाओत्सु के विचारों की झलक है या नहीं? जे.कृष्णमूर्ति के विचारों में उपनिषद की छाया है या नहीं? नहीं, यह सवाल नहीं उठा। उसका अपना पक्षपात है। जे.कृष्णमूर्ति मौलिक हैं। लेकिन मुझमें उसे जे.कृष्णमूर्ति के विचारों की झलक मिलनी शुरू हो गई। अपना पक्षपात थोप देने की आकांक्षा बड़ी प्रगाढ़ होती है।
मैं तो कहता नहीं कि मेरे विचार मौलिक हैं। जे.कृष्णमूर्ति का दावा
है कि उनके विचार मौलिक हैं। और वह दावा गलत है; क्योंकि ऐसा एक भी विचार नहीं है जे.कृष्णमूर्ति का जो उपनिषदों में मौजूद न हो, जो बुद्ध की वाणी में मौजूद न हो, जिसे लाओत्सु ने और भी प्रगाढ़ता से न कहा हो। जे.कृष्णमूर्ति के विचारों में झेन सदगुरुओं की सहज पुनरुक्ति है। लेकिन जे.कृष्णमूर्ति जीवन भर यह कोशिश करते रहे हैं कि उनके विचार मौलिक हैं। इतना ही नहीं, अपने विचारों की मौलिकता को सिद्ध करने के लिए वे यह भी कहते हैं कि मैं सौभाग्यशाली हूं कि मैंने उपनिषद नहीं पढ़े, बुद्ध-वचन नहीं पढ़े, कोई धर्म-शास्त्र नहीं पढ़े।
यह बात सरासर झूठ है। क्योंकि जे.कृष्णमूर्ति को ये सारे शास्त्र पढ़ाए गए थे। पढ़े ही नहीं, बल्कि एनीबीसेंट, लीडबीटर और दूसरे थियोसॉफिस्टों ने कोई बीस वर्ष जे.कृष्णमूर्ति के ऊपर श्रम किया, ताकि वे सारे अस्तित्व में अब तक जो भी श्रेष्ठतम विचार हुए हैं, उनके मालिक हो जाएं। लेकिन यह दावा कि मेरे विचार मौलिक हैं, तभी सिद्ध किया जा सकता है जब इनकार ही कर दिया जाए कि मुझे पता ही नहीं कि उपनिषदों में क्या है। मैं तो कहता नहीं कि मेरे विचार मौलिक हैं, इसलिए मेरी आलोचना करनी असंभव है। मेरी तो धारणा ही यही है कि विचार मौलिक होते ही नहीं--किसी के भी हों। अनुभूति मौलिक होती है। और अनुभूति एक ही सत्य की है, इसलिए क्या करोगे?
एक छोटे स्कूल में यह घटना घटी। दो छोटे बच्चे, जुड़वां भाई। अध्यापिका ने कुत्ते के ऊपर निबंध लिखने को कहा था। सारे बच्चे निबंध लिख कर लाए थे। वे दोनों बच्चे भी निबंध लिख कर लाए थे। अध्यापिका बहुत हैरान हुई, क्योंकि उनके दोनों निबंध शब्दशः एक जैसे थे, जरा सा भी भेद नहीं था। तो अध्यापिका ने पूछा कि यह आश्चर्य की बात है, तुम दोनों ने निबंध बिल्कुल एक जैसा लिखा है, एक मात्रा का भी भेद नहीं है।
उन दोनों बच्चों ने कहा, हम कर भी क्या सकते हैं! हमारे घर में दोनों
का एक ही कुत्ता है, उसी का वर्णन कर रहे हैं। और ऊपर से यह भी मुसीबत है कि हम जुड़वां भाई हैं, इसलिए हमारे देखने और सोचने का ढंग भी एक ही जैसा है। इसमें हमारा कोई कसूर नहीं।
मैं नहीं कहता हूं कि कृष्णमूर्ति ने उपनिषद से विचार चुराए हैं; वह बात गलत होगी। लेकिन उपनिषद के ऋषियों ने जो सत्य जाना, वह सत्य ही एक है। फिर बुद्ध जानें उसे, जरथुस्त्र जानें उसे, नानक जानें उसे, कबीर जानें उसे, कृष्णमूर्ति जानें उसे, या तुम जानो, कुछ भेद न पड़ेगा। थोड़े-बहुत भेद हो सकते हैं अभिव्यक्ति के, लेकिन मूलतः भेद नहीं हो सकता।
सत्य एक है। और सत्य के जानने की विधि भी एक है--अहंकार का विसर्जन, मन
से मुक्ति। जहां मन न रहा, वहां सत्य प्रकट होता है।
अब यूं समझो कि एक अंधे आदमी की आंख खुले, तो क्या उसे कुछ प्रकाश में दूसरा अनुभव होगा जैसा कि पहले अंधे आदमियों की आंखें खुली थीं तो उनको भी वही प्रकाश का अनुभव हुआ था? क्या तुम यह कहोगे कि यह अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में जो कह रहा है, यह उधार है, यह दूसरों की बातें दोहरा रहा है?
मगर प्रकाश एक है, आंख के देखने का ढंग एक है। जब भी कोई अंधा आदमी आंख पाएगा, तो क्या करेगा--वही रंग, वही प्रकाश, वही चांद, वही तारे, वही सूरज। थोड़ा अंदाजे-बयां और हो सकता है। लेकिन बयान का ढंग, अंदाज, मौलिक भेद नहीं पैदा करता।
कृष्णमूर्ति का दावा गलत है कि विचार मौलिक हैं। अनुभूति मौलिक है। मैं जो कह रहा हूं, अपनी अनुभूति से कह रहा हूं। यह और बात है कि औरों को भी यह अनुभूति हुई है। मैं यह दावा नहीं कर रहा हूं कि यह अनुभूति मुझे ही हुई है, पहली बार ही हुई है। उपनिषद के ऋषियों को भी हुई थी, कृष्ण ने भी जानी

थी, महावीर ने भी पहचानी थी, बुद्ध भी उसी में डूबे थे, मीरा उसी में नाची थी, गाई थी, गुनगुनाई थी।
इसलिए जो लोग सोचते हैं कि मेरी आलोचना कर रहे हैं, वे गलती में हैं;
वे मेरे सत्य की ही उदघोषणा कर रहे हैं। हां, मैंने अगर कहा होता कि मेरे विचार मौलिक हैं, तो आलोचना सार्थक हो सकती थी। यह आलोचना तो मूढ़तापूर्ण है। मैं तो खुद ही कहता हूं कि विचार मौलिक हो ही नहीं सकते हैं, मेरे-तेरे का सवाल ही नहीं है।
दूसरी बात तुमने पूछी कि वे कहते हैं कि आपका जीवन-दर्शन भी नया नहीं। नये की बात कर रहे हो, मेरा कोई जीवन-दर्शन ही नहीं। मैं जीवन को पर्याप्त मानता हूं। जीवन-दर्शन जीवन को जीने में बाधा बनता है, सहयोगी नहीं।
जीवन-दर्शन का क्या अर्थ होता है? कि हमने जीवन के प्रति कोई रुख अख्तियार किया, कि देखने की कोई शैली अख्तियार की, कि हमने एक ढांचा बनाया। अब हम इस ढांचे में ही ढाल कर जीवन को जीएंगे और देखेंगे। कि हमने एक चौखट बिठा दी जीवन के ऊपर। और हमारे लिए चौखट इतनी मूल्यवान है कि जीवन रहे कि जाए, मगर चौखट बचानी होगी।
मेरा कोई जीवन-दर्शन नहीं है। मैं तो कहता हूं जीवन पर्याप्त है, किसी दर्शन की कोई जरूरत नहीं। दर्शन ही तो बाधा है। जब तुम जैन जीवन-दर्शन को लेकर चलोगे तो तुम जीवन से परिचित नहीं हो पाओगे। या हिंदू जीवन-दर्शन को लेकर चलोगे तो वही बाधा बनेगी, वही तुम्हारी आंखों को अंधा करेगा। क्योंकि तुमने जीवन को बिना पहचाने, जीवन से बिना अपना सरगम जोड़े, परंपराओं से, शास्त्रों से, रीति-रिवाजों से, औरों से--जो तुम जैसे ही अंधे हैं--कुछ कचरा इकट्ठा कर लिया। अब तुम उस कचरे के ही आधार पर जीवन की तलाश में चले हो।
जीवन को वही जान पाता है जो निर्विचार है, और जीवन-दर्शन तो विचार होगा। जीवन की पहचान किसे होती है? जो जीवन के पास निर्दोष जाता है। और जीवन-दर्शन कभी निर्दोष नहीं हो सकता। यूं समझो कि किसी का जीवन-दर्शन है नास्तिक का, तो उसने पहले से ही तय कर लिया कि ईश्वर नहीं है। है या नहीं, यह और बात। जाना नहीं, खोजा नहीं, पहचाना नहीं--तय कर लिया कि ईश्वर नहीं है। कैसे तय कर लिया, यह भी आश्चर्य है। तर्क किया होगा, लोगों की बातें सुनी होंगी। मान लिया कि ईश्वर नहीं है। अब यह व्यक्ति क्या अन्वेषण कर सकेगा? अगर करेगा भी तो इसका अन्वेषण घूम-फिर कर इसकी धारणा को ही सिद्ध करेगा।
एक आदमी पागल हो गया था। पागलपन भी उसका बड़ा अजीब था। बहुत बीमार था
और चिकित्सकों ने कह दिया कि अब बचने की उम्मीद नहीं। परिवार के लोग इकट्ठे हो गए, मित्र, प्रियजन, पड़ोसी आ गए। इधर घड़ी की टक-टक और उधर आदमी का डूबता जाना। चिकित्सकों ने तो समय भी बता दिया था कि ठीक छह बजे आदमी मर जाएगा। उसको भी पता था। वह भी घड़ी पर आंखें लगाए था। ठीक छह बजे उसने आंखें बंद कर लीं। मरा तो नहीं। मगर जीवन-दर्शन, एक पक्की धारणा। थोड़ा शक-शुबहा भी हुआ, हिल-डुल कर भी देखा, थोड़ी-बहुत आंख भी खोल कर देखी होगी कि घड़ी भी दिखाई पड़ती है, लोग भी दिखाई पड़ते हैं।
लेकिन पत्नियों को तो आप जानते ही हैं। पत्नी पास में ही बैठी थी, उसने कहा, आंख बंद करो! अरे मर कर और आंख खोलते हो, शर्म नहीं आती? और जब चिकित्सक ने कहा है, और सबसे बड़े चिकित्सक ने कहा है, और हजार रुपया फीस भरी है, तो कोई झूठ थोड़े ही कहेगा। तुम मर चुके। और ऐसा कोई पति है जो पत्नी की न माने? मान लिया बेचारे ने। मर गया बेचारा।
मगर ऐसे कहीं मौत आती है। आंखें बंद किए पड़ा है। रात भर यूं ही पड़ा रहा। लेकिन मोहल्ले के लोगों ने इनकार कर दिया कि इसको हम जलाएंगे नहीं, यह आदमी जिंदा है। मजबूरन पत्नी को भी मानना पड़ा, चिकित्सक को भी बुलाना पड़ा। लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। वह आदमी रात भर इसी जीवन-दर्शन में जीया कि मैं मर चुका, कि मैं मर ही चुका। सुबह जब चिकित्सक ने कहा कि भाई गणित बैठा नहीं, निदान ठीक नहीं आया, चमत्कार समझो, ईश्वर की अनुकंपा समझो, तुम बच गए।
उसने कहा, अब देर हो गई। मैं तो मर चुका। आप किससे बातें कर रहे हैं?

चिकित्सक ने कहा, तुम जिंदा हो।
उस आदमी ने कहा कि आप वहम में हैं। हो सकता है मैं भूत हो गया होऊं, प्रेत हो गया होऊं। मुझे भी शक होता था पहले, लेकिन अब मुझे पक्का भरोसा आ गया है कि मैं मर चुका हूं।
अब एक मुसीबत खड़ी हुई कि इसे कैसे भरोसा दिलाया जाए कि यह आदमी जिंदा है। पत्नी ने चिकित्सक से कहा कि आपने ही यह झंझट खड़ी की, अब आप ही सुलझाओ। और जो फीस लेनी हो ले लेना, मगर इसका जीवन-दर्शन बदलो। वह उठे ही नहीं। नाश्ता तैयार है, वह उठे ही नहीं। दफ्तर जाने का वक्त हो गया है, वह उठे ही नहीं। सच पूछो तो उसे मजा भी बहुत आने लगा कि यह भी खूब रही! न दफ्तर जाना है, न कोई चिंता, न कोई फिक्र, अपने बिस्तर पर लेटे हैं। यह तो जीवन से भी बेहतर हो गया। अरे तड़फते थे एक-एक दिन के लिए छुट्टी मिल जाए, यूं छुट्टी मिल गई सारी चिंताओं से।
मगर पत्नी-बच्चे परेशान, रिश्तेदार परेशान, चिकित्सक के पीछे पड़े कि
अब तुम ही कुछ करो। चिकित्सक ने बहुत समझाया, सब तरह से समझाया, मगर वह आदमी माने ही न। आखिर चिकित्सक ने कहा, एक काम करो। उठाया उसे, बामुश्किल चार आदमियों ने सहारा देकर उठाया, और कहा कि मैं तुमसे एक बात पूछता हूं। जब आदमी मर जाता है, तो अगर उसका हाथ काटो या छुरी से कहीं निशान बनाओ तो खून निकलता है या नहीं?
उस आदमी ने कहा, मरे हुए आदमी से कैसे खून निकलेगा? खून तो पानी हो जाता है।
चिकित्सक ने कहा कि तब ठीक है। अब तुम आओ दर्पण के सामने। उसको पकड़ कर दर्पण के सामने लाया गया। वह तो आता ही नहीं था। वह तो कहे, मैं कैसे आऊं? अरे मरे आदमी ने कभी दर्पण देखा है? कभी सुना है, कोई उल्लेख है? मगर पकड़ कर लाया गया, तो मुर्दा था तो रुक भी नहीं सकता था, आना पड़ा। चिकित्सक ने उठाया चाकू और उसके हाथ को जरा सा काटा, खून निकलने लगा। दिखाया कि देख, आईने में देख, हाथ में देख, खून गिर रहा है। अब तेरा क्या कहना है?
उस आदमी ने कहा कि इससे सिद्ध होता है कि वह धारणा गलत थी कि मरे आदमी में खून नहीं होता। होता है! इससे सिद्ध हो रहा है कि आदमी मर जाता है, मगर खून नहीं मरता।
जब तुम्हारी एक धारणा मजबूत हो जाती है, जब तुम उसे जकड़ कर पकड़ लेते हो, तो तुम हर चीज को उसी ढांचे में ढालना शुरू कर देते हो।
मैं जीवन-दर्शन तो सिखाता ही नहीं। मेरा कोई जीवन-दर्शन नहीं। जीवन पर्याप्त है। दर्शन की क्या जरूरत? दर्शन का क्या अर्थ हुआ? जीवन के ऊपर मन को आरोपित करना जीवन-दर्शन है। दर्शन यानी धारणाएं, दृष्टिकोण, सिद्धांत, शास्त्र; जीवन को उसकी नग्नता में न देखना, बल्कि सजावट करनी, अपना ढंग देना; ऐसा देखना जैसा कि तुम देखना चाहते हो।
मैं न तो नास्तिक हूं, न मैं आस्तिक हूं, न मैं धार्मिक हूं, न मैं अधार्मिक हूं; न मैं हिंदू हूं, न मुसलमान हूं, न जैन हूं, न ईसाई हूं, न पारसी हूं; क्योंकि ये सारी की सारी बातें जीवन को जानने में बाधा हैं। और यहां मैं कोई जीवन-दर्शन नहीं सिखा रहा हूं। यहां केवल इस बात की तुम्हें समझ दे रहा हूं कि छोड़ दो जीवन-दर्शन, ताकि जीवन को पा सको, ताकि खालिस जीवन अपने शुद्धतम रूप में तुम्हें आच्छादित कर ले।
वही जीवन सत्य है। जीवन-दर्शन सब झूठ, सब आदमी की कल्पनाएं, मनगढ़ंत। जीवन सत्य है। जीवन था हम नहीं थे तब थी। जीवन रहेगा हम नहीं होंगे तब भी। लेकिन जीवन-दर्शन तो बनाए गए और मिट जाते हैं। यूं समझो कि अगर बुद्ध न होते तो दुनिया में कोई बौद्ध जीवन-दर्शन नहीं होता। जीवन तो होता, मगर बौद्ध जीवन-दर्शन नहीं होता। अगर महावीर न होते तो जैन जीवन-दर्शन नहीं होता। अगर जीसस न होते तो ईसाई जीवन-दर्शन नहीं होता। मगर जीवन होता।
और बहुत से जीवन-दर्शन दुनिया में रहे हैं और खो गए। आज उनका कोई मानने वाला भी नहीं, कोई एक भी मानने वाला नहीं। जब थे, जैसे यूरोप में मिथ्र का जीवन-दर्शन था। वह परम देवता था और करोड़ों उसके भक्त थे, लेकिन आज एक भी नहीं। खो गई बात। बहुत से दर्शन बने और बिगड़े। दर्शन तो पानी पर खींची गई लकीरें हैं, शब्दों के जाल हैं, होशियार और चालाक आदमियों के

सिद्धांतों के महल हैं। लेकिन सिद्धांतों के महल और ताश के पत्तों के महल में कुछ फर्क नहीं होता। जरा सा हवा का झोंका और सब बिखर जाता है।
मैं जीवन सिखाता हूं, जीवन-दर्शन नहीं। और वही मेरे संबंध में इतने विरोध का कारण है। काश, मैं भी तुम्हें कोई जीवन-दर्शन समझाता तो कोई अड़चन न होती। कम से कम उस जीवन-दर्शन को मानने वाले लोग तो मेरे साथ होते। अगर मैं हिंदू जीवन-दर्शन की बात करता तो हिंदुओं के अहंकार को तुष्टि मिलती, परितोष मिलता, पोषण मिलता। हिंदू उदघोषणा करते मेरे महात्मा होने की, अवतार होने की, संत, ऋषि-मुनि। लेकिन चूंकि मैं कोई हिंदू जीवन-दर्शन का समर्थन नहीं करता हूं--हिंदू नाराज। जैन नाराज, बौद्ध नाराज, ईसाई नाराज। इस नाराजगी का कारण क्या है? ये सारे लोग एक साथ नाराज! आस्तिक ही नाराज नहीं, नास्तिक भी नाराज! भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी भी प्रस्ताव करती है मेरे विरोध में। क्या होगा कारण इसका? कारण बहुत सीधा-साफ है। कारण है कि मैं चाहता हूं कि तुम सभी जीवन-दर्शनों के जाल से मुक्त हो जाओ, ताकि जीवन तुम्हारे हृदय पर सरगम छेड़ सके; ताकि जीवन तुम्हारे पैरों में घुंघरू बांध सके; ताकि जीवन जैसा है, अपनी सहजता में, अपनी समग्रता में, तुम्हें आच्छादित कर ले, आंदोलित कर दे।
लेकिन ये सारे जीवन-दर्शनों को मानने वाले लोग जीवन से घबड़ाते हैं। इन्हें डर है कि कहीं इनकी धारणाएं न टूट जाएं। और इनका डर एक अर्थ में सही है। अगर तुम जीवन को उसकी सहजता में जीओगे तो हजारों की धारणाएं टूटेंगी। क्योंकि जीवन को उसकी सहजता में जीने का अर्थ है कि तुम हजारों तरह की मूढ़ताओं से मुक्त हो जाओगे। क्या-क्या मूढ़ताएं हैं!
मेरे गांव में एक बड़े पंडित थे। उनका घर अड्डा था साधु-संतों का। मेरे पिता के मित्र थे, सो कभी-कभी मैं उनके घर पहुंच जाता था। खास कर जब साधु- संत वहां होते, मैं जरूर पहुंच जाता। वे मुझे देखते ही से घबड़ाते थे। वे पहले ही खबर भेज देते थे कि घर में साधु-संत हैं, आज कृपा करके न आना। मैं उनसे पूछता कि साधु-संत मुझसे क्यों घबड़ाते हैं? तो वे कहते, तुम इस तरह की बातें पूछ देते हो कि उनको अड़चन होती है। मैंने कहा, लेकिन बातें, अगर उनके उत्तर नहीं हैं उनके पास, तो उन्हें छोड़ना चाहिए।
यह बात एक दिन मेरी उनसे हो ही रही थी कि भीतर से करपात्री महाराज बाहर आए। वे वहां ठहरे हुए थे। आकर बैठे, उनको जम्हाई आई करपात्री महाराज को। सो जम्हाई आते से ही उन्होंने दो बार चुटकी बजाई। मैंने पूछा, अब मैं कुछ बोलूं कि न बोलूं? यह चुटकी क्यों बजाई? जम्हाई तक बात समझ में आती है कि चलो ठीक है। साधु-संत हैं, ब्रह्ममुहूर्त में जगे होंगे, नींद आ रही है। ब्रह्ममुहूर्त में जो जगेगा उसको नींद आएगी ही। वहां तक समझ में आता है। रात ज्यादा देर तक भजन-कीर्तन किया होगा, स्वाध्याय, मनन, चिंतन, निदिध्यासन किया होगा। क्या-क्या नहीं करना पड़ता! छोटी रात और साधु को क्या-क्या नहीं करना पड़ता! मगर ये चुटकी क्यों बजाते हैं? और मैंने कहा कि मैं आपसे नहीं पूछ रहा हूं--पंडित जी से कहा। मैंने कहा, मैं उन्हीं से पूछता हूं कि आप चुटकी क्यों बजाते हैं?
उन्होंने कहा, इसका राज है। जब आदमी जम्हाई लेता है तो मुंह खुलता है। अगर चुटकी न बजाओ, भूत-प्रेत भीतर प्रवेश कर जाते हैं।
अब ये मूढ़! इस तरह के मूढ़ों से यह देश भरा हुआ है।
बौद्धों के एक शास्त्र में यह उल्लेख हैः जब बौद्ध भिक्षु मल-विसर्जन
के लिए जाए तो आवाज न करे, किसी तरह की आवाज न करे। क्यों? क्योंकि आवाज करने से, जो भूखे भूत-प्रेत वहां मौजूद होते हैं... भूखे भूत-प्रेत मल-मूत्र पान करते हैं।
मैं तो बहुत हैरान हुआ। मैं तो सोचता था, ये मोरारजी देसाई ने बड़ी मौलिकता की है। यह दो हजार साल पुराना ग्रंथ! मतलब मलजी भाई मूत्तरजी भाई देसाई पहले भी होते रहे। अब मर गए हैं, भूत-प्रेत हो गए हैं, मगर आदत नहीं छूटी। आदतें छूटती ही नहीं।
तो भी मैंने सोचा कि ठीक है करने दो, उनको मल-मूत्र भोजन करना है तो करने दो, तुम्हारा क्या बिगड़ता है? मगर सवाल यह है कि अगर उनको तुम्हारा मल-मूत्र पसंद आ गया तो वे तुम्हारा पीछा करेंगे। वे ऐसे ढंग करेंगे कि तुमको दिन में कई बार मल-मूत्र त्याग करना पड़े। स्वभावतः पेचिस की बीमारी

कर दें, डायरिया हो जाए, हैजा हो जाए। इससे बचने के लिए बौद्ध भिक्षु को जरा भी आवाज नहीं करनी चाहिए, ताकि भूखे भूत-प्रेत शांत रहें। उनको पता ही न चले कि क्या हो रहा है। चुपचाप अपना कार्य करके एकदम निकल भागना चाहिए। अब इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातें अगर मानोगे तो स्वभावतः भय पैदा होगा।
और फिर इनके अनुसार तुम जीओगे। ये तुम्हारे जीवन-दर्शन हैं। चाहे तुम्हारे ईश्वर के सिद्धांत हों और चाहे तुम्हारे भूत-प्रेतों के सिद्धांत हों, कुछ बहुत भेद नहीं है। हवा में मकान बना रहे हो।
मैं किसी तरह के सिद्धांत तुम्हें नहीं देता हूं। मैं तो तुमसे सारे सिद्धांत छीन लेना चाहता हूं, सारे सिद्धांतों का कचूमर निकाल देना चाहता हूं कि बना लो उनकी चटनी।
जीवन काफी है। जीवन पर्याप्त है। जीवन परम सुंदर है। जीवन परम भगवत्ता है। तुम्हारे सिद्धांतों की कोई जरूरत नहीं। इसलिए मेरा कोई जीवन-दर्शन तो है ही नहीं।
सत्य वेदांत, तुमने पूछा कि और वे यह भी आलोचना करते हैं कि एक ओर आप स्वयं गीता, बाइबिल, कुरान आदि धर्मग्रंथों द्वारा प्रतिपादित धर्मों को नहीं मानते, फिर आप उनके विचारों की चोरी क्यों करते हैं?
मैंने किसी की कभी कोई चोरी नहीं की। चोरी करने की जरूरत मुझे नहीं। मेरे पास अपनी अनुभूति है। यह और बात है कि मेरी अनुभूति कभी कुरान से मेल खा जाती हो। न तो मोहम्मद ने मेरे विचार चुराए हैं और न मैंने मोहम्मद के विचार चुराए हैं। लेकिन अनुभूतियां मेल खा सकती हैं। अब इसमें मैं क्या कर सकता हूं! सागर को कोई भी चखेगा तो खारा है। मैंने भी चखा और खारा पाया; अगर कुरान भी कहती है कि खारा है तो अब मैं क्या करूं? क्या सिर्फ इसीलिए कह दूं कि मीठा है कि कहीं कोई यह न समझ ले कि कुरान के विचार की चोरी हो गई?
जहां मेरी अनुभूति मेल खाती है, फिर चाहे वे कृष्ण हों, चाहे मोहम्मद हों, चाहे महावीर हों, चाहे कबीर हों, चाहे नानक हों, जहां मेरी अनुभूति किसी से मेल खाती है, वहां मेल खाती है। कोई उपाय नहीं। और जहां मेल नहीं खाती, वहां मैं कभी भी मेल बिठालने की कोशिश नहीं करता हूं। जहां मेल नहीं खाती, वहां मैं साफ घोषणा करता हूं कि मेरी अनुभूति यहां मेल नहीं खाती। और मेरा दायित्व मेरी अनुभूति के प्रति है। मुझे किसी कुरान से लेना नहीं, देना नहीं। किसी गीता से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। जहां मेरी अनुभूति मेल नहीं खाती, वहां मैं दो टूक हूं। वहां मैं साफ कहता हूं कि यहां मैं राजी नहीं हो सकता। उसी से तो इतनी नाराजगी है मेरे प्रति। उनकी आकांक्षा हैः या तो मुझे सौ प्रतिशत राजी होना चाहिए और या फिर शून्य प्रतिशत। मगर यह मैं नहीं कर सकता हूं। यह अन्याय होगा सत्य के साथ, क्योंकि ऐसा नहीं है। वेदों में भी यद्यपि निन्यानबे प्रतिशत कचरा है, मगर एक प्रतिशत तो हीरे हैं।
अब मेरी मजबूरी यह है कि आर्यसमाजी चाहता हैः या तो मैं कहूं कि सौ प्रतिशत हीरे हैं और या साफ कहूं कि सौ प्रतिशत कचरा है। मगर मैं दोनों बातों से राजी नहीं हो सकता। निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा है। दयानंद उस निन्यानबे प्रतिशत कचरे को भी हीरा सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। वह जबरदस्ती कोशिश है। मार-ठोंक कर, अर्थ का अनर्थ करके, किसी भी भांति कुछ का कुछ अर्थ बिठा कर, उलटे-सीधे तर्कों के आधार पर, सभी सुंदर है, इसकी चेष्टा की जाती है।
मगर मेरा मानना यह है, यह सत्य के प्रति अन्याय है। जो कचरा है वह कचरा है, वेद में हो या कहीं भी हो। अच्छा है कि हम साफ करें कि वह कचरा है। इसलिए भी अच्छा है, ताकि वे जो एक प्रतिशत हीरे हैं, वे कहीं कचरे में न खो जाएं। वे एक प्रतिशत हीरे बचाने योग्य हैं। वे हीरे अदभुत हैं। लेकिन निन्यानबे प्रतिशत कचरे को अगर हम आग न लगा सकें, तो कचरे का भार इतना है कि हीरे उसमें खो जाएंगे।
तो मैं उतने दूर तक राजी होता हूं किसी से भी। मुझे कोई अड़चन नहीं। मैं जीसस के साथ चलता हूं, मोहम्मद के साथ चलता हूं, बहाऊद्दीन के साथ चलता हूं, लाओत्सु के साथ चलता हूं, लेकिन वहीं तक जहां तक मेरी अनुभूति और उनकी अनुभूति तालमेल खाती है। अंततः तो मेरी अनुभूति ही मेरे लिए निर्णायक है।

और यही मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे साथ भी तुम तब तक ही चलना जब तक तुम्हारी अनुभूति मेरी अनुभूति के साथ मेल खाए। जिस क्षण तुम पाओ कि तुम्हारी अनुभूति मेरी अनुभूति से मेल नहीं खाती, तुम मुक्त हो; तुम अपने मालिक हो; तब तुम्हें अपनी राह खोजनी है। मैं तुम्हें गुलाम नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हारे ऊपर अपने को थोप नहीं देना चाहता। उतनी दूर तक संग-साथ, जितनी दूर तक मेरी अनुभूति और तुम्हारी अनुभूति एक नृत्य में आबद्ध हों।
लेकिन जब तुम पाओ कि तुम्हारी अनुभूति अब एक अलग मार्ग लेती है, तो मैं तुमसे कहूंगा, मुझे छोड़ देना और अपनी अनुभूति के साथ जाना। क्योंकि अंततः तुम्हें अपने ही स्वभाव में जीना है। अंततः अपने स्वभाव की ही उदघोषणा करनी है। अंततः तुम्हारे भीतर ही बैठी भगवत्ता में फूल खिलाने हैं। तुम्हारा कोई दायित्व मेरे साथ नहीं है। सौभाग्य था कि थोड़ी दूर साथ चलना हुआ। थोड़ी दूर साथ गीत गाया। थोड़ी दूर मेरी बांसुरी में और तुम्हारे तबले में तालमेल रहा। ठीक, जितनी दूर तालमेल रहा, धन्यभाग! उसके लिए अनुग्रह! लेकिन जिस क्षण तुम पाओ कि तुम्हारे छंद ने अब अपनी अभिव्यक्ति लेनी शुरू कर दी, तुम्हारा छंद अब अपनी निजता में प्रकट होना चाहता है, तब तुम अपने छंद के साथ जाना। क्योंकि तुम्हारा छंद, तुम्हारे अंतर्तम का छंद, तुम्हारे और परमात्मा के बीच का सीधा जोड़ है। जब तक मैं तुम्हें तुम्हारे भीतर के परमात्मा को याद दिलाऊं, ठीक; लेकिन जहां बाधा बनने लगूं वहां मुझसे साथ छोड़ देना।
जो लोग कहते हैं कि मैं गीता, बाइबिल, कुरान आदि धर्मग्रंथों द्वारा प्रतिपादित धर्मों को नहीं मानता हूं... ।
कुरान बड़ी किताब है। उसमें हजारों बातें हैं। उसमें ऐसी व्यर्थ की बातें भी हैं कि एक आदमी की चार स्त्रियां होनी चाहिए। अब मैं कैसे राजी हो जाऊं? मोहम्मद ने नौ विवाह किए। मैं राजी नहीं हो सकता। लेकिन कुरान में ऐसी बातें भी हैं कि परमात्मा प्रकाश है। इससे मैं कैसे इनकार कर दूं? परमात्मा प्रकाश है। यह मेरा भी अनुभव है। लेकिन परमात्मा का प्रकाश होना और मोहम्मद की नौ शादियां, और मुसलमानों को चार शादियों की आज्ञा देना, इनमें मैं कोई तालमेल नहीं देखता। परमात्मा होगा प्रकाश, लेकिन इससे नौ पत्नियों का क्या संबंध? इसमें कोई गणित है?
और यह बात बेहूदी है; यह स्त्रियों के साथ अनाचार है। दुनिया में स्त्रियों और पुरुषों की संख्या करीब-करीब बराबर है। इसलिए अगर हर आदमी चार स्त्रियों से विवाह करने लगे, तो तीन आदमी बिना पत्नियों के रह जाएंगे। और ये तीन आदमी कुछ न कुछ उपद्रव तो करेंगे--व्यभिचार होगा, अनाचार होगा, वेश्यावृत्ति फैलेगी। और अगर एक-एक आदमी नौ-नौ पत्नियों पर कब्जा कर ले, तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। दस आदमियों में एक के पास तो पत्नियां होंगी, बाकी नौ आवारा! क्योंकि पत्नी यानी घर। इसलिए उसको कहते हैं घरवाली। तुमने किसी पति को सुना कहते हुए कि ये घरवाले हैं? पत्नी है तो घर, और पत्नी नहीं है तो बेघर। एक आदमी नौ पत्नियों पर कब्जा कर ले तो बाकी तो आवारा हो गए।
कृष्ण ने तो हद कर दी--सोलह हजार पत्नियां! यह तो सारी दुनिया को बरबाद करने का हिसाब हो जाएगा। मैं इससे राजी नहीं हो सकता। लेकिन कृष्ण के बहुत से सूत्रों से मैं राजी हूं। प्यारे सूत्र हैं। जहां कृष्ण कहते हैं कि स्वधर्म में मर जाना श्रेयस्कर है; परधर्म भयावह है--मैं राजी हूं। स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः। कैसे इनकार करूं?
लेकिन ख्याल रखना, स्वधर्म का मतलब हिंदू धर्म या मुसलमान धर्म या ईसाई धर्म नहीं होता। स्वधर्म का अर्थ होता हैः जो तुम्हारी स्वयं की सत्ता है, जो तुम्हारा स्वभाव है। उसमें ही जीओ। उसमें ही जीओगे, तो ही तुम सत्य को पा सकोगे। अगर तुमने अपनी स्वजता को, अपनी निजता को इनकार किया और तुमने किसी और को अपने ऊपर ओढ़ा, कि तुम्हारा जीवन भय से भर जाएगा। तुम्हारा जीवन जीवन कम और मौत ज्यादा हो जाएगा।
मैं इस बात से राजी हूं, लेकिन इस बात को मैं इसकी पूरी तर्क-संगति तक
ले जाना चाहता हूं। तुम कृष्ण को भी मत ओढ़ना, क्योंकि वह भी परधर्म होगा।
तुम्हें बांसुरी बजानी आती न हो और खड़े हो जाओ बांसुरी बजाने, और बना लो

नृत्य की मुद्रा, और पहन लो पीतांबर, और बांध लो घुंघरू कमर में, और लगा लो मोर-पंख अपने मुकुट में--सिर्फ बुद्धू मालूम पड़ोगे, और कुछ भी नहीं। रासलीला वगैरह हो रही हो तो ठीक, कहीं नाटक इत्यादि में भाग ले रहे होओ तो ठीक, मगर जिंदगी में ऐसा मत कर लेना।
मैं राजी नहीं हो सकता कृष्ण की सोलह हजार पत्नियों से। और इन पत्नियों में बहुत सी दूसरों की पत्नियां थीं--जो जबरदस्ती छीन कर, युद्ध के द्वारा, चुरा कर, बेईमानी से, कपट से, हर तरह से लाई गई थीं। यह बात अमानवीय है।
मेरा निर्णय व्यक्तियों को देख कर नहीं है, मेरा निर्णय तो सत्य को देख कर है। कृष्ण के जीवन में बहुत कुछ है जिससे मैं राजी नहीं हो सकता। कृष्ण के जीवन में बेईमानी है, कूटनीति है, राजनीति है, जिससे मैं राजी नहीं हो सकता। हां, कृष्ण ने जो अदभुत सत्य कहे हैं, उनसे मुझे कोई इनकार नहीं है। कैसे इनकार करूं?
कृष्ण कहते हैं, आत्मा अमर है। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि! उसे शस्त्रों से छेदा नहीं जा सकता। नैनं दहति पावकः! उसे अग्नि में जलाया नहीं जा सकता। इससे मैं राजी हूं, सौ प्रतिशत राजी हूं।
लेकिन कृष्ण की बेईमानियां और कृष्ण की धोखेधड़ियां! कृष्ण ने वचन दिया था युद्ध में अस्त्र हाथ में नहीं उठाएंगे, और उठा लिया! अपने वचन को भी पूरा न कर सके। वचन के प्रति भी एक आबद्धता नहीं है।
तो मेरे सामने हमेशा यह सवाल है कि कितने दूर तक किस व्यक्ति को समर्थन दिया जा सकता है, किस शास्त्र को कितने दूर तक समर्थन दिया जा सकता है, उतने दूर तक मैं जरूर समर्थन देता हूं। जहां तक मेरा सत्य और उस शास्त्र का सत्य समान है, वहां तक मैं राजी हूं; लेकिन जहां मेरे सत्य के विपरीत कोई बात जाती है, वहां मेरा उत्तरदायित्व मेरे सत्य के प्रति है, किसी और के सत्य के प्रति नहीं है।
और यही मेरी देशना है मेरे संन्यासियों के लिएः मुझे भी अपवाद मत समझना। कोई आवश्यकता नहीं है कि तुम मुझसे सौ प्रतिशत राजी होओ। तुम्हारी अनुभूति, तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी समाधि जहां तक मुझसे तालमेल पा सके, बस वहीं तक, उसके आगे नहीं।
चोरी का तो कोई सवाल नहीं है। लेकिन जो लोग, सत्य वेदांत, इस तरह की बातें करते हैं, उनसे पूछना कि कृष्ण की गीता में बहुत से वचन हैं जो उपनिषदों के हैं। क्या कृष्ण ने चोरी की थी? कृष्ण की गीता में बहुत से वचन हैं जो वेदों के हैं। क्या कृष्ण ने चोरी की थी? बुद्ध के वचनों में बहुत से वचन हैं जो कि उपनिषदों के हैं। क्या बुद्ध ने चोरी की थी? जीसस के वचनों में बहुत से वचन हैं जो ठीक बुद्ध के वचनों का अनुवाद हैं। जीसस को तो बुद्ध की भाषा भी नहीं आती थी, और बुद्ध के शास्त्र भी शायद अपरिचित होंगे, जीसस पढ़े-लिखे भी नहीं थे। क्या जीसस ने चोरी की थी? कबीर और नानक जो कहते हैं, वह वही तो है जो सदियों से कहा गया है। क्या ये सब चोर हैं? अगर यूं चोरी का तय करना हो, तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
लेकिन इनमें से कोई भी चोर नहीं है। इन सबने अपने सत्य को पहचाना। लेकिन चूंकि सत्य एक है, इसलिए थोड़ा-बहुत भेद हो सकता है देखने वाले की दृष्टि के कारण, देखने वाले के चुनाव के कारण, देखने वाले की भाषा के कारण, अभिव्यक्ति के कारण; लेकिन चूंकि सत्य एक है, कितना ही भेद पड़े, तब भी मूलतः एक ही सत्य तो झलकेगा। उसी सत्य के अलग-अलग पहलू होंगे। भेद होगा तो गौण, मेल होगा तो मौलिक।
लेकिन धारणाओं से भरे हुए लोगों के साथ बड़ी मुसीबत है।
एक मित्र आ गए हैं--हंसराज विश्नोई। इन्होंने जो प्रश्न पूछे हैं, बहुत से प्रश्न पूछे हैं, उससे तुम्हें पता चलेगा कि भारतीय भोंदूपन किस गहराई तक नहीं उतर गया है। आत्मा तक में प्रविष्ट हो गया है। पहला प्रश्न उन्होंने पूछा हैः भगवान, आपने कहा कि आप भगवान हैं। भगवान सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी होता है। क्या आप सूर्य का उदय कुछ क्षण के लिए रोक सकते हैं? या सृष्टि में कोई परिवर्तन कर सकते हैं? कृपया बताएं।

दूसरे प्रश्न में उन्होंने पूछा है कि भगवान कभी मरा नहीं, मर नहीं सकता, मरना असंभव है; फिर यहां आश्रम में इतनी सुरक्षा की व्यवस्था क्यों है? मेटल डिटेक्टर से क्यों हमें गुजरना पड़ता है?
तीसरा प्रश्न पूछा है कि आपके भीतर मुझे पूजा की आकांक्षा मालूम पड़ती
है कि आप चाहते हैं लोग आपको पूजें। अगर यह आकांक्षा नहीं है आपके भीतर तो माला पर आपका चित्र क्यों लगाया गया है?
हंसराज विश्नोई ने जो भी पूछा है, इसमें एक भी प्रश्न सार्थक नहीं है। मगर बंधी हुई धारणाएं हैं भीतर, उन्हीं बंधी हुई धारणाओं से प्रश्न उठने शुरू होते हैं। मगर वे पूछ कर अब फंस गए हैं, अब भाग न सकेंगे। मुझसे कुछ प्रश्न पूछना हो तो सोच-समझ कर पूछना चाहिए।
हंसराज विश्नोई, तुम्हें कैसे पता चला कि भगवान सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी है? कहीं मुलाकात हुई? भगवान है भी, यह भी तुम्हें पता है? कोई प्रमाण है तुम्हारे पास भगवान के होने का? आज तक कोई प्रमाण नहीं दे सका है। और जो भी प्रमाण दिए गए हैं, सब खंडित किए जा सकते हैं, जरा से तर्क की जरूरत है, जरा सी बुद्धि की जरूरत है।
अगर भगवान सर्वशक्तिमान है, तो हंसराज विश्नोई, तुम्हारा भोंदूपन कुछ
कम बनाता। इतना तो कर देता, सूरज चाहे न रोकता। थोड़ी बुद्धि तो देता। इतनी गरीबी है दुनिया में, इतनी बीमारी है दुनिया में, आधी से ज्यादा दुनिया भूख से मर रही है, और तुम कहते हो भगवान सर्वशक्तिमान है! इसका तो मतलब यह हुआ कि वह इसी तरह चाहता है कि हो। ये भिखमंगे सड़कों पर, ये बिना दूध मिले हुए बच्चे, यह चारों तरफ फैली हुई भुखमरी और बीमारी और दारिद्य्र, जरूर सर्वशक्तिमान भगवान का प्रमाण देता है! गजब का सर्वशक्तिमान है! ये लंगड़े- लूले बच्चे क्यों पैदा होते हैं? ये अंधे बच्चे क्यों पैदा होते हैं? ये बुद्धि से रुग्ण बच्चे क्यों पैदा होते हैं? तुम्हारा सर्वशक्तिमान भगवान इतना भी नहीं कर सकता?
क्या तुम्हारे पास आधार है कि तुम कहो भगवान सर्वशक्तिमान है? और तुम
तो यूं कह रहे हो जैसे कि बात बिल्कुल सिद्ध ही है, कोई शक-शुबहा का सवाल नहीं है। कोई किंतु-परंतु नहीं है, साफ घोषणा है कि भगवान सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी होता है!
अगर भगवान सर्वज्ञ है तो यह दुनिया कुछ और ढंग की होनी चाहिए। यह सर्वज्ञ के द्वारा बनाई हुई दुनिया तो मालूम नहीं होती। सर्वज्ञ क्यों कैंसर बनाता है, क्या उसको इतनी भी अकल नहीं? क्यों क्षय-रोग बनाता है? सर्वज्ञ को कुछ तो बुद्धि होनी चाहिए--जो सभी कुछ जानता है, जिससे कुछ भी छिपा नहीं है! फिर यह सारा नरक जो तुम अपने चारों तरफ पा रहे हो, यह किसकी करतूत है? और तुम कहते हो भगवान सर्वव्यापी है।
हंसराज विश्नोई आए हैं हरियाणा से--मंडी डबवाली, हरियाणा। मतलब हरियाणा में भी है, मंडी डबवाली में भी है! तो फिर यहां किसलिए आए हो? वहीं मुलाकात ले लेते। सर्वव्यापी है, जहां चाहते वहीं चर्चा हो जाती।
मगर इस तरह की बातें हम पकड़ कर बैठ जाते हैं--बिना सोचे, बिना विचारे, बिना खोजे। और फिर इस तरह की बातों को हम दूसरों पर आरोपित करने लगते हैं। मैं तुमसे स्पष्ट कहना चाहता हूं कि मैं कोई सर्वशक्तिमान नहीं हूं। तुम तो कह रहे हो कि आप सूरज को कुछ क्षण के लिए रोक सकते हैं?
मैं इस बिजली के पंखे को भी नहीं रोक सकता।
तुम पूछते हो, क्या आप सृष्टि में कोई परिवर्तन कर सकते हैं?
क्या परिवर्तन करवाने का इरादा है? सर्वशक्तिमान ने बनाई यह पृथ्वी,
यह प्रकृति; सर्वज्ञ ने बनाई यह प्रकृति; सर्वव्यापी ने बनाई यह प्रकृति; अब मैं कुछ भी करूंगा तो बिगाड़ ही हो जाएगा। इसमें सुधार तो हो ही नहीं सकता। अब सर्वज्ञ से और ज्यादा सर्वज्ञ तो कोई कैसे होगा?
और तुम पूछते हो कि भगवान न कभी मरा, न मरा है, न मर सकता है।
सवाल पहले यह है कि जीया भी कभी? जीया हो तो मरता। जब जीया ही नहीं, तो मरेगा कैसे? जन्मा कब? बात हमेशा शुरू से करनी चाहिए। अगर जन्मा हो तो मरे। जन्म के बिना मृत्यु तो नहीं हो सकती। सो एक बात तो तय है कि जन्मा नहीं, जीया नहीं, मरेगा क्या खाक! मरना भी चाहे तो नहीं मर सकता। मरने के लिए होना चाहिए। पहले तुम्हें सिद्ध करना पड़ेगा कि है, जन्मा, कैसे जन्मा,

किससे जन्मा, कौन मां-बाप हैं तुम्हारे भगवान के? और तब तो बड़ा लंबा सिलसिला शुरू हो जाएगा। फिर उनके मां-बाप होंगे, फिर उनके मां-बाप होंगे। मगर इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातों को लोग समझते हैं धार्मिक विचार।
और तुम मुझसे यह पूछ रहे हो, लेकिन यही बात तुमने कृष्ण से पूछी? राम
से पूछी? बुद्ध से पूछी? महावीर से पूछी? तुम कृष्ण को भगवान कहते हो, कृष्ण मरे या नहीं? तुम बुद्ध को भगवान कहते हो, बुद्ध मरे या नहीं? तुम राम को भगवान कहते हो, राम मरे या नहीं? मेरे संबंध में तुम कुछ अलग नियम बनाना चाहते हो? मैं भी मरूंगा। और मरने में मुझे कोई बुराई नहीं मालूम पड़ती। मरने का भी मजा लेना होगा। जीना और मरना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
लेकिन बड़ा मजा यह है, इस देश की बुद्धि की जो प्रक्रिया है, बड़ी दोहरी है। अगर राम का सवाल उठाओ तो राम भगवान हैं, और तब कोई नहीं पूछेगा कि फिर मरे कैसे। और कृष्ण भगवान हैं, मरे कैसे! बुद्ध भगवान, महावीर भगवान--कोई भगवानों की तुम्हारे यहां कमी रही है! सब मर गए। उनमें से एकाध भी जिंदा है? जिंदा हो तो पकड़ कर लाओ।
और तुम पूछते हो कि यहां सुरक्षा का इतना इंतजाम क्यों है?
सुरक्षा का इंतजाम कोई मेरी मृत्यु को नहीं रोक सकता है। मेरी मृत्यु
तो होगी। सुरक्षा का इंतजाम भी रहेगा और मृत्यु होगी। सुरक्षा का इंतजाम किसी और कारण से है। मैं मरना भी चाहता हूं तो अपने ढंग से मरना चाहता हूं; किसी बेवकूफ के हाथ से नहीं मरना चाहता। मेरा अपना जीवन का ढंग है, मेरे मरने का भी अपना ढंग होगा। जीता अपनी मौज से हूं, मरूंगा भी अपनी मौज से। कृष्ण की मृत्यु हुई एक आदमी के पैर में तीर मार देने से। कृष्ण सोए
थे वृक्ष के नीचे, विश्राम कर रहे थे, और एक शिकारी ने भूल से उनको तीर मार दिया, इस तरह मृत्यु हुई। बुद्ध की मृत्यु हुई विषाक्त भोजन से। एक आदमी ने भोजन खिलाया और भोजन विषाक्त था। महावीर की मृत्यु हुई पेचिस की बीमारी से। होनी ही चाहिए, ज्यादा उपवास जो करेगा उसका यह परिणाम होने वाला है, पेट खराब होगा।
मुझे कम से कम इतना तो हक है कि मैं अपने ढंग से मरूं।
और तुम पूछते हो कि यह सुरक्षा, अगर आप भगवान हैं, सुरक्षा की क्या जरूरत?
तो रामचंद्र जी जो धनुष-बाण लिए चलते हैं, तुम क्या उनको कोई कोल-भील समझे हुए हो? कि गणतंत्र दिवस पर भाग लेने दिल्ली जा रहे हैं, कि वहां जुलूस निकलेगा? वह काहे के लिए हाथ में रखे हुए हैं धनुष-बाण? मच्छर वगैरह को भगाने के लिए? खटमलों को मारने के लिए?
तुम जो प्रश्न मुझसे पूछते हो, पहले अपने भगवानों से पूछ लिया करो। क्योंकि पहली तो बात यह कि हंसराज विश्नोई, मैं तुम्हारा भगवान नहीं। मुझसे तुम्हारा क्या नाता, क्या लेना-देना! तुम अपने भगवानों से पूछो कि आप धनुष-बाण लिए क्यों घूम रहे हैं? दिमाग खराब है? और धनुष-बाण साफ बता रहा है कि सुरक्षा का इंतजाम है। और कृष्ण ने जब चक्र घुमाया तो वह क्या था? सुरक्षा इंतजाम नहीं था तो और क्या था? परशुराम जीवन भर फरसा लेकर काटते रहे लोगों को और फिर भी तुम उनको भगवान माने चले जाते हो!
न तो मैं कोई धनुष-बाण लिए हुए हूं, न कोई फरसा लिए हुए हूं, इसमें क्या अड़चन है कि यहां थोड़ा सुरक्षा का इंतजाम हो?
लेकिन तुम्हारे दोहरे मापदंड हैं। अपनों को, जिन्होंने तुमको सदियों
से संस्कार दिए हैं, तुम एक तरफ रखते हो, बचा लेते हो। मुझ पर तुम्हारे प्रश्न उठते हैं।
मुझे कोई अड़चन नहीं है सुरक्षा के इंतजाम से, क्योंकि मैं नहीं मानता
कि कोई इस तरह का भगवान है, जिस तरह तुम्हारी धारणा है। भगवत्ता है, भगवान कोई भी नहीं है। भगवत्ता एक अनुभूति है।
और यह मैं जानता हूं कि आत्मा नहीं मरती। मगर यह जो सुरक्षा के लिए आयोजन है, यह कोई आत्मा को बचाने के लिए आयोजन है भी नहीं। लेकिन शरीर तो मरता है। शरीर जन्मता है और शरीर मरता है। और कोई भी विचारशील व्यक्ति अपने शरीर का उतना उपयोग करना चाहेगा जितना कर सकता है। मेरे शरीर से मैं जो भी काम करना चाहता हूं, पूरा करना चाहता हूं। इस शरीर को बचाने की पूरी

व्यवस्था होनी चाहिए। कोई कारण नहीं; जो इसे प्रेम करते हैं वे बचाने की कोशिश करेंगे। जो चाहते हैं कि यह शरीर उनके काम और कुछ देर आ जाए, वे इसे बचाने की कोशिश करेंगे। मैं मूढ़तापूर्ण बातों में भरोसा नहीं करता।
अब तुमने पूछा है कि आपने कहा कि आप भगवान हैं।
भगवान का मेरा अर्थ समझने की कोशिश करो। भगवान से मेरा मतलब यह नहीं
है कि मैंने यह दुनिया बनाई। इस तरह की मूर्खतापूर्ण दुनिया मैं बना नहीं सकता। यह जिम्मा लेने को मैं राजी नहीं हूं। यह अपराध मैं स्वीकार नहीं करूंगा।
और मजा यह है कि तुम मुझसे पूछते हो! तुमने कृष्ण से नहीं पूछा, राम से नहीं पूछा! यह राम ने दुनिया बनाई, सूरज को रोक सकते थे, और इनकी औरत को रावण भगा ले गया! गजब के सर्वशक्तिमान, बड़े सर्वज्ञ, बड़े सर्वव्यापी! अपनी औरत को भी न बचा सके, और क्या खाक बचाएंगे! सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान हैं, सर्वव्यापी हैं, और सोने के मृग को खोजने चल पड़े! बुद्धू से बुद्धू आदमी को भी शक होता कि कहीं सोने का मृग होता है!
मगर तुम यह प्रश्न उनसे नहीं पूछोगे। क्योंकि उनको तो तुम मान कर ही बैठे हुए हो, पूछने का सवाल ही नहीं उठता है।
और फिर सीता को लाया गया लंका से छीन कर तो उसकी अग्नि-परीक्षा ली गई,
और ये सर्वज्ञ हैं! जब सर्वज्ञ हैं और सर्वव्यापी हैं, तो इनको यह पता ही होना चाहिए कि सीता ने कोई भी ऐसा काम नहीं किया है कि उसकी अग्नि-परीक्षा ली जाए। यह कैसी सर्वज्ञता है? इनको यह भी पता नहीं! इनको शक है कि कहीं सीता भ्रष्ट न हो गई हो! यह पुराना दकियानूसी पति का दिमाग कि कहीं सीता का सतीत्व नष्ट न हो गया हो!
सीता कहीं ज्यादा समझदार महिला मालूम पड़ती है। उसने नहीं कहा राम से
कि तुम भी आ जाओ साथ ही साथ, दोनों निकल जाएं आग से! क्योंकि तुम भी इतने दिन अकेले रहे। और कोई अच्छे संग-साथ में रहे भी नहीं; अंदर-बंदर न मालूम कहां-कहां के, रीछ-भालू, पता नहीं क्या करते रहे, क्या हुआ क्या नहीं हुआ! और जब विवाह हुआ था तो साथ-साथ गांठ बांध कर चले थे, चलो इसमें भी गांठ बांध कर गुजर जाएं।
ये सर्वज्ञ हैं?
और तुम कहते हो कि सुरक्षा की कोई जरूरत नहीं। और कृष्ण पूरी गीता में क्या समझा रहे हैं अर्जुन को? कि लड़! अर्जुन कहीं ज्यादा ज्ञानी मालूम होता है तुम्हारे हिसाब से। क्योंकि वह यह कह रहा है कि क्या सार है मरने- मारने में; आत्मा तो अमर ही है, अब नाहक इनके शरीरों को क्या मारना। मैं चला जंगल! मैं तो ध्यान करूंगा, समाधि साधूंगा। इसमें कुछ सार नहीं है। और कृष्ण की पूरी गीता इसी बात का आयोजन है कि तू लड़, उठा गांडीव!
कृष्ण को पता नहीं है कि आत्मा अमर है? कहते तो वे यही हैं कि न हन्यते हन्यमाने शरीरे! शरीर मरता है, आत्मा नहीं मरती। मगर उससे उन्होंने मतलब क्या निकाला है? उससे मतलब उन्होंने बहुत चालबाजी का निकाला है। चालबाजी का मतलब यह निकाला है कि मार, बेफिक्री से मार इनके शरीरों को! क्योंकि आत्मा तो मरती ही नहीं, इसलिए कोई हानि होनी नहीं है, हिंसा कुछ होनी नहीं है।
कृष्ण ने जितनी हिंसा का प्रतिपादन किया है, दुनिया में किसी ने भी नहीं किया। एडोल्फ हिटलर, चंगीजखान, तैमूरलंग, नादिरशाह--सब फीके पड़ जाते हैं। क्योंकि भला इन्होंने हिंसा की हो, लेकिन हिंसा का समर्थन इनके भीतर नहीं है। जानते तो ये हैं कि यह गलत कर रहे हैं। कृष्ण ने हिंसा करवाई और उसको एक दार्शनिक पूरा का पूरा आडंबर दिया। समझाया अर्जुन को यह कि मार बेफिक्री से! क्योंकि आत्मा मरती ही नहीं, मारने में हर्जा क्या है! ये तो मिट्टी के घड़े हैं, फोड़ दे! आत्मा दूसरे घड़ों में प्रवेश कर जाएगी।
तुम इन सारे लोगों को भगवान मानते रहे हो और मैं जब कहता हूं कि मैं भगवान हूं, तो तुम्हें अड़चन खड़ी होती है। और मेरे अर्थ को तुम सुनना भी नहीं चाहते, समझना भी नहीं चाहते। जब मैं कहता हूं मैं भगवान हूं, तो मैं यह कह रहा हूं कि तुम भी भगवान हो। भगवत्ता हमारा स्वभाव है। यह और बात है कि कोई पहचान ले या न पहचाने। जो पहचान ले वह भगवान है; जो न पहचाने वह भी

भगवान है, लेकिन उसे पता नहीं होगा। कोई सोया है, कोई जागा है; मगर सोने और जागने वाले के भीतर एक ही चेतना का वास है।
तो जब मैं कहता हूं मैं भगवान हूं, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं मैंने दुनिया बनाई। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं जैसा कृष्ण कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होगी तब-तब मैं आऊंगा और रक्षा करूंगा।
पहली तो बात यह है कि जब वे पहली दफा आए थे, तब कौन सी रक्षा कर ली? अब क्या खाक रक्षा करेंगे! सच तो यह है कि कृष्ण की मौजूदगी के कारण जितनी अमानवीयता और जितनी हिंसा उस समय हुई, अब अच्छा ही होगा कि वे दुबारा न आएं, कृपा करें! जब आए थे तब भी कोई रक्षा नहीं हो गई धर्म की, अब क्या खाक रक्षा कर लेंगे धर्म की आकर!
मैं कोई दावा नहीं करता धर्म की रक्षा का, और न ही दावा करता हूं कि मैं कोई अवतार हूं। उधार बातें मुझे पसंद नहीं। मैं क्यों विष्णु का अवतार होऊंगा? विष्णु मेरे अवतार नहीं हैं, मैं उनका अवतार नहीं हूं। मैं किसी का अवतार नहीं हूं। मैं किसी की रक्षा के लिए आया नहीं हूं। मुझे किसी धर्म की रक्षा नहीं करनी है। मुझे तुम्हें किसी पाप से नहीं बचाना है। मैं आनंदित हूं। मैंने अपने को जाना और मैं आनंदित हूं। और मेरे आनंद का यह हिस्सा है कि तुम्हें भी मैं अपने आनंद से परिचित करा दूं। फिर तुम्हारी मौज है। तुम स्वीकार करो न करो, वह तुम्हारी मालकियत है।
और तुम कहते हो कि आपको पूजा की आकांक्षा है।
अगर मुझे पूजा की आकांक्षा हो, तो तुम सोचते हो मुझे कोई अड़चन है? रोज पूजा करवा सकता हूं। रोज फूल चढ़वा सकता हूं। रोज आरती उतरवा सकता हूं। इसमें अड़चन क्या है? पत्थरों की आरती उतर रही है तो जिंदा आदमी में क्या अड़चन है आरती उतरवाने की? वह जो मेरी माला है, उसमें जो तस्वीर अटकाई हुई है, वह सिर्फ भारतीय भोंदुओं को चौंकाने के लिए, और कुछ भी नहीं। एक मजाक है, और कुछ भी नहीं। लेकिन मजाक को समझने के लिए भी थोड़ी बुद्धि चाहिए।
न तो मैं किसी को कह रहा हूं कि मेरे पैर छुओ; न मैं किसी को कह रहा हूं मेरी पूजा करो। मैं तो आता भी हूं तो मैं चाहता नहीं कि कोई उठ कर खड़ा हो। शायद यह भारत में होने वाली पहली धर्मसभा होगी जहां आने पर गुरु के शिष्य बैठे रहते हैं। तुमने कहीं कोई सभा देखी जहां गुरु आए और शिष्य बैठे रहें? यह शायद पहली सभा होगी भारत के पूरे इतिहास में जहां गुरु हाथ जोड़ कर तुम्हें नमस्कार करता है। क्या पूजा? किसकी पूजा?
मगर बंधी हुई धारणाएं लेकर आओगे तो अड़चन होती है। और बंधी हुई धारणाएं लेकर आ जाते हो, तो वंचित रह जाओगे उससे जो यहां घट रहा है। यहां बहुत कुछ घट रहा है।
इस तरह की छोटी-छोटी बातें, हंसराज विश्नोई, छोड़ो। कुछ समझने की कोशिश करो। यहां एक मंदिर नहीं बन रहा है, यह तो एक मधुशाला है। यहां न कोई आराध्य है, न कोई आराधक।
ऋतुओं के आंगन में फिर शायद न लौटे,
आओ, प्राणों से यह पाहुन-क्षण जी लें।
क्या भरोसा, कल हो न हो!
ऋतुओं के आंगन में फिर शायद न लौटे,
आओ, प्राणों से यह पाहुन-क्षण जी लें।
कल को झर जाने दें झरते पत्तों के संग, वासंती धूप अंजुरी भर-भर कर पी लें। छाल-पत्र छोड़ खुली नभ में चंपई बांहें, अंधी अंतस की एक सख्त पर्त छीलें।
शब्द-शर्करा घुलने दें पल के प्याले में, धीरे-धीरे चुप्पी-रस की चुस्की लें।
लो, ऊपर उठ मंडराए, कुछ भूरे पतझरी पात,
नीम से उतरीं, कुछ चकराती पीली चीलें।
देहरी से तके पीपल को, रोज फागुनी किशोरी, आंखों को चुभ-चुभ जाएं कुछ नर्म कोंपल कीलें।
वर्जित खत बांच लिया, छुप कर क्वांरी कलियों ने, अब टूटी वर्जन की, सब सर्द मुहर-सीलें।

फागुनी हवा को दिल दे बैठा आम का छोरा,
फिर काम न आएं, बूढ़े बरगद की तर्क-दलीलें।
पिघली शिखरों की बर्फ, लौटे पाहुन पांखी, समाधिस्थ आंखों सी हुईं, शून्य-शांत झीलें।
आओ, प्राणों से यह फागुन-क्षण जी लें।
आओ, प्राणों से यह फागुन-क्षण जी लें।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
तीसरा प्रवचन

प्रेम: समाधि की छाया

पहला प्रश्नः ओशो, आपके प्रश्नों के उत्तर बहुत ही तर्कपूर्ण तथा कमाल के हैं। आपकी व्याख्या व्यावहारिक तथा जीवन-उपयोगी है। मैं विश्वास करता हूं कि अपनी आंखों से देखो तथा अपने पैरों चलो। क्या आप इस संत-वाणी को बोधगम्य बनाने की अनुकंपा करेंगे--सेवा से पवित्रता, तप से शक्ति, त्याग से शांति तथा अपनत्व से प्रीति स्वतः हो जाती है।

हरिराम, मैं जो कह रहा हूं वह तर्क नहीं है। तर्क तो केवल माध्यम है। अगर तुम माध्यम में ही अटक गए तो चूक जाओगे। फिर तो तुमने घोड़े को देखा, सवार को नहीं। तर्क तो सिर्फ घोड़ा है। सवार पर नजर रखो, क्योंकि मालिक सवार है।
तर्क से प्रभावित होने का कोई भी मूल्य नहीं है, क्योंकि तर्क तो वेश्या है, तर्क तो वकील है। वही तर्क पक्ष में हो सकता है, वही तर्क विपक्ष में हो सकता है। कोई अंतर नहीं पड़ता।
लेकिन अनुभूति तर्कातीत है। तर्क इशारा बन सकता है, चांद की तरफ बताने वाली अंगुली हो सकता है, लेकिन चांद नहीं।
और जो अंगुली से प्रभावित हो जाएं, वे चांद से वंचित रह जाते हैं। और सारी पृथ्वी अंगुलियों में उलझ गई है। ये सारे मत-मतांतर तर्क के जाल के सिवाय और क्या हैं? हिंदू और मुसलमान और ईसाई और जैन और बौद्ध--इनके बीच फासला क्या है? विवाद क्या है?
अलग-अलग तर्क की मान्यताओं को पकड़ रखा है, अलग-अलग अंगुलियां पकड़ रखी हैं। और ऐसे घनघोर विवाद में उलझे हैं सदियों से कि मेरी अंगुली श्रेष्ठ है, कि किसी को याद भी नहीं रही कि चांद का क्या हुआ! चांद पर नजर ही नहीं गई।
तुम कहते होः "आपके प्रश्नों के उत्तर बहुत ही तर्कपूर्ण हैं।"
ऐसा सोचा कि चूके, कि मुझसे नाता टूटा। तर्क तो केवल बहाना है--एक निमित्त, सीढ़ी। मगर सीढ़ी पर रुक मत जाना; सीढ़ी से पार होना है।
सब तर्कों के पार होना है, ताकि अतर्क्य में प्रवेश हो सके। सत्य तो तर्कातीत है, क्योंकि मनातीत है, शब्दातीत है। वहां विचार की कोई गति नहीं। न प्रवचनेन लभ्या! उसके संबंध में कोई प्रवचन नहीं हो सकता। उसके संबंध में कोई बात नहीं हो सकती। गूंगे का गुड़ है।
लेकिन हमारी सारी दीक्षा, हमारी सारी शिक्षा तर्क की है। तो बहुत से लोग मेरे पास भी आकर, हरिराम, भटक जाते हैं। मेरी बातें सुनते हैं, लेकिन सुनते हैं अपने ढर्रे, अपने ढांचे से। और तब मुश्किल खड़ी हो जाती है।
मैं तुम्हारी तर्कणा को संतुष्ट नहीं करना चाहता हूं, खंडित करना चाहता हूं। मैं तो तर्क का उपयोग तर्क को काटने के लिए करना चाहता हूं। मगर तुम हो पागल। जैसे पैर में कांटा लग जाए तो हम दूसरे कांटे से उस कांटे को निकालते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरा कांटा कांटा नहीं है, फूल है। इसका यह अर्थ नहीं है कि पहले कांटे को जब निकाल लो तो फेंक देना और दूसरे कांटे को घाव में सम्हाल कर रख लेना, पूजा करना उसकी।
जब पहला कांटा निकल आए दूसरे कांटे से, दोनों कांटे हैं, दोनों फेंक देने जैसे हैं। फेंकना ही नहीं, जला ही देना, नहीं तो किसी और के पैर में अटकेंगे।
तुम्हारे भीतर तर्क के कांटे अटके हुए हैं। मैं तर्क के कांटों से ही उन्हें खींच सकता हूं, और कोई उपाय नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं कोई तर्कवादी हूं, कि मेरा कोई तर्क में भरोसा है, कि मेरी तर्क में कोई श्रद्धा है। तुम्हारे कांटे के कारण मुझे कांटे का उपयोग करना पड़ रहा है। तुम्हारा कांटा निकल आए तो फिर कांटे के उपयोग की कोई जरूरत नहीं। दोनों कांटों को हम जला देंगे--एक साथ जला देंगे।

तर्क की सामर्थ्य क्या है? समझने की कोशिश करो। तर्क है क्या? तुम्हारे मन की चेष्टा सत्य को सिद्ध करने की। लेकिन मन क्या सत्य को सिद्ध कर सकता है? यह तो यूं हुआ जैसे अंधा आदमी विचार करके, मनन करके, शास्त्रों को सुन कर, आंख वालों की बातों का संग्रह इकट्ठा करके, और प्रकाश सत्य है, ऐसा सिद्ध करने की चेष्टा करे।
तर्क जुटा सकता है। तर्क बहुत हैं, सारा बाजार भरा है। लेकिन क्या तुम सोचते हो अंधा आदमी तर्कों की बड़ीशृंखला खड़ी कर ले अपने चारों तरफ और सिद्ध भी कर ले कि प्रकाश है, तो भी क्या उसे आंख मिल सकेगी? क्या वह प्रकाश के उस आनंद-अनुभव को उपलब्ध हो सकेगा? क्या देख सकेगा आकाश में फैले इंद्रधनुषों को? क्या तर्क के सहारे फूलों के रंग, और किरणों का जादुई आकाश, और तारों से भरी रात, और ये प्यारे सूर्योदय और सूर्यास्त, और यह सारे जगत पर फैला हुआ भागवत सौंदर्य, उसकी प्रतीति बन सकेगी?
बुद्ध के जीवन में यूं उल्लेख है। वे एक गांव में आए। और उस गांव के लोग एक अंधे को बुद्ध के पास लाए। अंधा कोई साधारण अंधा नहीं था। हरिराम, बिल्कुल तुम्हारे जैसा रहा होगा। बड़ा तार्किक था, बड़ा पंडित था, शास्त्रों का ज्ञाता था। उसकी जबान पर वेद थे। उसे शास्त्र कंठस्थ थे। उसने सारे गांव को हलाकान कर रखा था। उसके और गांव के लोगों के बीच एक ही विवाद था कि वह अंधा आदमी कहता था कि प्रकाश नहीं है; अगर है, तो तर्क से सिद्ध करो। लाओ, मैं जरा छूकर देख लूं, स्पर्श कर लूं। अगर है, तो स्पर्श हो सकता है; अगर नहीं है, तो स्पर्श कैसे होगा! लाओ, प्रत्यक्ष प्रमाण दो।
तर्क के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण प्रमाण है। वह तर्क की आधारशिला है। लेकिन गांव के लोग बेचारे करते भी तो क्या करते।
प्रत्यक्ष शब्द को ही समझो। आंख के सामने लाओ! आंख थी ही नहीं।
प्रत्यक्ष का अर्थ होता हैः आंख के सामने लाना। मगर आंख भी तो होनी चाहिए।
लेकिन गांव के सीधे-सादे लोग, वे तो प्रत्यक्ष शब्द का ठीक-ठीक अर्थ
भी नहीं जानते थे, नहीं तो बात वहीं हल हो जाती। उन्होंने बड़ी कोशिश की।
सीधे-सादे लोग थे, पोटलियां भर-भर कर, झोलियां भर-भर कर प्रकाश लाए।
मगर प्रकाश को क्या तुम पोटलियों में भर सकते हो? कि टोकरियों में भर सकते हो? टोकरियां आ गईं, अंधे ने छू भी लिया, लेकिन टोकरी छुई गई, प्रकाश तो नहीं छुआ गया। अंधे ने कहा, यह टोकरी है। तुम मुझे धोखा देते हो? तुम खुद अंधे हो और मुझको अंधा सिद्ध करते हो! टोकरी बताते हो और कहते हो यह प्रकाश है!
गांव के लोग देख रहे हैं कि टोकरी पर प्रकाश की किरणें झर रही हैं। टोकरी में प्रकाश लबालब है। मगर जब अंधा छूता है, तो प्रकाश तो नहीं छुआ जा सकता। हाथ प्रकाश को कैसे जान सकते हैं! टोकरी छुई जा सकती है।
अंधे ने कहा, अगर तुम ला नहीं सकते प्रकाश छूने के लिए, तो कम से कम प्रकाश को बजाओ, जैसे कि कोई ढोल बजाता है, घंटा बजाता है मंदिर में। मैं जरा सुन लूं, प्रकाश की आवाज सुन लूं, तो मैं राजी हो जाऊं।
और स्वभावतः अंधों के कान साधारण लोगों के कान से ज्यादा संवेदनशील होते हैं। क्योंकि आदमी की आंखों से अस्सी प्रतिशत ऊर्जा का प्रवाह होता है। आदमी की जिंदगी आंख से अस्सी प्रतिशत जीयी जाती है। इसीलिए तो अंधे पर बहुत दया आती है। लंगड़े पर इतनी दया नहीं आती, लूले पर इतनी दया नहीं आती। अंधे पर बहुत दया आती है। तुमने लंगड़े के लिए, लूले के लिए, अपंग के लिए कोई प्यारा शब्द नहीं खोजा। लेकिन अंधे को अंधा कहने में भी कष्ट होता है। हम उसे कहते हैं--सूरदास जी। इतना ही नहीं, हम एक ऐसे शब्द का प्रयोग करते हैं जो कि बिल्कुल ही उचित नहीं है, मगर अंधे पर दया के कारण हम उसको कहते हैं-- प्रज्ञाच्रु।
प्रज्ञाच्रु तो केवल बुद्ध को ही कहना चाहिए। जिसके भीतर की आंख खुल गई, जिसकी ज्ञान की आंख खुल गई, उसको ही प्रज्ञाच्रु कहना चाहिए। लेकिन अंधे को भी कहते हैं, सिर्फ दयावश। अंधा बड़ा दीन मालूम पड़ता है।
आंख से अस्सी प्रतिशत जीवन जुड़ा है। बाकी चार इंद्रियां शेष बीस प्रतिशत जीवन पाती हैं। तो जब आंख नहीं होती, तो आंख के निकटतम कान है, इसलिए आंख की सारी ऊर्जा कानों की तरफ प्रवाहित हो जाती है। इसलिए अंधे संगीतज्ञ होते हैं। उनकी संगीत की पकड़ गहरी हो जाती है। अंधा आदमी लोगों

के पैरों की आवाज से पहचान जाता है--कौन आ रहा है। अंधा आदमी लोगों की आवाज से पहचान जाता है--कौन बोला। अंधे की श्रवण-क्षमता बड़ी गहन हो जाती है।
तो उस अंधे ने कहा, यूं करो कि तुम प्रकाश को बजा कर बता दो, यूं जैसे
कि कोई तार छेड़ देता है सितार के, या यूं जैसे कि कोई बांसुरी बजा दे। करो कुछ उपाय। अंधे पर उन्हीं इंद्रियों का प्रभाव पड़ सकता था जो सक्रिय थीं-- कान, हाथ। या लाओ मैं सूंघ लूं तुम्हारे प्रकाश को। या लाओ मैं चख लूं। कुछ तो करो। कोई प्रमाण तो दो।
कहां से प्रमाण दिया जाए? गांव के लोग थक गए थे। गांव के लोग जानते हैं
कि प्रकाश है, मगर उनके पास तर्क नहीं। अंधे के पास तर्क हैं, आंख नहीं। और अंधे ने गांव भर के लोगों को पराजित कर रखा था। बुद्ध का आगमन हुआ तो लोगों ने कहा कि शायद अब यह झंझट हम से छूट जाए, बुद्ध शायद इसे राजी कर सकें।
वे सब उसे लेकर गए। उन्होंने बुद्ध से सारी स्थिति निवेदन की।
बुद्ध ने कहा, तुम मेरे पास लाए, इससे ही मैं देखता हूं कि तुम भूल में हो। मैं भी तर्क ही दे सकता हूं। इस आदमी के पास आंख तो है नहीं, इसलिए अनुभव तो इसको हो नहीं सकता। और जिस तरह इसने तुम्हारे तर्क खंडित किए हैं, यह मेरे तर्क भी खंडित कर देगा। अच्छा हो, मेरा वैद्य है... । सम्राट बिंबिसार ने बुद्ध की सेवा में अपना सबसे प्रसिद्ध वैद्य, उस समय का धनवंतरी, जीवक, बुद्ध को भेंट किया था। बुद्ध ने कहा, जीवक के पास ले जाओ। वह मेरे संघ में ही है, मेरे साथ ही प्रवास करता है। जीवक इसकी आंखें ठीक कर सकता है। और वही एक उपाय है। अगर इसकी आंख ठीक हो जाए तो शायद तर्क देने की जरूरत न रहे, यह खुद ही देख ले।
और जीवक ने चिकित्सा की। और उस अंधे आदमी की आंख पर जाला था सिर्फ--सभी
की आंखों पर जाला है; अंधा कोई पैदा नहीं होता--वह जाला कट गया। और जिस दिन उस अंधे का जाला कट गया, और उसने सूरज को उगते देखा, और फूलों को खिलते देखा, और हजारों रंगों का विस्तार देखा, वह नाचता हुआ बुद्ध के चरणों में आया। वह बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। और उसने कहा कि तुमने बड़ी कृपा की जो मुझे तर्क न दिया, नहीं तो मैं तुम्हें भी हरा कर लौट जाता। हालांकि तुम्हें हराने में मेरी ही हार थी, मगर वह मुझे पता ही न चलता। यह तो आज मैं जानता हूं कि मेरे सारे तर्क मूर्खतापूर्ण थे। लेकिन आज जानता हूं तुम्हारी अनुकंपा थी कि तुमने मुझे वैद्य के पास भेजा।
बुद्ध ने कहा, इसमें कुछ खास बात नहीं। मैं भी कोई दार्शनिक नहीं हूं, केवल एक वैद्य हूं। मैं भीतर की आंख का इलाज करता हूं। जीवक बाहर की आंख का इलाज करता है। अब तेरे भीतर की आंख का इलाज अगर तुझे कराना हो तो मेरे पास रुक जा। जैसे बाहर एक प्रकाश का जगत है, वैसे ही भीतर इससे भी विराट प्रकाश का एक जगत है।
वह अंधा दीक्षित हुआ--तत्क्षण दीक्षित हुआ। अब अनुभूति की बात थी। अब उसने एक बात देख ली थी। तर्क नहीं किया। बुद्ध ने कहा, तर्क तो नहीं करना? उसने कहा, तर्क अब करना ही नहीं। जिंदगी गंवा दी थी। तुम न मिले होते
तो मैं यूं ही भटक जाता। तुम मिले तो जिंदगी मिली--बाहर की मिली। और जब इतना हुआ है तो भीतर के संबंध में तो मुझे कुछ भी पता नहीं। मैं राजी हूं। तुम मेरी भीतर की आंख की चिकित्सा करो।
और भीतर की आंख की चिकित्सा की विधि है ध्यान, मन से मुक्ति। क्योंकि
मन है जाला, जो भीतर की आंख को घेरे हुए है। अगर तुम मेरे तर्क से प्रभावित हुए तो तुमने अपने जाले को और गहरा कर लिया। यह तो उलटी हो गई बात। आए थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास। हरिराम, ऐसा न करना। मेरे तर्क से क्या तुम्हें लेना-देना? इतना ही उपयोग कर लो कि तुम्हारे तर्क कट जाएं।
लेकिन तुमने जो लिखा है कि आपके प्रश्नों के उत्तर बहुत ही तर्कपूर्ण हैं... ।
तर्क में तुम्हारी श्रद्धा होगी। दुनिया में सबसे खतरनाक श्रद्धा तर्क में श्रद्धा है; क्योंकि वही व्यक्तियों के जीवन में क्रांति आने से रोक लेती है, वही है जिसके कारण लोग अंधेरे में ही जीते हैं, अंधेरे में ही मरते हैं, जीवन के रहस्य से अपरिचित रह जाते हैं।

और तुम कहते हो कि आपके उत्तर कमाल के हैं।

मेरे उत्तर सीधे-सादे हैं। कमाल कुछ भी नहीं, चमत्कार कुछ भी नहीं। मेरे उत्तर दो टूक हैं, इसीलिए तो सारा मुल्क मुझसे नाराज है। लोग मुझसे प्रसन्न होते अगर मैं हाथ से राख निकाल देता। तब कमाल होता। सारा देश गुणगान करता। यह अजीब अंधों का देश है, जहां राख हाथ से निकाली जाए तो सम्मान मिलता है, सत्कार मिलता है! जहां घड़ियां प्रकट की जाएं... जहां मदारीगिरी संतत्व का पर्यायवाची हो चुकी है।
मेरी बातें सीधी-सादी हैं, दो टूक हैं। दो तरह के खतरे हैं मेरी बातों के। एक खतरा जो तुम्हारे साथ घट सकता है कि तुम मेरी बातों में से तर्क पकड़ लो। बस चूके। दूसरा खतरा... कल तीन महिलाएं यहां मौजूद थीं। जब तुम हरिराम, मेरे तर्क और मेरे कमाल से प्रभावित हो रहे थे, तब तीन महिलाएं यहां से उठ कर चली गईं। और द्वारपाल से कह कर गईं कि हमारे हृदय को बहुत चोट पहुंची। हम बरदाश्त नहीं कर सकते। हम और नहीं सुन सकते।
ये दो खतरे हैं। या तो कुछ लोग हैं जो अपनी बुद्धि में अटके हैं, वे तर्कों को जोड़ लेंगे, उनकी बुद्धि का जाल बढ़ जाएगा। और कुछ लोग हैं जो अपनी भावनाओं में अटके हैं। उनकी भावना के अनुकूल कोई बात हो तो ठीक, उनकी भावना के प्रतिकूल कोई बात हो जाए तो बस, हृदय को चोट पहुंच गई।
अब मजबूरी है। तुम्हारी भावनाएं गलत, तुम्हारे विचार गलत। मुझे तोड़ना
ही पड़ेगा तुम्हारे विचारों को भी, तुम्हारी भावनाओं को भी। जब मैं विचार तोड़ता हूं, तो जिनकी भावनाओं की दुनिया है उनको कोई अड़चन नहीं होती। जब मैं भावनाएं तोड़ता हूं, तो जिनकी विचारों की दुनिया है उनको कोई अड़चन नहीं होती। महिलाएं थीं, आखिर महिलाएं ही हैं। उनको भारी कष्ट हो गया कि मैंने कह दिया कि कृष्ण ने हिंसा का समर्थन किया है, और कृष्ण से महा हिंसक पृथ्वी पर कोई दूसरा नहीं हुआ। चोट पहुंच गई, भारी चोट पहुंच गई। हृदय पर आघात हो गया।
लेकिन इसमें कसूर मेरा नहीं है। ऐसा कच्चा-कच्चा हृदय बना कर रखोगे, ऐसा छुई-मुई हृदय बना कर रखोगे, टूटेगा ही। कच्चे घड़े को बरसात में रख दोगे, मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी।
मगर नहीं, लोग यह नहीं देखते कि हमारी भावना को चोट पहुंची, इसका अर्थ
है कि हमारी भावना कहीं न कहीं निराधार है। अगर मेरी बात सच है तो चोट पहुंचने का क्या कारण? और अगर मेरी बात झूठ है, चोट पहुंचने का सवाल ही नहीं उठता। और दो में से कुछ... ।
पूरी गीता तो प्रमाण है कि कृष्ण के सारे तर्क हिंसा के पक्ष में हैं, युद्ध के पक्ष में हैं। महाभारत के समय भारत की जो रीढ़ टूटी, वह फिर कभी जुड़ न पाई। महाभारत के बाद भारत का जो अधोपतन हुआ, वह आज भी जारी है। कृष्ण के सिवाय और कौन जिम्मेवार है?
और मजा यह है कि ये तथाकथित भावनाशील लोग एक अजीब तरह की धारणाओं में, कल्पनाओं में, सपनों में जीने लगते हैं। ये अपनी मान्यताओं में इस तरह घिर जाते हैं कि फिर देखते ही नहीं कि और भी जीवन के पहलू हैं।
कृष्ण के जीवन को न तो गौर से देखा गया है, न परखा गया है। क्योंकि मुसलमान को तो कोई पड़ी नहीं; ईसाई को कुछ पड़ी नहीं; पारसी को कोई पड़ी नहीं; जैन को कुछ पड़ी नहीं। हिंदू को ही सोचना है। और हिंदू अपनीशृंखलाओं में जकड़ा है; सोच नहीं सकता। और अगर मुसलमान या ईसाई कुछ कहे तो लड़ने-मरने को तैयार है, क्योंकि हृदय को चोट पहुंच जाती है।
इस देश में ऐसे कमजोर हृदय के लोग हैं कि ऐसा लगता है पूरा का पूरा देश हृदय की बीमारी से पीड़ित है, कि जरा सा कुछ कहो कि दौरा पड़ा। अब ये तीन महिलाओं को इकट्ठा दौरा पड़ गया। यहां बैठना भी मुश्किल हो गया।
मगर ये दो तरह की अतियां संभव हैं। या तो तुम्हारी बुद्धि के तर्क के अनुकूल मेरी बात बैठ जाएगी, तो तुम तत्काल अपने जाल को बढ़ा लोगे। वह एक गलती। और या तुम्हारी भावना के प्रतिकूल बात पड़ जाएगी, तो तत्क्षण तुम अपने द्वार बंद कर लोगे।
क्या घबराहट थी भागने की? अगर मैं बातें गलत कह रहा था, तो हर्जा क्या है? सुन सकते हैं। और अगर सही हैं... और निश्चित ही उन तीन महिलाओं को यह बात लगी होगी कि बात सही है, अब सुनना खतरे से खाली नहीं है। अब और आगे सुनना मंहगा सौदा हो जाएगा। घर जाकर कन्हैयालाल को झूला झुलाने लगी

होंगी। झूला झूलें कन्हैयालाल! वह झूला ही झुला रहे हैं लोग उनको। पांच हजार साल हो गए, कन्हैयालाल झूला झूल रहे हैं और पूरा मुल्क सड़ रहा है। तुम कहते होः "आपकी व्याख्या व्यावहारिक तथा जीवन-उपयोगी है।"
नहीं, ऐसा नहीं है। मुझसे ज्यादा अव्यावहारिक आदमी तुम खोज नहीं सकोगे। काश, मैं व्यावहारिक होता तो यहां कुछ चुने हुए हिम्मतवर और साहसी लोग ही नहीं होते; यहां करोड़ों मूढ़ों की भीड़ इकट्ठी होती। व्यावहारिक मैं नहीं हूं। सत्य कभी व्यावहारिक नहीं होता। व्यावहारिक व्यक्ति को सत्य से कुछ लेना-देना नहीं होता। व्यावहारिक व्यक्ति को महत्वपूर्ण यह होता है कि कौन सी चीज भीड़ के साथ सफल होगी। व्यावहारिक व्यक्ति राजनैतिक होता है, धार्मिक नहीं होता। क्या लोग पसंद करेंगे, वह बोलता है; किसी को चोट नहीं पहुंचाता; सभी को सांत्वना देता है; सभी पर मलहम-पट्टी करता है। मुझसे ज्यादा अव्यावहारिक आदमी कहां खोजोगे? मेरे साथ वही चलने को राजी हो सकता है, जिसको सत्य की ही अभीप्सा हो और उस अभीप्सा के लिए सब कुछ दांव पर लगा देने की तैयारी हो। सिर्फ थोड़े से जुआरी मेरे साथ चल सकते हैं, थोड़े से शराबी, थोड़े से पियक्कड़। साधारण दुकानदार, साधारण भीड़-भाड़, साधारण लोग मेरे साथ खड़े भी नहीं हो सकते। मंहगा सौदा है।
व्यावहारिक मेरी बातें नहीं हैं, हरिराम। और जल्दी ही तुम देखोगे, जब तुम्हारे पूरे प्रश्न का उत्तर मैं दूंगा, कि कैसे मेरी बातें व्यावहारिक नहीं हैं। जीवन-उपयोगी जरूर हैं। मगर जीवन से किसको लेना-देना है? जीवन से किसको प्रयोजन है? किसी को मोक्ष जाना है। और पता नहीं किसलिए जाना है! क्या करना है मोक्ष जाकर इनको! यही भाड़ वहां झोंकेंगे जो यहां झोंक रहे हैं। करोगे क्या मोक्ष जाकर? मोक्ष ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? यही तो करोगे न जो यहां कर रहे हो? आदमी कोई मर जाने से ही थोड़े ही बदल जाता है। और आदमी कोई रामनाम की चदरिया ओढ़ लेने से थोड़े ही बदल जाता है। और आदमी कोई सत्यनारायण की कथा सुनने से थोड़े ही बदल जाता है। करोगे क्या मोक्ष में? मैंने सुना, एक जहाज पर एक ह्वेल मछली ने हमला किया। बड़ी भयंकर ह्वेल मछली थी। और जहाजी बड़े मुश्किल में पड़ गए। छोटा जहाज था। तो जो भी उनके पास खाने-पीने का सामान था, वे ह्वेल मछली के मुंह में फेंकते गए। थोड़ी देर के लिए ह्वेल मछली रुक जाए, जब पचा ले जो उसके मुंह में फेंका गया, फिर हमला करे। धीरे-धीरे सारा भोजन का सामान फिंक गया। फल-फूल, मेवा, जो भी था सब फिंक गया। लोग कुर्सियां-टेबलें फेंकने लगे। वे भी ह्वेल मछली पचा गई। अब तो कुछ भी न बचा फेंकने को। सिर्फ एक मारवाड़ी था, जो सबसे मोटा था। और यह मौका लोगों ने देखा कि चूकने जैसा नहीं है। मारवाड़ी से भी छुटकारा हो जाएगा। सो उन्होंने मारवाड़ी को फेंक दिया। ह्वेल मछली उसको भी पचा कर आ गई।
तब मल्लाहों ने सोचा कि अब कोई उपाय नहीं, अगर यह मारवाड़ी को पचा गई तो
अब सबको पचा जाएगी। अब बेहतर है जूझ लेना। तो उठा कर भाले और तलवारें वे टूट पड़े ह्वेल मछली पर। यह आखिरी उपाय था। और अंततः उन्होंने ह्वेल को मार डाला। उसको खींचा जहाज पर और उसको काटा। भीतर जो दृश्य देखा, देख कर चौंक गए।
मारवाड़ी ने दुकान खोल दी थी। कुर्सी पर बैठा हुआ था, टेबल सामने रखी थी; संतरे, मेवे, काजू-किशमिश बेच रहा था। पुराने लोग, जो ह्वेल मछली खा गई होगी कभी, वे बेचारे खरीद रहे थे। लोग दंग रह गए। एक क्षण को तो उनकी सांसें रुक गईं कि हद हो गई। मारवाड़ी ने जल्दी से सामान बेचा, जो कुछ पैसा- लत्ता इकट्ठा किया, वह रखा। और बाकी लोगों से, जिनके पास नहीं था, उनसे कहा, भई, बाद में चुका देना।
मोक्ष जाकर क्या करोगे? मारवाड़ी हो तो मारवाड़ी रहोगे। सिंधी हो तो उल्हास नगर बसाओगे। करोगे क्या? किसी को बैकुंठ जाना है, किसी को गोलोक जाना है! और कोई जिंदगी में ऊंची आकांक्षा नहीं है? गोलोक! क्या पा लोगे गऊमाता होकर? बहुत से बहुत सांड हो सकते हो, और क्या करोगे? मगर गोलोक में करोगे क्या?
जीवन से किसको लेना-देना है? काश, हमने जीवन से ही संबंध जोड़ा होता तो
आज यह दयनीय दशा न होती। हम सब बहुत दूर देख रहे हैं, मृत्यु के बाद।

मेरे पास लोग आकर पूछते हैं कि मृत्यु के बाद क्या होता है? मैं उनसे पूछता हूं, पहले यह तो पूछो कि मृत्यु के पहले क्या होता है? कोई नहीं पूछता, मैं बीस साल देश के कोने-कोने में घूम आया हूं, एक आदमी नहीं मिला जिसने मुझसे पूछा हो कि कुछ बताएं कि मृत्यु के पहले क्या होता है। सबकी फिक्र है--मृत्यु के बाद क्या होता है?
मेरी बातें निश्चित ही मूलतः जीवन से संबंधित हैं। मेरे लिए जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है। मेरे लिए जीवन ही मुक्ति है; और जीवन ही सत्य है; और जीवन ही सब कुछ है। और जीने की कला का नाम संन्यास है।
संन्यास जीवन का विरोध बन गया अतीत में, निषेध बन गया। कारण साफ है। संन्यासी वे लोग थे, जिनकी उत्सुकता थी कि मरने के बाद स्वर्ग, मोक्ष, कैवल्य, बैकुंठ, गोलोक, ऐसे-ऐसे स्थानों पर जाना है। जीवन में कोई रस न था। ये उदास और रुग्ण, हताश और बीमार लोगों के कारण सारा भारत एक तरह की उदासीनता से भर गया। जीवन का उल्लास खो गया। जीवन के उल्लास के प्रति एक निंदा का भाव पैदा हो गया। जीवन गर्हित हो गया, पाप हो गया। इतना पाप हो गया कि लोग पूछने लगे, आवागमन से छुटकारा कैसे हो?
आवागमन से छुटकारा का क्या मतलब? इतना ही मतलब न कि फिर दुबारा जीवन न मिले, ऐसा कुछ इंतजाम करना। क्या तुम सोचते हो इन लोगों की जीवन में कोई उत्सुकता थी? अगर जीवन में उत्सुकता थी तो इनकी प्रार्थना होती कि हे प्रभु, तूने यह जो जीवन दिया, यह जो अदभुत जीवन दिया, बार-बार देना, पुनः- पुनः देना!
लेकिन नहीं, एक ही प्रार्थना गूंज रही है सदियों से हर मंदिर में। फिर
वह जैन मंदिर हो, कि बौद्ध मंदिर हो, कि हिंदू मंदिर हो, एक ही प्रार्थना की अनुगूंज चल रही है कि हे प्रभु, आवागमन से छुटकारा। शिकायत की जा रही है कि क्यों तूने हमें जीवन दिया! क्यों न हमसे पहले पूछा।
और जीवन के लिए हमने क्या-क्या मूढ़तापूर्ण सिद्धांत खोजे हैं कि यह तुम्हारे पिछले जन्मों के पापों के कारण तुम्हें मिला है।
अब जरा सोचने जैसा है कि पिछले जन्म क्यों मिले थे? वे और पिछले जन्मों के पापों के कारण। चलो यह भी ठीक। पहला जन्म किसलिए मिला था? उसके पहले तो कोई जन्म था ही नहीं, इसलिए पाप का कोई सवाल नहीं उठता। पहला जन्म तो निश्चित ही परमात्मा का कसूर है। अगर कोई पापी है तो परमात्मा है। क्योंकि न होता बांस न बजती बांसुरी। यह जीवन दिया, और यह जीवन के प्रति तुम्हारी दृष्टि निंदा की, घृणा की... ।
तुमने परमात्मा को जीवन से बिल्कुल विपरीत बना रखा है--परमात्मा वह
है जो जीवन को छोड़ कर मिलता है। और मैं तुमसे कह रहा हूं, परमात्मा वह है जो जीवन की गहराई में मिलता है; जीवन की त्वरा में, जीवन के शिखरों पर। जीवन की धूप और जीवन की छांव--ये परमात्मा के रंग हैं। यह जीवन उसका ही विस्तार है।
इसलिए मेरा संन्यास भारत की सदियों पुरानी सड़ी-गली संन्यास की परंपरा में तहलका मचा दिया है। उनको लग रहा है, यह मैं क्या कर रहा हूं! संन्यासी तो वह है जो घर छोड़े, द्वार छोड़े, पत्नी छोड़े, बच्चे छोड़े। संन्यासी यानी भगोड़ा, पलायनवादी। और तुम्हारे बड़े-बड़े संन्यासी भी... अब मेरी मजबूरी है, अब किसी के हृदय को चोट लगने ही वाली है, जब मैं कहूंगा कि महावीर और बुद्ध भी पलायनवादी हैं। और इन्हीं का अनुसरण तुम कर रहे हो सदियों से--भागो, छोड़ो!
इन सारे पलायनवादियों और पलायनवादी जीवन-दर्शनों का यह परिणाम हुआ
है कि तुम दीन हो, दरिद्र हो, बीमार हो, परेशान हो। सारी दुनिया में भारत की स्थिति भिखारियों जैसी हो गई है। कौन जिम्मेवार है इसके लिए? चोट लगे तो लगे, लेकिन सत्य को समझना होगा। क्योंकि समझो तो बदला जा सकता है; छिपाओ तो बदलने का कोई उपाय नहीं। महावीर जिम्मेवार हैं, बुद्ध जिम्मेवार हैं, शंकराचार्य जिम्मेवार हैं। इन्होंने जीवन-विरोधी पाठ सिखाया है। इन्होंने पलायन सिखाया है।
और यह भी ख्याल रखना कि इन हजारों वर्षों में जो करोड़ों लोग घर छोड़ कर भागे हैं, उनके कारण कितनी स्त्रियां विधवा हो गईं--पतियों के रहते! कितने बच्चे अनाथ हो गए--पिताओं के रहते! कितनी स्त्रियां वेश्या हो गई होंगी--

मजबूरी में! कितने बच्चों को भीख मांगनी पड़ी होगी, चोरी करनी पड़ी होगी, हत्यारे हो गए होंगे--मजबूरी में! एक-एक संन्यासी के पीछे हजारों लोगों की जीवन-शृंखला पाप की तरफ मुड़ गई होगी। और ये तुम्हारे पुण्यात्मा हैं! और ये तुम्हारे महापुरुष हैं! ये तुम्हारे महात्मा हैं और तुम्हारे संत हैं! लेकिन सबके मूल में जीवन-विरोधी स्वर है।
तो हरिराम, उतनी बात जरूर मैं पूरी तरह घोषित करना चाहता हूं कि मेरे लिए जीवन के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं, और न कोई मोक्ष है, और न कोई कैवल्य है। जीवन की गहराई में डुबकी मारनी है। जीवन में ही छिपा है सारा राज। जीवन से मुक्त नहीं होना है, जीवन को मुक्त करना है। भेद को समझो। जीवन को मुक्ति से जीना है। जीवन को उसकी परिपूर्णता में अंगीकार करना है--एक उत्सव की भांति, एक धन्यवाद। और तभी तुम्हारे प्राणों में प्रार्थना उठेगी। और उस प्रार्थना का स्वर बड़ा अलग होगा, उसका संगीत अलग होगा।
तो मैं अपने संन्यासी को कह रहा हूं--घर में रहे, दुकान पर रहे, कारखाने में रहे, दफ्तर में रहे, बाजार में रहे; छोड़ना नहीं है, भागना नहीं है। इस सारे जीवन की जो अनंत अनुभूतियां हैं, जो अनंत अभिव्यक्तियां हैं, इन सारे आयामों से परिचित होना है। इन सारे आयामों से परिचित होकर ही जीवन में प्रौढ़ता आती है, परिपक्वता आती है, और एक समृद्धि आती है--बाहर की भी, भीतर की भी।
तुमने पूछा, और तुम्हारा पूछना बता रहा है कि तुम भी उन्हीं पलायनवादियों से प्रभावित हो। तुम भी मूलतः उसी सड़ी-गली परंपरा के बोझ से लदे हुए हो। शायद तुम्हें ख्याल न हो, होश भी न हो, क्योंकि परंपरा इतनी सदियों से तुम्हारी छाती पर बैठी है कि लगता है छाती का हिस्सा हो गई है। तुम कहते होः "मैं विश्वास करता हूं... ।"
पहली तो बात, मैं विश्वास-विरोधी हूं। या तो जानते हो, या नहीं जानते हो। यह विश्वास क्या बला है? जानते हो तो विश्वास की कोई जरूरत नहीं है। क्या तुम विश्वास करते हो कि सूरज में प्रकाश है? जानते हो। विश्वास का क्या सवाल है! कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता। बुद्ध में और शंकराचार्य में और रामानुज में और निम्बार्क में कोई विवाद नहीं चलता कि सूरज में प्रकाश है या नहीं। विवाद का कोई सवाल नहीं है। जिसके भी पास आंखें हैं, वह देखता है कि प्रकाश है, बात खतम हो गई। या तो तुम जानते हो। जो जानता है, उसके जीवन में विश्वास होते ही नहीं। और या फिर तुम नहीं जानते हो। नहीं जानते हो, तो विश्वास कैसे कर सकते हो?
मगर बेईमानी पैदा हो गई है। विश्वास है बेईमानी का स्रोत। जिस देश में जितने ज्यादा विश्वासी लोग हैं, वह देश उतना पाखंडी होगा। और इस देश से ज्यादा पाखंडी देश खोजना कठिन है। यही इस देश का एकमात्र गौरव समझो, इसकी महिमा यही है--विश्वास। विश्वास का अर्थ हैः पता तो नहीं है, मगर मानते हैं; मालूम तो नहीं है, मगर मानते हैं। यह तो असत्य की शुरुआत हो गई। यह तो पहला कदम ही सत्य की खोज में न गया।
सत्य को जानो, मानो मत; क्योंकि मान लिया तो फिर जानोगे कैसे? जब मान
ही लिया तो रुक गए। जानने की कोई जरूरत न रही। विश्वास सस्ते हैं, दो कौड़ी के हैं। जानने में क्रांति से गुजरना पड़ता है, अग्नि से गुजरना पड़ता है। जानने में जागना पड़ेगा। विश्वास में जागने की कोई जरूरत नहीं है। सोओ मजे से, गहरी नींद लो, सपने देखो--बस, विश्वास करते रहो। कभी-कभी मंदिर चले जाओ, मस्जिद चले जाओ, गुरुद्वारा चले जाओ; कभी गीता उठा कर पढ़ लो, कभी गुरुग्रंथ उठा कर पढ़ लो। विश्वास किए जाओ।
विश्वास आदमी के जीवन में सबसे बड़ा जहर है।
तुम कहते होः "मैं विश्वास करता हूं कि अपनी आंखों देखो तथा अपने पैरों चलो।"
बात तो बड़े पते की कह रहे हो। कहते हैं न, अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर
की सूझी! मगर सवाल यह है कि पहले अपनी आंखें होनी भी तो चाहिए। बात तो पते की कही--कि अपनी आंखों देखो और अपने पैरों चलो। मगर अपनी आंखें होनी भी तो चाहिए। अपने पैर भी तो होने चाहिए, चलोगे कैसे? अपनी आंखें नहीं हैं, देखोगे कैसे? और जाहिर है कि अपनी आंखें नहीं हैं। विश्वास इसी की तो

घोषणा कर रहा है। अंधा आदमी कह सकता है, मुझे प्रकाश में विश्वास है। बहरा कह सकता है, मैं मानता हूं कि संगीत होता है। आंख वाले को विश्वास की कोई जरूरत नहीं होती।
अब तुमने भी गजब का विश्वास पकड़ा हुआ है--अपनी आंखों देखो तथा अपने पैरों चलो। बात जंचेगी; जिससे भी कहोगे, उसी को जंचेगी। वह तो मुझ जैसे पागल के पास आ जाओगे तो झंझट में पड़ोगे; क्योंकि मुझे धोखा देना असंभव है। हरिराम, आंखें हैं तुम्हारे पास अपनी? अपने पैर हैं?
अपने पैर जिसके पास हैं, अपनी आंखें जिसके पास हैं, उसको ही तो हम कहते हैं--बुद्धत्व को उपलब्ध, परम ज्ञान को उपलब्ध। मगर फिर विश्वास का कोई सवाल ही नहीं उठता। फिर जीवन विश्वासों से नहीं जीया जाता। विश्वास तो यूं समझो जैसे लंगड़े के हाथ में बैसाखियां। विश्वास तो यूं समझो जैसे पश्चिम के देशों में कुत्ते तैयार किए जाते हैं, उनको प्रशिक्षित किया जाता है, अंधों के लिए। जो अंधे खरीद सकते हैं--क्योंकि वे कुत्ते बड़े कीमती होते हैं--बस अंधा आदमी कुत्ते की जंजीर पकड़े रहता है और कुत्ता उसे ले जाता है, जहां अंधा चाहे वहां ले जाता है। उसे पूछना नहीं पड़ता रास्तों पर, कुत्ता उसका मार्ग-दर्शक होता है। जिस दुकान पर जाना है, वहां पहुंचा देता है; जिस मकान पर जाना है, वहां पहुंचा देता है।
मैंने सुना है कि एक दर्जी की दुकान में यूं हुआ न्यूयार्क में कि एक नये-नये दर्जी को नौकरी रखा, और उसने एक इस तरह का सूट तैयार किया कि वह सूट बिके ही नहीं। था ही ऐसा बेहूदा। रंग भी उसने ऐसे चुने थे कि जो देखे उसको एकदम हटा दे, कि हटाओ इसको सामने से! इसको कौन पहनेगा? उसकी डिजाइन भी ऐसी थी कि जो पहने वही सरकस का जोकर मालूम पड़े।
मालिक ने कहा कि तुमने कीमती वस्त्र खराब किया है, सात दिन का वक्त देता हूं, मैं छुट्टी पर जा रहा हूं। सात दिन के भीतर, यह जो तुमने चीज बनाई है, बिकनी ही चाहिए। अगर नहीं बिकी तो तुम्हारी नौकरी खत्म।
सात दिन बाद मालिक लौटा। देखा कि उसका सहयोगी, कई जगह पट्टियां बंधी हैं, लंगड़ा-लंगड़ा कर चल रहा है। पूछा कि क्या हुआ भाई?
उसने कहा कि और तो सब ठीक है, वह जो मैंने ड्रेस बनाई थी, बिक गई।
मालिक ने कहा, चलो वह तो ठीक हुआ बिक गई, मगर तुम्हारी यह हालत कैसे हुई?
उसने कहा कि एक अंधे आदमी को बेची। मगर उसके कुत्ते ने मेरी फजीहत कर दी। अंधे के सिवाय उसको कोई लेने को तैयार था भी नहीं। किसी तरह अंधे को राजी किया, मगर कुत्ते ने हलाकान कर डाला; कुत्ता इनकार करता था, कि मत खरीदो। अंधे को खींच कर बाहर ले जाना चाहता था। और मेरे जीवन के लिए वही एक मौका था। मैं भी जूझ गया कुत्ते से। क्योंकि फिर अंधा आए या न आए। और सात दिन निकले जा रहे हैं। सो हालांकि मेरी फजीहत हो गई, फ्रैक्चर भी हो गया, जगह-जगह खाल मेरी छिल गई, खूना-खान कर दिया। वह कुत्ता भी बड़ा खतरनाक था। विश्वास या तो अंधे के हाथ की बैसाखियां हैं, लंगड़े के हाथ की बैसाखियां हैं, या अंधे और लंगड़ों के साथ चलने वाले कुत्ते हैं। इससे ज्यादा नहीं।
तुम पूछते हो कि क्या आप इस संत-वाणी को बोधगम्य बनाने की अनुकंपा करेंगे?
तुमने यह बात मान ही ली कि मैं इसको संत-वाणी समझूंगा, और बोधगम्य बनाने की कोशिश करूंगा। और जो वाणी तुमने... वह बोधगम्य बनाने जैसी है ही नहीं। बुद्धू वाणी है, संत वाणी जैसा उसमें कुछ भी नहीं है। मगर यह सदियों से ठोकी गई है तुम्हारी खोपड़ी में बात।
तुम पूछते होः "सेवा से पवित्रता... ।"
सेवा कहां से लाओगे? ओढ़ना पड़ेगी, थोपना पड़ेगी। सवाल तो सेवा से शुरू होगा न? सेवा से पवित्रता। तो सेवा बीज है। सेवा कहां से लाओगे? सेवा कैसे पैदा करोगे? क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविक प्रक्रिया, मनुष्य का नैसर्गिक स्वभाव सेवा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है अपने ढंग से जीए, अपने आनंद में जीए। क्यों अपने जीवन को किसी और के जीवन के लिए समर्पित करे? यह जीवन की सहज-स्फुरणा है। यह कोई सिखावन नहीं है।

और जिनको तुम कहते हो सेवा करने वाले लोग, सेवक। और हरिराम भी सेवक मालूम होते हैं। क्योंकि उन्होंने अपने नाम के नीचे लिखा है--संचालक, मानव सेवा संघ। प्रत्येक व्यक्ति मूलतः और स्वभावतः अपने आनंद में जीना चाहता है। और सेवा का अर्थ हैः खुद न जीओ, खुद के जीवन को दूसरों के जीवन के लिए समर्पित करो। यह एक अस्वाभाविक प्रक्रिया है।
एक मां अपने बच्चे को समझा रही थी कि बेटा, भगवान ने तुम्हें किसलिए बनाया है, जानते हो? दूसरों की सेवा करने के लिए।
उस बेटे ने कहा, चलो, यह तो ठीक है। अब सवाल यह उठता है कि दूसरों को किसलिए बनाया? चलो, मुझे इसलिए बनाया कि मैं दूसरों की सेवा करूं। मगर दूसरों को किसलिए बनाया? इसीलिए कि मैं उनकी सेवा करूं?
मां ने कहा कि दूसरों को इसलिए बनाया कि वे भी दूसरों की सेवा करें।
तो बेटे ने कहा, फिर भगवान है कि उसको थोड़ा गणित भी नहीं आता! मैं उनकी सेवा करूं, वे मेरी सेवा करें, इतना घनचक्करपन क्या करना? मैं अपनी सेवा करूं, वे अपनी सेवा करें। सीधी-साफ बात है।
मगर छोटे बच्चों को अक्सर साफ बात दिखाई पड़ जाती है, जो कि बड़े-बूढ़ों
को नहीं दिखाई पड़ती। क्योंकि बड़े-बूढ़ों का मतलब है कि काफी कचरा भर गया खोपड़ी में, स्लेट साफ नहीं है। यह बच्चा ठीक कह रहा है कि यह अजीब भगवान है! मुझको बनाया किसी और की सेवा करने के लिए, उनको बनाया मेरी सेवा करने के लिए! मैं उनके पैर दबाऊं, वे मेरे पैर दबाएं। मैं उनका भोजन बनाऊं, वे मेरा भोजन बनाएं। अपना-अपना काम क्यों न कर लें?
सेवा का मौलिक अर्थ यही होता है कि तुम अपने जीवन को मत जीओ; तुम अपने आनंद को, अपने जीवन के अवसर को किसी और पर समर्पित कर दो। यह तुम करोगे कैसे?
मैं सेवा का विरोधी नहीं हूं, ख्याल रखना। मगर सवाल यह है कि तुमने जो सूत्र दिया है, उस सूत्र के अनुसार यह बात घट कैसे सकती है? कहां से लाओगे सेवा? तुम्हें जबरदस्ती अपने को दबाना पड़ेगा, दमन करना पड़ेगा। अपनी नैसर्गिकता को दबा देना होगा।
और जब तुम अपनी नैसर्गिकता को दबाओगे, तो स्वभावतः पीछे अपेक्षा होगी। नहीं तो दबाना मुश्किल हो जाएगा। सवाल उठेगा तुम्हारे सामने कि क्यों? क्यों दमन करूं? तो फिर तुम्हारे भीतर से महत्वाकांक्षा जगेगी। वह कहेगी, अगर सेवा करोगे तो मेवा पाओगे। मतलब सेवा असली चीज नहीं है, मेवा असली चीज है! मतलब सेवा सेवा न रही, धंधा हो गया। सेवा करोगे तो स्वर्ग जाओगे। सेवा करोगे तो पुण्य होगा, दिव्य लोक में पैदा होओगे।
और दिव्य लोक में क्या करोगे? वहां भी सेवा करोगे? सुना नहीं कभी किसी ने, किसी पुराण में उल्लेख नहीं है कि देवता किसी की सेवा करते हैं। वहां भोग करना, जी भर कर भोग करना। वहां मेनकाएं हैं, और उर्वशियां हैं, और अप्सराएं हैं, और कल्पवृक्ष हैं।
अब सोचो जरा हरिराम, संचालक, मानव सेवा संघ, बैठे कल्पवृक्ष के नीचे
कि आने दो कोकाकोला! बहुत कर ली सेवा, अब मेवा लूटें!
स्वर्गों की क्या-क्या कल्पनाएं हैं! वहां शराबों के झरने बह रहे हैं। यहां चाय पीना गुनाह है! यहां तो प्याऊ खोलो और प्यासों को पानी पिलाओ। मगर नजर कहां अटकी है? कि चलो थोड़े दिन की बात है, अरे दो दिन की बात है, गुजार ही लेंगे, फिर तो आनंद ही आनंद है। फिर तो स्वर्ग में, बहिश्त में शराब के चश्मे बह रहे हैं। कोई लाइसेंस की जरूरत नहीं, कोई शराबबंदी नहीं, जी भर कर पीओ। पीओ ही नहीं, नहाओ, धोओ, डुबकी मारो, तैरो। और कल्पवृक्ष के नीचे तो सब चीजें संभव हैं। जो चाहो। चाहा नहीं कि हुआ नहीं।
सेवा किसलिए? और सारे धर्म कहते हैं कि जो सेवा करेगा उसको परलोक में अनंत गुना मिलेगा। यह तो लाटरी हो गई। सेवा लाओगे कैसे? यह सवाल है। और यह सवाल कोई नया नहीं है। सेवा को लाने के लिए सारे धर्मगुरुओं को स्वर्ग लाना पड़ा। सेवा को लाने के लिए स्वर्ग के सारे प्रलोभन लाने पड़े। सेवा को लाने के लिए हजार तरह के लोभ तुम्हारे भीतर जगाने पड़े। इतना ही नहीं, नरक के भय भी जगाने पड़े। तुम्हें दो चक्कियों के बीच में पीसा गया--नरक और स्वर्ग। नरक का डर कि अगर सेवा नहीं की तो याद रखना, नरक में अग्नि धधक रही

है। धधकती ही रहती है, बुझती नहीं कभी। कड़ाहों में पकौड़ों की तरह चुड़ाए जाओगे।
अब हरिराम बिल्कुल नहीं चाहेंगे कि कड़ाहे में और पकौड़े की तरह चुड़ाए जाएं। यह बात बिल्कुल जंचेगी भी नहीं, कि भई मैं तो मानव सेवा संघ का संचालक हूं! यह दुर्व्यवहार मेरे साथ? सदा जीवन में सेवा में भरोसा किया। तो नरक का डर, जो सेवा नहीं करेंगे। और स्वर्ग का प्रलोभन! आदमी को शोषित करने का पुरोहित का रास्ता क्या रहा है? भय और लोभ। सेवा को लाओगे कैसे?
यह सवाल महत्वपूर्ण है। लाने का उपाय एक ही है! या तो भय दो, घबड़ाओ; या प्रलोभन दो। और प्रलोभन और भय से जो सेवा कर रहा है, क्या तुम सोचते हो वह सेवा है? क्या उसमें प्रेम है? क्या आनंद है? क्या उत्सव है? जहां हेतु है वहां कैसी सेवा? धोखा है, पाखंड है। और इस पाखंड का परिणाम यह होता है कि फिर तुम इसकी भी फिक्र नहीं करते कि जिसकी तुम सेवा कर रहे हो, उसको सेवा करवानी है या नहीं।
मैं इस देश में यात्रा करता रहा। जिन लोगों ने सबसे ज्यादा मुझे सताया वे सेवा करने वाले लोग! वे कहें, हम तो सेवा करेंगे ही। भई मुझे करवानी नहीं है। मगर वे कहें कि नहीं, संत-महात्माओं के पैर तो दबाने ही पड़ते हैं। मगर मुझे दबवाने ही नहीं हैं।
मुझे बचपन से ही घृणा रही पैर दबवाने से। क्योंकि मेरे पिता के पिता थे, उनको बड़ा शौक था पैर दबवाने का। उनसे बच कर निकलना पड़ता था। उन्होंने देखा कि उन्होंने कहा, आओ, जरा पैर दबाओ! फिर मेरे पिता थे, उनको भी पैर दबवाने का शौक था। उन दोनों ने मुझे बिल्कुल चौंका ही दिया। मैंने किसी से पैर नहीं दबवाए, क्योंकि मुझे भलीभांति पता है कि पैर दबाते वक्त मेरी क्या हालत होती थी--कि इधर पैर दबाता रहता और भीतर-भीतर मंत्र पढ़ता कि अब सो भी जाओ, सो भी जाओ, गहरी नींद में खो जाओ! और जैसे ही मैंने खुर्राटा उनका सुना कि मैं भागा। क्योंकि फिर नींद खुल जाए, अरे कोई भरोसा है! ये पैर दबवाने वाले लोग बड़े होशियार होते हैं। जब तक पैर दबाओ, बड़ी शांति से पड़े रहते हैं; जैसे ही छोड़ो कि एकदम--कहां जा रहे हो?
मगर लोग दबाते थे। मैं यात्रा करता, जबरदस्ती। तब मैंने देखा कि उनके विचारों का आधार क्या है। सदियों से उन्हें समझाया गया है कि सेवा करो संतों की तो फिर मेवा ही मेवा है। ट्रेन में चढ़ जाते। मैं सोया हूं, अचानक नींद टूटती है कि कोई आदमी पैर दबा रहा है। कि भई क्या कर रहे हो? वह कहता, आप आराम से सोएं, मैं सेवा कर रहा हूं।
मुझसे तो पूछ लेते!
अरे आपसे क्या पूछना! अरे संत-महात्माओं से क्या पूछना! और आपका क्या बिगड़ जाएगा अगर हम सेवा कर लेंगे और पुण्य का फल हमें हो जाएगा?
एक स्कूल में एक ईसाई पादरी ने बच्चों को समझाया कि कम से कम एक सेवा
का कार्य तो रोज करना ही चाहिए चौबीस घंटे में। और दूसरे दिन पूछा कि कोई सेवा का कार्य किया?
एक बच्चे ने कहा कि हां, एक बुढ़िया को रास्ता पार करवाया। बड़ी भीड़-भाड़ थी। बड़ा ट्रैफिक था।
पादरी ने कहा कि बहुत अच्छा किया। भगवान तुम्हें बहुत-बहुत लाभ देगा। इसी तरह बढ़े जाओ। सेवा करो। सेवा से बड़ा कोई धर्म नहीं, कोई पुण्य नहीं। औरों से पूछा, किसी और ने सेवा की?
एक दूसरे बच्चे ने हाथ उठाया कि हां, मैंने भी एक बुढ़िया को रास्ता पार कराया।
तब थोड़ा पादरी शंकित हुआ कि दोनों को बुढ़िएं मिल गईं! मगर बुढ़िएं भी कोई कम थोड़े ही हैं, इतना बड़ा गांव, होंगी। कोई बात नहीं। उसने कहा, अच्छा किया, बहुत अच्छा किया। लाभ पाओगे।
तीसरे ने हाथ उठाया। मैंने भी एक बुढ़िया को पार किया।
पादरी बोला कि बुढ़िएं ही बुढ़िएं पार कीं? और तुम सबको बुढ़िएं मिल गईं?
उस तीसरे ने कहा, अब आपसे क्या छिपाना! बुढ़िया एक ही थी, हम तीनों ने पार किया।
तो पादरी ने कहा कि तीन की क्या जरूरत थी?

अरे--उन्होंने कहा--आपको पता नहीं, बुढ़िया बड़ी शैतान थी। इतनी मार-पीट
की उसने, क्योंकि वह उस तरफ जाना ही नहीं चाहती थी। मगर हमें तो करनी ही थी सेवा। पिट गए, कुट गए, मगर पार करवा कर रहे। मगर वह दुष्ट बुढ़िया, हम उसको ले जाएं खींच कर, वह फिर भागे, चीख-पुकार मचाए, शोरगुल मचाए, पुलिस वाले को बुलाए। मगर जब तय कर लिया एक, संकल्प कर लिया, दृढ़ निश्चय, तो हम भी हटे नहीं। दो ने हाथ पकड़े और तीसरे ने पीछे से कमर पकड़ी। बुढ़िया थी तो सौ साल की, मगर बड़ी मजबूत काठी की थी। क्या ऊधम मचाया उसने! और क्या भीड़ खड़ी कर दी! मगर हम भी उसको उस तरफ करके भाग खड़े हुए। और अब आपसे क्या छिपाना, हमारे भागते से ही वह वापस दूसरी तरफ चली गई। मगर हमने जो सेवा करनी थी वह करके दिखा दी।
सेवा करना किसी चीज की शुरुआत नहीं हो सकती।
तुम पूछते होः "सेवा से पवित्रता... ।"
सेवा से सिर्फ पाखंड पैदा होगा, कोई पवित्रता नहीं पैदा होगी। सेवा
से अहंकार पैदा होगा, कोई पवित्रता पैदा नहीं होगी। तथाकथित सेवकों का जितना अहंकार होता है, उतना किसी और का नहीं होता।
और तुम पूछते होः "तप से शक्ति... ।"
शक्ति की जरूरत क्या है? शक्ति की आकांक्षा मूलतः अहंकार की आकांक्षा है। क्या करोगे शक्ति का? लेकिन तप करने वाले लोग इसी आशा में कर रहे हैं तप। सिर के बल खड़े हैं, चारों तरफ आग जला रखी है, नंगे खड़े हैं, भूखे खड़े हैं--इसी आशा में कि किसी तरह शक्ति को पा लेंगे। मगर शक्ति किसलिए? शक्ति तो पोषण है अहंकार का। कोई धन पाने में लगा है, वह भी शक्ति की खोज कर रहा है। और कोई राजनीति में उतरा हुआ है, वह भी पद की खोज कर रहा है, पद शक्ति लाता है। और कोई तपश्चर्या कर रहा है, मगर इरादे वही। इरादों में कोई भेद नहीं।
तुम्हारे धार्मिक, अधार्मिक लोग बिल्कुल एक ही तरह के हैं। चाहे दिल्ली चलो, यह उनका नारा हो; और चाहे गोलोक चलो; मगर दोनों की खोपड़ी में एक ही गोबर भरा है--शक्ति चाहिए। क्यों? क्या करोगे शक्ति का? चमत्कार दिखलाने हैं!
रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। रामकृष्ण से कहा कि तुमको लोग परमहंस कहते हैं, अगर असली परमहंस हो तो आओ मेरे साथ, गंगा पर चल कर दिखाओ! रामकृष्ण ने कहा कि नहीं भाई, मैं पानी पर नहीं चल सकता। अगर परमात्मा
ने मुझे पानी पर चलने के लिए बनाया होता, तो मछलियों जैसा बनाया होता। उसने जमीन पर चलने के लिए बनाया। उसके इरादे के विपरीत मैं नहीं जा सकता। मगर मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूं कि कितना समय लगा तुम्हें पानी पर चलने की यह कला सीखने में?
उसने कहा, अठारह साल तपश्चर्या की है! कठिन तपश्चर्या की है! खड्ग की धार पर चला हूं। तब कहीं यह शक्ति हाथ लगी है, यह कोई यूं ही हाथ नहीं लग जाती।
रामकृष्ण कहने लगे, अठारह साल तुमने व्यर्थ गंवाए। मुझे तो जब भी गंगा के उस तरफ जाना होता है तो दो पैसे में मांझी मुझे पार करवा देता है। तो अठारह साल में तुमने जो कमाया उसकी कीमत दो पैसे से ज्यादा नहीं है। लेकिन यह--तप से शक्ति!
शक्ति का क्या करोगे? तुम्हारे ऋषि-मुनि तपश्चर्या कर-कर के शक्ति की कोशिश में लगे रहे। स्वभावतः राजनीति का ही सब दांव-पेंच था। इसलिए कथाएं हैं तुम्हारे पुराणों में कि इंद्र का इंद्रासन डोलने लगता है। क्योंकि इंद्र घबड़ाता है कि अब यह दूसरा आदमी शक्तिशाली हुआ जा रहा है, यह इंद्र न बन जाए। और इंद्र घबड़ाता है तो फिर डगमगाने की कोशिश करता है ऋषि-मुनियों को। तो भेजता है उर्वशियों को, मेनकाओं को, कि नाचो इनके आस-पास। क्योंकि उसे भी भलीभांति पता है कि इनको भ्रष्ट करने का सबसे सुगम उपाय क्या है। सिग्मंड फ्रायड के तीन हजार साल पहले इंद्र को पता था कि ये ऋषि-मुनि कुछ भी नहीं हैं, कामवासना को दबाए बैठे हैं। इनके भीतर कामवासना दबी बैठी है, उर्वशी को देखते ही भड़क उठेंगे। और भड़क जाते थे। मुंह से लार टपकने लगती थी। और इन्हीं ऋषि-मुनियों की संतान तुम अपने को घोषित कर-कर के बड़े

प्रसन्न होते हो--कि हम ऋषि-मुनियों की संतान! जरा इन ऋषि-मुनियों के चेहरे तो देखो! इनकी आकांक्षाएं तो देखो!
मगर एक बड़े मजे की बात है कि ऋषि-मुनियों की संतान जो लोग कहते हैं, वे
यह सोचते ही नहीं कि एक ऋषि और एक मुनि दोनों के मिलने से संतान पैदा हो कैसे सकती है? गजब की संतानें पैदा कर गए! चमत्कार कर गए। तपश्चर्या का चमत्कार इसी को तो कहते हैं। इसमें स्त्रियां कहीं आती ही नहीं--ऋषि-मुनि! स्त्रियों की तो कोई गिनती ही नहीं है। जिनकी संतान हो, उनकी गिनती नहीं। और ये जमाने भर के मूढ़ जिनकी कुल आकांक्षा इतनी है कि किसी तरह स्वर्ग में प्रथम स्थान पा लें... । नहीं तो इंद्र क्यों डर रहा है? इंद्र क्यों घबड़ा रहा है? उसने किसी तरह तो सिंहासन पर कब्जा किया, अब ये दूसरे कब्जे वाले आ रहे हैं, ये दूसरे दावेदार आ रहे हैं। इनको रोकना जरूरी है। इनको, इसके पहले कि ये करीब आ जाएं सिंहासन के, गिरा देना जरूरी है।
और गिराने का उसने सबसे सुगम रास्ता खोजा है--स्त्री को पहुंचा देना। इससे बात बड़ी साफ है। बात गहरी है और साफ है कि तुम्हारे ऋषि-मुनि आग दबाए बैठे हैं, कामवासना को दबाए बैठे हैं। स्त्रियां छोड़ कर भागे हैं, पत्नियों को छोड़ कर आए हैं, इसलिए स्वभावतः स्त्रियों के द्वारा ही डगमगाए जा सकते हैं। और फिर उर्वशी आ जाए तो ऋषि-मुनि भी सोचने लगते हैं कि अब साधना फिर कल शुरू करेंगे, ऐसी भी क्या जल्दी है! हाथ जो फल लग रहा है, पहले तो यह लो। फिर देखेंगे पीछे।
यह--तप से शक्ति--यह आकांक्षा ही अहंकार की है।
और तुम पूछते होः "त्याग से शांति... ।"
त्याग से शांति का क्या संबंध? भूखे रहोगे, भोजन का त्याग कर दोगे, शांति मिल जाएगी? सिर्फ शरीर अशांत होगा, बेचैन होगा, तड़फेगा मछली की तरह, जैसे मछली को किसी ने धूप में रेत पर डाल दिया हो। इसको तुम शांति कह रहे हो? नंगे खड़े रहोगे ठंड में, और शांति मिल जाएगी? नंगे खड़े रहोगे धूप में और शरीर को सड़ाओगे और गलाओगे, और तुम समझते हो शांति मिल जाएगी? काश, शांति इतना आसान मामला होती!
नहीं, तुम्हारे सारे सूत्र गलत हैं। मगर ये सारे सूत्र परंपरागत हैं, इसलिए तुमने कभी इन पर विचार नहीं किया होगा। तुमने चुपचाप मान लिया है। और तुम अंतिम बात कहते होः "अपनत्व से प्रीति।"
अपनत्व का नाम ही तो मोह है। मेरा! और जहां मेरा है, वहां प्रीति नहीं। प्रीति में मेरा और मैं दोनों मर जाते हैं। प्रीति तो निरहंकार अवस्था की सुगंध है। वहां कहां मेरा और कहां तेरा?
तुम्हारी पूरी शिक्षा हरिराम, गलत है। अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं सूत्र को ठीक कर दूं। सूत्र को यूं बनाओ--ध्यान से समाधि। ध्यान का अर्थ होता हैः निर्विचार होना। जैसे-जैसे तुम निर्विचार होने लगे, तुम्हारे भीतर समाधान आने लगा। क्योंकि विचारों के कारण ही समस्याएं हैं। विचारों के कारण ही तनाव है। विचारों के कारण ही भीतर विक्षिप्तता है। ध्यान जैसे ही उतरना शुरू हुआ कि तुम्हारे भीतर समाधि, समाधान का फूल खिला।
जिस दिन ध्यान पूर्ण हो जाता है, पूर्ण अर्थात तुम्हारे भीतर जब शून्य विराजमान हो जाता है, कोई विचार की तरंग नहीं, कोई आकांक्षा नहीं-- स्वर्ग की, मोक्ष की, कैवल्य की, बैकुंठ की। क्योंकि वे सब विचार हैं। कोई इच्छा नहीं अमरत्व पाने की। कोई इच्छा ही नहीं, क्योंकि इच्छा मात्र विचार है। सारे विचार गए। और तुम्हारे चैतन्य की झील बिल्कुल ही निस्तरंग हो गई। उसका नाम समाधि। खिल गया फूल तुम्हारे जीवन का। खिल गया कमल-- सहस्रदल कमल।
ध्यान है प्रक्रिया, यात्रा; और समाधि है गंतव्य। ध्यान है गति और समाधि है गंतव्य। फिर समाधि से सब पैदा होता है। सेवा पैदा होती है। लेकिन उसका रंग-रूप और, रंग-ढंग और, उसका सौंदर्य और। फिर तुम सेवा इसलिए नहीं करते कि मेवा पाना है।
समाधिस्थ व्यक्ति के जीवन में स्वभावतः, सहजतः, बिना किसी हेतु के, सेवा होती है। क्योंकि उसके भीतर आनंद फलित हुआ है। और आनंद का यह स्वभाव है कि वह बंटना चाहता है। और आनंद का बंटना ही सेवा है।

जिसके भीतर समाधि का दीया जला, उसके भीतर रोशनी हुई। उसके चारों तरफ रोशनी प्रकट होने लगेगी। उसके खिड़की, द्वार-दरवाजों से, रंध्र-रंध्र से प्रकाश दूसरों तक पहुंचने लगेगा। यह प्रकाश, यह उत्सव, यह आनंद दूसरों तक पहुंच जाना, इसको मैं सेवा कहता हूं। किस ढंग से पहुंचेगा, यह और बात। हजार ढंग होंगे--हजार लोग होंगे तो उनके हजार ढंग होंगे। लेकिन तब इस सेवा से कोई अहंकार नहीं भरेगा। और न इस सेवा में कोई इच्छा होगी कि प्राप्ति हो। तब यह फलाकांक्षा-रहित होगी। तब तुम ऐसा न कहोगे कि सेवा से स्वर्ग मिलता है। तब तुम ऐसा जानोगे कि सेवा स्वर्ग है। और यह क्रांतिकारी परिवर्तन है।
फिर पवित्रता भी आएगी। समाधि में सब आ जाएगा। क्योंकि जिसका चित्त विचारों से निर्मल हुआ और वासनाओं से मुक्त हुआ, अब और क्या पवित्रता में कमी रह गई? यही तो निर्दोषता है। यह पवित्रता और ढंग की होगी। तुम्हारे साधु-संतों की जो पवित्रता है, वह थोथी है, ऊपर से थोपी गई है, चेष्टा से लाई गई है। हर तरह का उपाय कर रहे हैं कि पवित्र बने रहें। और क्या-क्या मूढ़ताएं उनको नहीं करनी पड़तीं! अगर उनकी मूढ़ताओं को देखो तो पता चल जाएगा कि इनकी पवित्रता किस तरह की है।
एक जैन मुनि मुझे मिलने आए। वे जब मुझे मिलने आए उसके पहले ही एक महिला मुझे मिल कर जा ही रही थी। मैंने उनसे बैठने को कहा। उन्होंने कहा, इस स्थान पर मैं नहीं बैठ सकता। इस स्थान पर स्त्री बैठी थी।
मैंने पूछा, स्त्री जा भी चुकी, क्या स्थान स्त्रैण हो गया?
वे बोले, हमारे शास्त्रों में उल्लेख है कि कम से कम नौ मिनट उस स्थान
पर नहीं बैठना चाहिए जिस पर स्त्री बैठी हो। नहीं तो आदमी का मन डांवाडोल होता है।
इन मूढ़ों को तुम साधु-संत समझ रहे हो? ये उस स्थान पर नहीं बैठ सकते जहां स्त्री बैठी थी, क्योंकि इनका मन डांवाडोल होगा। इनका मन ऐसा समझो कि डांवाडोल होने को तैयार ही है, बहाना भर चाहिए। अब स्थान अगर यूं अपवित्र होने लगे... ।
और स्त्री से ही ये पैदा हुए हैं, उसी की हड्डी-मांस-मज्जा से बने हैं। पिता का दान कुछ बहुत नहीं होता बच्चे के जन्म में। पिता का दान तो नकारात्मक है। एक इंजेक्शन से यह काम हो सकता है। बस इससे ज्यादा पिता का कोई काम नहीं है। जल्दी एक भविष्य विज्ञान के द्वारा आ जाएगा, ज्यादा देर नहीं है। जब तुम पिता की तसवीर की जगह एक इंजेक्शन को रख कर पूजा करोगे, कि ये हमारे पिताजी हैं। पिता का कोई बहुत बड़ा दान नहीं है। दान तो सारा मां का है। निन्यानबे प्रतिशत से ज्यादा जो दिया है वह मां ने दिया है। हड्डी- मांस-मज्जा उसकी है। नौ महीने उसके गर्भ में रहे हो। और अब स्थान पर बैठने में घबड़ा रहे हो! मगर पवित्रता की यह धारणा।
पवित्रता की धारणाएं तो तुम देखो, किस-किस तरह की धारणाओं में लोग जी रहे हैं! विनोबा भावे के पास अगर तुम रुपया ले जाओ, वे जल्दी से आंख बंद कर लेते हैं, क्योंकि रुपया देखने से अपवित्रता हो जाती है।
गजब की पवित्रता है! रुपये में वैसे ही कुछ बचा नहीं है। एक रुपये के नोट में कुछ बचा है? कब का खाली हो चुका, उसमें कुछ है ही नहीं अब, मगर उसका डर बाकी है।
यह कैसी पवित्रता? यह कैसा भय? यह थोपी हुई पवित्रता है। यह निर्दोष चित्त का लक्षण नहीं है। समाधि से जो पवित्रता आती है वह वही होती है जैसे छोटे बच्चे की पवित्रता। अभी-अभी पैदा हुए, सद्यः जन्मे बच्चे की आंखों की पवित्रता। वही पवित्रता समाधि से पैदा होती है।
मगर उसको पहचानना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी धारणाएं पवित्रता की जो हैं वे बाधा डालेंगी। जैनों की धारणाएं हैं, हिंदुओं की धारणाएं हैं, बौद्धों की धारणाएं हैं, उन सबकी अपनी धारणाएं हैं पवित्रता की।
बौद्ध भिक्षु को दिन में एक बार भोजन करना चाहिए; यह पवित्रता का लक्षण है।
अब यह बिल्कुल अवैज्ञानिक है, और शाकाहार के बिल्कुल विपरीत है। सिंह
एक बार भोजन करता है, क्योंकि वह मांसाहारी है। मांसाहारी एक बार भोजन

करे, यह चल सकता है। क्योंकि मांस पचा हुआ भोजन है, दूसरे जानवर ने पहले ही पचाने का काम कर दिया है। तुम पचा-पचाया भोजन ले रहे हो।
लेकिन शाकाहारी व्यक्ति एक बार भोजन ले, यह आत्महिंसा है। तुम जरा शाकाहारी पशुओं को देखो। गाय को देखो, भैंस को देखो। दिन भर घास का चरना चल रहा है। बंदरों को देखो। शाकाहारी व्यक्ति को एक बार भोजन करने का मतलब यह होता है कि उसकी शरीर की जरूरतें पूरी नहीं होंगी। मांसाहारी एक बार करे, चल जाएगा। लेकिन जैन और बौद्ध दोनों शाकाहार पर जोर देते हैं, और फिर भी एक बार भोजन की पवित्रता पर जोर देते हैं।
यह आदमी को अपने को सताने के सिवाय और क्या है? इसमें पवित्रता क्या है?
लेकिन एक और तरह की पवित्रता है जो समाधि से पैदा होती है, हरिराम। उस पवित्रता में किन्हीं सिद्धांतों का अंधानुकरण नहीं होता, बल्कि तुम्हारी अपनी निजता, तुम्हारा खुद का बोध तुम्हें गति देता है। तुम खुद अपने बोध से जीते हो। जितनी तुम्हारी जरूरत होती है, उतना लेते हो--न ज्यादा, न कम। तुम्हारे जीवन में एक समता होती है।
और समाधि से शांति तो आएगी ही। तुम्हारे जीवन में चारों तरफ शांति की आभा होगी। और समाधि से एक नये तरह का त्याग आएगा--असार का त्याग, व्यर्थ का त्याग।
तुम्हारे जीवन में बहुत कुछ व्यर्थ है और असार है, जिसमें तुम नाहक उलझे हुए हो। कई दफे तो ऐसी व्यर्थ की बातों में लोग समय खराब करते हैं जिसका हिसाब नहीं।
एक अदालत में मुकदमा था। दो मित्रों ने छुरेबाजी कर दी थी एक-दूसरे के साथ। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम दोनों मित्र हो, सारा गांव जानता है, यह हुआ क्या?
दोनों सिर झुका कर खड़े हो गए। एक ने दूसरे से कहा, भई, तू ही कह दे। दूसरे ने कहा, तू ही कह दे। दोनों न बोलें।
मजिस्ट्रेट ने कहा, कोई तो कहो। कहना तो पड़ेगा ही। बात क्या है छिपाने की?
तो पहले ने कहा कि अब कहना है तो कहना पड़ेगा, कहने योग्य नहीं है। असल में बात यह है कि हम दोनों नदी पर बैठे गपशप कर रहे थे। रेत में बैठे थे। और इस कमबख्त ने यह कहा कि मैं भैंस खरीद रहा हूं। खरीदी नहीं है अभी, खरीद रहा हूं। मैंने कहा, भई तू खरीद रहा है, ठीक। मगर ख्याल रख कि मैं भी खेत खरीद रहा हूं। मेरे खेत में भैंस नहीं घुसनी चाहिए। मुझसे बुरा कोई नहीं, अगर मेरे खेत में भैंस घुसी। अच्छा तो यह हो कि तू यह भैंस खरीदने का ख्याल छोड़ दे। अपन पुराने दोस्त, यह भैंस के पीछे सब दोस्ती बिगड़ जाए! उसने कहा, यह भी खूब रही! अगर तुम इतने घबड़ाते हो भैंस से तो खेत मत खरीदो। भैंस खरीदी जाएगी! और हम कोई दावा भी नहीं कर सकते कि भैंस तुम्हारे खेत में नहीं घुसेगी। अरे भैंस भैंस है, कभी घुस भी जाए। ऐसे बात बिगड़ गई।
और उस आदमी ने कहा कि मैंने कहा कि देख, इसमें खतरा हो जाएगा, खून-खराबा हो जाएगा। अगर मेरे खेत में तेरी भैंस घुसी तो मुझसे बुरा कोई नहीं। और मैंने वहीं लकीर खींच दी अपनी अंगुली से कि यह रहा मेरा खेत, घुसा अपनी भैंस! और इस हरामजादे ने अपनी अंगुली से एक लकीर खींच दी और कहा, यह मेरी घुस गई भैंस, कर ले क्या करता है! बस फिर छुरा चल गया।
इसलिए अब क्या आपसे कहें--दोनों कहने लगे--न भैंस है, न खेत है, मगर छुरा चल गया है।
समाधिस्थ व्यक्ति से, जो असार है, वह छूट जाता है; और जो सार है, वह उसका जीवन हो जाता है। मेरे लिए त्याग का यही अर्थ है। संसार का त्याग नहीं, परिवार का त्याग नहीं। मगर बहुत कुछ असार है। जैसे मैं नहीं कहता पत्नी को छोड़ो। मगर मैं कहूंगा कि निश्चित, समाधिस्थ व्यक्ति को पत्नी के प्रति पत्नी-भाव छूट जाता है। पत्नी नहीं छोड़ता वह। पत्नी को छोड़ने में क्या रखा है! रामकृष्ण ने पत्नी कभी नहीं छोड़ी, लेकिन पत्नी-भाव नहीं रहा। पत्नी-भाव अमानवीय है। किसी के मालिक होने की बात ही बुरी है, बेहूदी है। अब तुम देखो पति, पति का मतलब होता है मालिक। पत्नी का क्या अर्थ होता है, मुझे मालूम नहीं। इतना ही समझ में आता है--जो तनी-तनी रहे! पति से तनी-

तनी रहे, सो पत्नी! और मुझे पता नहीं। और क्यों न रहे तनी-तनी? जब किसी के गले में जंजीर डालोगे तो वह तनी-तनी रहेगी ही।
पति बनने की आकांक्षा, मालिक होने की आकांक्षा अमानवीय है। वह आकांक्षा समाधिस्थ व्यक्ति की छूट जाती है। समाधिस्थ व्यक्ति धन को छोड़ कर नहीं भागता। कोई जरूरत नहीं है। धन से क्या भय है? धन तो एक सुगम उपाय है विनिमय का। मनुष्य-जाति के जीवन में जो महत्वपूर्ण बातें घटी हैं, धन उनमें से एक है। समाधिस्थ व्यक्ति धन छोड़ कर नहीं जाता। कोई जरूरत नहीं है। लेकिन धन पर उसकी पकड़ नहीं रह जाती, पकड़ छूट जाती है। धन का वह दीवाना नहीं रह जाता। यूं नहीं है कि धन खो जाएगा तो छाती पीट कर रोएगा, कि आत्महत्या कर लेगा। है तो ठीक, नहीं है तो ठीक। उसके भीतर कुछ भेद नहीं पड़ेगा।
तो त्याग जरूर घटता है, लेकिन समाधि से। और तब सम्यक त्याग घटता है।
और समाधिस्थ व्यक्ति के जीवन में तप भी होता है, लेकिन तप की व्याख्या फिर और होती है। तप का मतलब यह नहीं होता कि नाहक अपने को सताना। जीवन में ऐसे ही बहुत दुख हैं, क्या दुखों की कुछ कमी है कि तुम अपने को और सताओ? लेकिन जब जीवन में समाधिस्थ व्यक्ति के कोई दुख आता है तो वह साक्षी होता है--यह उसका तप है।
जैसे महर्षि रमण को कैंसर हो गया। इस कैंसर को साक्षी-भाव से देखते रहे। यह तप है। यह वास्तविक तप है। जब भी उनके शिष्य उनको कहते कि भगवान, आपको बहुत पीड़ा हो रही होगी! तो वे कहते, नहीं, मुझे पीड़ा नहीं हो रही, शरीर को पीड़ा हो रही है, मैं देख रहा हूं।
रामकृष्ण को भी कैंसर हुआ था--गले का कैंसर हुआ था। पानी पीना भी मुश्किल हो गया था। लेकिन वही मुस्कुराहट, वही आनंद, वही शांति। भोजन न ले सकते थे, तो शिष्यों ने कहा कि हमें बहुत दुख होता है कि आप भोजन नहीं ले सकते। आप परमात्मा से इतना भी अगर कह दो कि कम से कम भोजन तो लेने दो, तो ऐसा नहीं है कि आपकी बात खाली जाएगी।
रामकृष्ण ने कहा, मैंने कभी कुछ मांगा नहीं, मांगा ही नहीं; बिन मांगे इतना मिला है! बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। मांगना तो मैंने छोड़ ही दिया। कैसे मांगूं? किस मुंह से मांगूं?
लेकिन शिष्यों ने बहुत आग्रह किया तो उन्होंने कहा, ठीक है, तुम नहीं मानते तो मैं आंख बंद करके... । रामकृष्ण सीधे-सादे आदमी थे। आंख बंद करके उन्होंने मांगा होगा, ऐसा नहीं है। मैं गवाही दे सकता हूं कि नहीं मांगा होगा। क्योंकि रामकृष्ण जैसा व्यक्ति मांग नहीं सकता। मांग का सवाल ही नहीं। समाधिस्थ को क्या मांगना! सब मिल गया--राज्यों का राज्य, साम्राज्यों का साम्राज्य! अब और क्या मांगना? मगर शिष्यों को देख कर कि ये रो रहे हैं, बार-बार प्रार्थना कर रहे हैं, आंख बंद कर ली होगी।
और फिर आंख खोल कर कहा कि मैंने कहा और आवाज आई परमात्मा की... ।
यह सब कल्पना है। कल्पना का मतलब, समझा रहे हैं रामकृष्ण इन रोते हुए लोगों को, जैसे कोई खिलौना पकड़ा दे बच्चे को, रोते बच्चे को खिलौना पकड़ा दे, बस इतना ही। कि मैंने मांगा और परमात्मा ने मुझसे कहा कि अरे रामकृष्ण, अब कब तक तू इसी गले से भोजन करेगा? अब और सारे गलों को भी अपना समझ। और मैंने तुमसे पहले से कहा था कि तुम मेरी फजीहत करवाओगे। मैंने मांगा और यह फजीहत हुई। मुंह की खानी पड़ी। आंखें झुका कर खड़ा रहना पड़ा। बात तो सच है, रामकृष्ण ने कहा, कि अब सभी कंठ मेरे हैं। इतने कंठों से मैं ही भोजन कर रहा हूं। इसी कंठ से क्या बंधे रहना!
त्याग घटेगा, तप घटेगा। तप का अर्थ होगा--जीवन में जब दुख हो तो समता खंडित न हो, संतुलन न टूटे। कोई दुख पैदा करने की जरूरत नहीं; दुख तो अपने आप काफी आ रहे हैं। बीमारियां आएंगी, बुढ़ापा आएगा, मौत आएगी। अब तुम्हें कोई अलग से और सिर के बल खड़े होने की जरूरत है? कि घसिट-घसिट कर तुम्हें काशी की यात्रा करने की जरूरत है? कि नाहक भूखे मरने की जरूरत है? जीवन में बहुत कांटे हैं। समाधिस्थ व्यक्ति उन कांटों को साक्षी-भाव से स्वीकार कर लेता है। और साक्षी-भाव से स्वीकार करते ही कांटे फूलों में रूपांतरित हो जाते हैं।

और समाधिस्थ व्यक्ति के जीवन में प्रीति तो घटने ही वाली है, अपरिहार्यरूपेण। समाधि का लक्षण ही प्रेम है। समाधि के पहले सब प्रेम धोखा है, बकवास है। समाधि के बाद प्रेम की बात नहीं होती, मगर समाधिस्थ व्यक्ति से प्रेम झरता है; जैसे दीये से रोशनी झरती है, फूलों से गंध झरती है, बदलियों से वर्षा की फुहार आती है। प्रेम समाधिस्थ व्यक्ति की छाया है। वह उसके पीछे-पीछे चलता है।
हरिराम, अगर मेरा सूत्र समझना चाहो तो यह हुआः ध्यान से समाधि; और फिर समाधि से सब--सेवा, पवित्रता, शांति, त्याग, तप, प्रीति। शक्ति भर को मैंने छोड़ दिया। जान कर छोड़ दिया। क्योंकि समाधिस्थ व्यक्ति बचता ही नहीं अहंकार की तरह, इसलिए क्या शक्ति! शक्ति तो समग्र की है, व्यक्ति की नहीं। और समाधिस्थ व्यक्ति तो यूं खो जाता है समस्त के सागर में, जैसे बूंद ओस की सरक जाए कमल के पत्र से और गिर जाए झील में और हो जाए एक।
कबीर कहते हैं--
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाय।
हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय।।
बूंद समुद्र में खो गई, अब तो उसे लौटाने का कोई उपाय नहीं। और कबीर खोजने निकले थे, मगर खोजते-खोजते खुद ही खो गए। और तब कबीर ने दूसरा सूत्र भी लिखा है, जो और भी अदभुत है--
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाय।
हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय।।
बूंद समुद्र में खो गई, यह तो ठीक। लेकिन कबीर कहते हैंः जब बूंद समुद्र में खो गई तब मैंने जाना कि बूंद समुद्र में खो गई, इतनी ही बात नहीं, इसका एक और भी पहलू है--समुद्र भी बूंद में खो गया। और बूंद खो गई थी समुद्र में तो खोजना कठिन था, वापस निकालना कठिन था। और अब तो बात और मुश्किल हो गई, क्योंकि समुद्र भी बूंद में खो गया। अब तो कहां खोजने जाऊं! हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय।
शक्ति की आकांक्षा अहंकार की आकांक्षा है, इसलिए उस बात को भर मैंने छोड़ दिया, बाकी तुम्हारी सारी बातों को ले लिया है।
हरिराम, मैं जो कह रहा हूं, वह तर्क नहीं है। मैं जो कह रहा हूं, अनुभव है।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
चौथा प्रवचन

मौलिक क्रांति: ध्यान

पहला प्रश्नः ओशो, किसी सूफी शायर ने कहा है--मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे, कि दाना खाक में मिल कर गुलो-गुलजार होता है। ओशो, क्या मेरी हस्ती को मिटाने की अनुकंपा करेंगे, ताकि मेरा अंतर्बीज प्रस्फुटित होकर पुष्पित एवं फलित हो सके।

प्रेममूर्ति, यह प्रश्न निश्चय ही बहुत विचारणीय है। इस प्रश्न में बहुत कुछ छिपा है जो दिखाई नहीं देता। इस प्रश्न की जो मौलिक धारणा है, सदियों से धर्म उससे आच्छादित रहा है। और उस मौलिक धारणा के कारण ही पृथ्वी पर धर्म घटित नहीं हो पाया। यह वक्तव्य किसी ने भी दिया हो, उसे जीवन की आधारभूत आधारशिलाओं का कोई बोध नहीं है। यह वक्तव्य विरोधाभासी है। और ऐसे वक्तव्यों से नरक का रास्ता पटा हुआ पड़ा है। लेकिन चूंकि हम इस तरह के विचार अनंत काल से सुनते रहे हैं, हम उन्हें सुन-सुन कर बहरे हो गए हैं। हमने उन पर सोचना ही छोड़ दिया है। हम सम्मोहित हो गए हैं। एक तरह की तंद्रा ने मनुष्य-जाति को पकड़ लिया है।
एडोल्फ हिटलर अपनी आत्म-कथा में कहता है कि झूठ और सत्य में मैंने इतना ही फर्क देखा कि झूठ बार-बार दोहराया गया है तो सत्य बन गया है; और सत्य जब पहली दफे कहा जाता है तो झूठ मालूम पड़ता है।
एडोल्फ हिटलर की बात सौ प्रतिशत सही न हो, मगर निन्यानबे प्रतिशत तो सही है। पुनरुक्ति, झूठी से झूठी बात को भी सत्य का आभास दे देती है।
जैसे यही सूत्रः "मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे।"
अब थोड़ा सोचो इस पर। अगर मर्तबा चाहते हो, तो अपनी हस्ती को मिटा दो। मगर मर्तबा किसलिए चाहते हो? मर्तबा किसके लिए चाहते हो? मर्तबा क्या है? अहंकार का नया नाम! अस्मिता की नयी घोषणा! एक तरफ कहा जा रहा है कि मिटा दो अपनी हस्ती को, और दूसरी तरफ प्रलोभन दिया जा रहा है--तत्क्षण--अगर मर्तबा चाहे। कोई अपनी हस्ती को मिटाने के लिए राजी भी होगा तो सिर्फ इसलिए कि मर्तबा चाहता है।
ऐसे कहीं हस्ती मिटेगी? यह हस्ती मिटाने का ढंग हुआ? यह तो हस्ती बचाने का ढंग हुआ। यह तो हस्ती को और मर्तबा देने की प्रक्रिया हुई। यह तो हस्ती को सिंहासन देना है, सूली नहीं। यह तो हस्ती को नयाशृंगार, नये आभूषण... यह तो हस्ती को दुल्हन बना दिया। मगर दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि बहुत बार दोहराई गई हैं ये बातें।
जीसस के बहुत से वचन ऐसे हैं। जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं, क्योंकि प्रभु के राज्य में वे ही महान संपदा के अधिकारी होंगे। तो हो जाओ दरिद्र, ताकि प्रभु के राज्य में महान संपदा के अधिकारी हो सको! जीसस कहते हैंः धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि वे ही प्रभु के राज्य में सम्मानित होंगे। अगर सम्मान चाहते हो--और कोई साधारण सम्मान नहीं, परमात्मा से सम्मान चाहते हो, प्रभु के राज्य में सम्मान चाहते हो--तो हो जाओ विनम्र। जीसस कहते हैंः जो इस जगत में अंतिम है, वही मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होगा। तो हो जाओ अंतिम, अगर प्रथम होने की आकांक्षा है। इस विरोधाभास को ठीक से समझो। इस विरोधाभास ने ही सदियों से आदमी को
एक द्वंद्व में उलझाया हुआ है--एक ऐसे द्वंद्व में जिसमें आदमी खंडित हो गया, टुकड़े-टुकड़े हो गया। यह बात विरोधाभासी है, इसलिए अनिवार्य रूप से तुम्हें विभाजित कर देगी। एक तरफ तुम विनम्र बनने में लग जाओगे और दूसरी तरफ आकांक्षा को पोसोगे, पालोगे कि बस अब देर नहीं, या कि देर भी है तो अंधेर नहीं। थोड़े ही दिन की बात और। जरा थोड़ी प्रतीक्षा और। यूं भी जिंदगी कुछ बहुत लंबी नहीं। फिर अनंत काल तक प्रभु के राज्य में मर्तबा मिलेगा, सम्मान मिलेगा, सत्कार मिलेगा। तो झेल लो थोड़ी दरिद्रता, कर लो थोड़ा त्याग, ओढ़ लो विनम्रता की चादर।

मगर इस विनम्रता की चादर के पीछे कौन खेल खेल रहा है? वही अहंकार। इसलिए आमतौर से साधारण आदमी इतना अहंकारी नहीं होता जितने तुम्हारे तथाकथित ऋषि-मुनि, साधु-संत, महात्मा अहंकारी होते हैं। साधारण आदमी का अहंकार भी बेचारे का साधारण होता है। एक मकान बना लिया, कि थोड़ा दुकान में लाभ कर लिया, कि थोड़े अच्छे वस्त्र खरीद लिए। इन पर कोई बहुत बड़ा अहंकार टिक भी नहीं सकता; ये आधारशिलाएं छोटी हैं। और फिर कोई मकान तुम्हारे ही पास थोड़े ही है, करोड़ों लोगों के पास मकान हैं। और कितने ही कीमती वस्त्र तुम पहन लो, करोड़ों लोग वही वस्त्र पहन रहे हैं। यह अहंकार बहुत बड़ा नहीं हो सकता।
लेकिन साधु-संतों का अहंकार पारलौकिक है; इस जगत की बात नहीं, बड़ी तपश्चर्या से मिलता है, बड़ी कठोर साधना से मिलता है, बहुत अप्राकृतिक होने से और विकृत होने से मिलता है। इसलिए स्वभावतः ज्यादा बड़ा होता है, और ज्यादा भयंकर होता है।
तुम्हारा अहंकार सर्दी-जुकाम जैसा है, उनका अहंकार कैंसर समझो। मगर सर्दी-जुकाम दिखाई पड़ता है, और कैंसर छिपा होता है भीतर गहरे में। सिर्फ कोई चिकित्सक ही खोज सकता है। सर्दी-जुकाम को खोजने के लिए किसी बहुत बड़े निदान की जरूरत नहीं है; तुम खुद ही जान जाते हो। और सर्दी-जुकाम का कोई बहुत इलाज भी नहीं। कहते हैं कि अगर दवा लो तो सात दिन में ठीक हो जाता है, और अगर दवा न लो तो एक सप्ताह में ठीक हो जाता है। बीमारी ही इतनी छोटी है कि दवा और न दवा से क्या फर्क पड़ता है!
बीमारी जितनी गहरी हो, जितनी छुपी हो, जितनी अप्रकट हो, उतनी ही मुश्किल हो जाती है। और जब अहंकार विनम्रता के वस्त्र पहन लेता है, तब तो बड़ी अड़चन हो जाती है। जब क्रोध दया का आवरण ओढ़ लेता है, फिर तो कैसे खोजोगे! फिर तो बहुत पैनी आंख चाहिए। साधारणजन तो धोखे में आ ही जाएंगे। और साधारणजन सदियों से धोखे में रहे हैं। तुमने जिनको पूजा है, उनको पहचाना भी नहीं। तुमने उनको नहीं पूजा, उनके ढोंग को पूजा है, उनके पाखंड को पूजा है। उन्होंने अपने चारों तरफ जो ओट खड़ी कर रखी थी, उस ओट को पूजा है। उस ओट के पीछे छिपे हुए आदमी से तो तुम्हारी पहचान भी नहीं हुई।
काश, तुम अपने साधु-संतों के अंतरतम में झांक सको तो तुम बहुत हैरान
हो जाओगे। तुम्हारे अपराधी भी उनसे कहीं ज्यादा निर्दोष पाए जाएंगे। तुम्हारे पापी भी उनसे कहीं ज्यादा सरल-चित्त और ज्यादा सहज पाए जाएंगे। साधु-संत बहुत तिरछे हो जाते हैं। सबसे बड़ा तिरछापन तो यह हो जाता है कि वे जो होते हैं, उससे उलटा उनका आचरण होता है। और आचरण दिखाई पड़ता है, आत्मा तो दिखाई पड़ती नहीं। आत्मा तो छिपी होती है।
और इसीलिए मेरी बातें इतनी कठिन मालूम पड़ती हैं; क्योंकि मैं परदों
के धोखे में नहीं आता। मैं परदे उघाड़ने में भरोसा करता हूं। मैं घूंघट उठा देना चाहता हूं। घूंघटों के पीछे बड़े कुरूप चेहरे छिपे हुए हैं। मगर तुमने देखा, अगर कोई स्त्री घूंघट मार कर रास्ते से निकल जाए तो जो भी रास्ते पर उस घूंघट वाली स्त्री को मिलता है, उसी का मन होता है कि घूंघट के पीछे न मालूम कितना सौंदर्य छिपा हो! मेरे हिसाब में घूंघट कुरूप स्त्रियों ने खोजा होगा। सुंदर स्त्री को घूंघट की क्या जरूरत? लेकिन कितनी ही सुंदर स्त्री हो बिना घूंघट के, देख ली तुमने, बात खत्म हो गई। घूंघट रहस्य पैदा कर देता है।
और तुम्हारे साधु-संतों के घूंघट बड़े लंबे हैं। लाख मीरा कहे, घूंघट
के पट खोल! वे नहीं खोलते। वे तो घूंघट को और बड़ा करते चले जाते हैं।
तुम पूछते हो प्रेममूर्ति--
"मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे,
कि दाना खाक में मिल कर गुलो-गुलजार होता है।"
वह जो मर्तबा पाने की चाह है, वही तो मिटने न देगी; वही तो बाधा है। वह
जो गुलो-गुलजार हो जाने की आकांक्षा है, वह मिटने कैसे देगी? मिटना संभव तभी है जब उसके पीछे कोई हेतु न हो। जब तक हेतु है तब तक अड़चन है।
मैं जिस स्कूल में विद्यार्थी था उसके प्रिंसिपल के आफिस में एक सुभाषित बड़ी तख्ती पर लगा हुआ था। पहली ही बार जब मैं प्रिंसिपल के आफिस

में प्रविष्ट हुआ तो मैंने उनसे प्रार्थना की, इस तख्ती को यहां से हटा दें।
वे चौंके। उन्होंने कहा कि इस तख्ती को जो भी देखा है, वही पसंद किया है। तुम्हें इसमें क्या एतराज है?
मैंने कहा, यह तख्ती पाखंड का आधार है।
उन्होंने कहा, क्या कहते हो! इतना प्यारा सुभाषित!
विवेकानंद का वचन था। वचन थाः आदर चाहते हो यदि तो विनम्रता सीखो।
मैंने उनसे पूछा, जो आदर चाहता है, जिसकी चाह आदर की है, वह कैसे विनम्रता सीख सकता है? और सीख भी लेगा तो ऊपर ही ऊपर होगी। चाह तो भीतर होगी। चाह तो यही होगी कि अब मिले आदर, अब मिले आदर। बड़ी देर हुई जा रही है। अब तक आदर क्यों नहीं मिला?
मैंने कहा, इस तख्ती को अलग कर दें।
इस तरह की तख्तियां ही आधारशिलाएं बन गई हैं। हमारे जीवन की पूरी की पूरी सड़ांध इसी तरह के विरोधाभासी वक्तव्यों से भरी हुई है।
मिटना है प्रेममूर्ति; इसलिए नहीं कि मिटोगे तो मर्तबा मिलेगा। मिटना
है इसलिए कि तुमने जो अपने को अभी समझ रखा है, वह तुम हो ही नहीं। मिटना है इसलिए ताकि तुम जो नहीं हो वह समाप्त हो जाए, और तुम जो हो वह प्रकट हो जाए। मर्तबा की बात ही नहीं है। आदर और सम्मान का सवाल ही नहीं है। स्वर्ग के राज्य का अधिकार--ये सब प्रलोभन हैं। अहंकार तुम्हारी भ्रांति है।
क्या तुम सोचते हो कि सांझ के अंधेरे में जब धुंधलका उतरता होता है, राह पर चलते हुए अगर तुमको रस्सी ऐसी भास जाए कि सांप है, और मैं तुमसे कहूं कि सांप नहीं है, रस्सी है; यह लो दीया और जाकर देख लो; तो क्या तुम सोचते हो जब तुम देख लोगे कि रस्सी है सांप नहीं, तो तुम्हें बड़ा मर्तबा मिलेगा? बड़ा सम्मान मिलेगा? स्वर्ग के राज्य में विशेष स्थान मिलेगा? जब तुम मर कर स्वर्ग पहुंचोगे, क्या तुम सोचते हो बिस्मिल्ला खान शहनाई बजाएंगे? कि आओ, पधारो! पलक-पांवड़े बिछाएंगे? देवी-देवता नाचेंगे? रस्सी रस्सी है, ऐसा दिखाई पड़ जाने में क्या मर्तबा? सिर्फ मूढ़ता मिट गई, बस। सिर्फ एक भ्रांति थी, टूट गई, बस।
जिस दिन जीसस पकड़े गए, जिस रात, उनके तथाकथित शिष्यों ने उनसे जो आखिरी बात पूछी वह बड़ी सोचने जैसी है। अभद्र, और इस बात की सूचक कि जीसस के पास बुद्धुओं का जमाव था। और बुद्धू किस कारण इकट्ठे थे वह भी साफ होता है उस बात से। वे जीसस की इन्हीं बातों को सुन कर इकट्ठे हो गए थे, कि धन्य हैं गरीब, धन्य हैं दीन, क्योंकि वे ही समृद्धिशाली होंगे। जो अंतिम हैं वही प्रथम होंगे।
जो यहां प्रथम नहीं हो सकते, उन्होंने सोचा होगा यह मौका चूकने जैसा नहीं है। यहां तो प्रथम होना बड़ा कठिन है, बड़ा संघर्ष है, बड़ी प्रतियोगिता है--गलाघोंट प्रतियोगिता है। प्रथम होना कुछ आसान नहीं। इधर तो प्रथम होने का मतलब है कि कुछ मर्तबा हो भी थोड़ा-बहुत तो वह भी गया। यहां तो सौ-सौ जूते खाओ तब तमाशा घुस कर देख सकोगे। यूं नहीं देख सकते। यहां तो बड़ी कुश्तमकुश्ती होगी। हर कोई दचकेगा-पटकेगा।
राजनेताओं की गति देखते हो! कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है, कोई टोपी ले भागा, कोई जाकिट उतार रहा है।
इसीलिए तो राजनेता चूड़ीदार पाजामा पहनते हैं, कि सब छिन जाए मगर उनका पाजामा नहीं निकाल सकते। चूड़ीदार पाजामा निकालने के लिए पहलवान चाहिए दो। और कम से कम वक्त लगेगा, तब तक वे शोरगुल मचा देंगे। चूड़ीदार पाजामा कुछ यूं ही नहीं चुना, बड़ी होशियारी से चुना। मगर न सही चूड़ीदार पाजामा उतरे, लोग नाड़ा ही ले भागते हैं।
जो कुर्सी पर बैठे हैं उनसे पूछो, किस तरह उनको जकड़ कर बैठना पड़ता है कुर्सी को! पकड़ कर बैठना पड़ता है कुर्सी को! कुर्सी बैठने का स्थान थोड़े ही है, पकड़ने का स्थान है। बैठने वगैरह की फुर्सत कहां है! जरा आराम किया कि गए। बैठे ही हैं लोग चारों तरफ इसी प्रतीक्षा में कि जरा झपकी लो कि वे तुम्हें धक्का दे दें। जो बैठ गया है, वह भी तो इसी तरह बैठा है--किसी और को धक्का देकर बैठा है, किसी और को चारों खाने चित्त कर दिया है, तब बैठा है। यह तो मल्लयुद्ध है यहां।

तो स्वभावतः जिन्होंने देखा कि यहां तो कोई उपाय नहीं।... जीसस के अनुयायी कौन थे? कोई मछुआ, कोई बढ़ई--गैर पढ़े-लिखे लोग, साधारण लोग। उन्होंने सोचा यह मौका चूकने जैसा नहीं है। यहां तो हम अंतिम हैं ही, अब और क्या अंतिम होना है! क्यों मौका चूकें, वहां प्रथम हो लेंगे। उस आखिरी रात यह बात जाहिर हो गई।
जरा सोचो! सदगुरु विदा हो रहा हो और शिष्य ऐसी बेहूदी बातें पूछें! जीसस ने कहा कि कुछ पूछना है? ठीक वैसे ही कहा जैसे बुद्ध ने कहा था अपने शिष्यों से, अंतिम विदा के क्षण में, कि बस आज यह आखिरी सूरज का उगना है। इसके बाद अब मैं कभी इस सूरज को उगते नहीं देखूंगा। तो कुछ पूछना हो तो पूछ लो।
लेकिन बुद्ध के पास अदभुत लोग थे। बुद्ध मनुष्य-जाति के इतिहास में इसीलिए महत्वपूर्ण हैं कि उनके पास शिष्यों का एक अपूर्व जमाव था। एक भी प्रश्न नहीं उठा, एक सन्नाटा छा गया। लोगों ने कहा कि हमें जो पूछना था, उसके भी आपने उत्तर दे दिए हैं; और जो कभी हमने सोचा भी नहीं था कि पूछना है, उसके भी उत्तर दे दिए हैं। हमारे कोई प्रश्न नहीं हैं। हम निष्प्रश्न हो गए हैं। हमारा सब मन और मन की उलझनें, जमाना हुआ समाप्त हो गई हैं। कोई समस्या नहीं है। आप चिंता न करें। आप निश्चिंत विदा हों। हम तृप्त हैं। यह एक दृश्य।
और जीसस पकड़े जाने वाले हैं, खबर आ गई है कि दुश्मन आ रहा है। आवाजें आ रही हैं पास के ही रास्ते से। लोग मशालें लिए हुए आधी रात में जीसस को पकड़ने आ रहे हैं। तो जीसस पूछते हैं, कुछ पूछना है, क्योंकि शायद दुबारा अब मेरा-तुम्हारा मिलना न हो सके!
तो तुम कल्पना कर सकते हो क्या पूछा शिष्यों ने?
शिष्यों ने पूछा, एक ही बात पूछनी है कि प्रभु के राज्य में निश्चय ही
आप तो परमात्मा के दाएं हाथ होंगे, आप तो उनके दाएं हाथ के पास खड़े होंगे। परमात्मा के राज्य में परमात्मा प्रथम, आप नंबर दो होंगे। मगर नंबर तीन हममें से कौन होगा? नंबर चार कौन होगा? बारह शिष्य थे। तो हमारी क्या स्थिति होगी, यह बताते जाएं; फिर मिलना हो, न हो!
यह सोचते हो! ये प्रश्न कैसे उठे? और मैं यह नहीं कहूंगा कि इसके लिए सिर्फ शिष्य जिम्मेवार थे। जीसस भी जिम्मेवार हैं। क्योंकि यही जिंदगी भर वे सिखा रहे थे लोगों को कि अगर तुम यहां अंतिम हो तो वहां प्रथम होओगे; अगर यहां दरिद्र हो तो वहां संपत्ति के मालिक होओगे; अगर यहां विनम्र हो तो वहां मर्तबा मिलेगा। इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि सिर्फ शिष्य जिम्मेवार हैं। जीसस कहीं ज्यादा जिम्मेवार हैं।
यह बात ही व्यर्थ है। यह वही लोभ, वही वासना--नये आयाम में, लेकिन कुछ भेद नहीं। वासना वासना है, चाहे धन यहां चाहो और चाहे धन परलोक में चाहो। लोभ लोभ है, चाहे यहां इकट्ठा करना चाहो और चाहे परलोक में पुण्य इकट्ठा करना चाहो।
मैं दिल्ली में था। जुगल किशोर बिड़ला मिलना चाहते थे। मेरी कुछ बहुत उत्सुकता नहीं थी, लेकिन जिनके घर मेहमान था, सेठ गोविंददास, उनके बहुत संबंध थे जुगल किशोर बिड़ला से। दोनों गांधीवादी, दोनों गांधी के पुराने अनुयायी। उन्होंने बहुत आग्रह किया कि इनकार करना ठीक नहीं। वृद्ध हैं वे और मिलने को खुद उत्सुक हैं, तो मिल लेने में क्या हर्ज है! मैंने कहा, ठीक। जुगल किशोर बिड़ला ने मुझसे जो पूछा वह यह कि मैंने इतने मंदिर बनवाए, इतनी धर्मशालाएं बनवाईं, इतना दान-पुण्य किया--इस सबका मुझे क्या फल मिलेगा परलोक में?
मैंने उनसे कहा, यहां भी लोभ, वहां भी लोभ! यहां भी मारवाड़ी रहे, वहां
भी मारवाड़ी! मर कर भी सिलसिला तुम अपना ही जारी रखोगे? इसलिए मंदिर बनवाए हैं? तो फिर वे मंदिर न रहे। इसलिए धर्मशालाएं बनवाई हैं? तो वे धर्मशालाएं न रहीं। यह तो एक तरह की रिश्वत हुई। यह तो एक तरह का सौदा हुआ। यह तो सीधे धंधे की बात हुई। अब भीतर इरादा होगा कि मूल तो वसूल करना ही है, चक्रवृद्धि ब्याज भी लेना है। मैंने उनसे कहा, कुछ इसका फल नहीं होगा। पहली तो बात यह कि मैं सोचता ही नहीं कि आप स्वर्ग जा सकते हैं। अगर गए भी तो मंदिरों, धर्मशालाओं और इत्यादि जो तुम सोचते हो कि पुण्य-कार्य किए

हैं, उनके कारण न जाओगे। अगर जाओगे, तो एम्बेसेडर कार जो बनाई, उसके कारण जाओगे।
वे कहने लगे, मतलब? एम्बेसेडर कार का इससे क्या संबंध?
मैंने कहा, इसका संबंध है। एम्बेसेडर कार में जो भी लोग बैठते हैं, राम-राम करके यात्रा करनी पड़ती है। दचके पर दचके आते हैं। तो जितने लोगों को तुमने राम-राम करवा दिया है--रामनाम सत्य! रामनाम जान्यो नहीं, तुमने जनवा दिया। तुमने जो यह अदभुत चीज बनाई है एम्बेसेडर कार, जिसमें हर चीज आवाज करती है सिर्फ हार्न को छोड़ कर! इस चमत्कार के कारण तुम अगर चले जाओ स्वर्ग तो बात अलग, अन्यथा और तो मैं कोई कारण नहीं देखता हूं।
मैंने उनसे कहा, सच बात तो यह है कि न कोई स्वर्ग है, न कोई नर्क है। ये पंडित-पुरोहितों की ईजादें हैं। ये तुम्हारे भीतर वासना की अग्नि में ईंधन डालना है। पंडित-पुरोहित भलीभांति जानते हैं कि तुम्हारे भीतर सबसे महत्वपूर्ण बातें दो हैं--लोभ और भय। अगर मनुष्य का शोषण करना है तो बस इन दो ही के आधार पर हो सकता है। भयभीत करो--नर्क का भय दिखाओ; और प्रलोभित करो--स्वर्ग का प्रलोभन दिखाओ।
लेकिन, सुन ली उन्होंने बात, रुची नहीं। कैसे रुचे! कहने लगे, तो सब मंदिर जो बनाए व्यर्थ गए?
मैंने कहा, बिल्कुल व्यर्थ गए।
कहने लगे, आप अजीब आदमी हैं। अब तक मैंने न मालूम कितने साधु-संतों से
यह बात पूछी, सबने कहा कि नहीं, आपने महान कार्य किया है! मैंने कहा, वे साधु-संत नहीं हैं। वे उसी लंबे धोखे और शड्यंत्र के भागीदार हैं और हिस्सेदार हैं, जो दोहरे काम करते रहे हैं; जिसने अमीरों को चूसा दान के नाम पर और गरीबों को सांत्वना दी कि मत घबड़ाओ, तुम्हारी गरीबी बड़े फल लाएगी, तुम दरिद्रनारायण हो!
अब यह बड़े मजे की बात है। महात्मा गांधी के बड़े से बड़े शिष्य थे जमनालाल बजाज। महात्मा गांधी को साबरमती से सेवाग्राम वर्धा ले आने वाले वही थे। उन्होंने ही गांधी का आश्रम निर्मित किया, धन लगाया। गांधी उन्हें अपना पुत्रवत मानते थे। और जब उन्होंने मंदिर बनाया--मंदिर तो बनाना ही पड़ता है, नहीं तो स्वर्ग जाओगे कैसे--तो मंदिर का नाम रखाः लक्ष्मीनारायण मंदिर!
मैं उनके घर मेहमान था। जमनालाल बजाज तो चल चुके थे, लेकिन उनकी पत्नी, जानकी देवी बजाज जिंदा थीं। मैंने उनसे पूछा कि गांधी के बड़े भक्त थे, इतने भक्त कि गांधी उनको अपना बेटा कहते थे। और गांधी जिंदगी भर यह बकवास लगाए रखे दरिद्रनारायण की; कम से कम मंदिर का नाम दरिद्रनारायण मंदिर रखना था। लक्ष्मीनारायण मंदिर! यह शोभा देता है? यह उचित है? और न गांधी ने एतराज उठाया और न विनोबा ने एतराज उठाया। ये सब लक्ष्मीनारायण के मंदिर के समर्थन में रहे आए!
ये पंडित-पुरोहित और साधु-संतों की तथाकथित जमात बड़ी होशियार है। धनपति को कहती है कि लक्ष्मीनारायण, गरीब को कहती है दरिद्रनारायण। धनपति को कहती है कि तुम्हें धन मिला है तुम्हारे पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण। और गरीब को कहते हैं कि घबड़ाओ मत, गरीबी को शांति से, संतोष से झेल लो; आगे बड़ा मर्तबा मिलेगा।
इसीलिए तो इस देश में पांच हजार वर्षों में कोई क्रांति नहीं हो सकी। क्रांति हो कैसे? गरीब को सांत्वना दी जा रही है कि स्वर्ग में तू प्रथम होगा, मत घबड़ा। वह स्वर्ग की आशा में बैठा हुआ है। वह कल की आशा में बैठा हुआ है। कल, जो कि कभी आता नहीं। कल, जो कि सरासर झूठ है।
प्रेममूर्ति, पहली तो बात यह है--मर्तबा चाहो ही मत। मर्तबे का क्या करोगे? मर्तबे का मतलब क्या होता है? और लोग तुम्हें सम्मान दें! और लोगों से सम्मान हम चाहते क्यों हैं? इसीलिए चाहते हैं कि हम स्वयं में अपने भीतर एक हीनता की ग्रंथि अनुभव करते हैं।
यह हमारा मनोविज्ञान है जिसको ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए। जो व्यक्ति अपने भीतर हीनता की ग्रंथि अनुभव करता है, उस हीनता के बोध के कारण ही वह दूसरों से सम्मान चाहता है, ताकि किसी तरह भीतर का गड्ढा भर जाए। मगर भरता नहीं यह गड्ढा, क्योंकि बाहर का सम्मान भीतर के गड्ढे को भरेगा कैसे? कोई

उपाय नहीं इस तरह भरने का। बाहर की संपत्ति भीतर की दरिद्रता को नहीं मिटा सकती है। न बाहर का यश, न बाहर की प्रतिष्ठा भीतर किसी तरह के अंतर ला सकती है। भीतर और बाहर के जगत विपरीत आयामों में फैले हुए हैं।
इसलिए जो लोग बाहर धन की दौड़ में लगे हैं, उनका कारण भी एक है--भीतर निर्धनता अनुभव करते हैं। अब कैसे इस निर्धनता को झुठलाएं? बाहर धन का ढेर इकट्ठा कर दें, दुनिया के सामने प्रमाणित कर दें कि मैं गरीब नहीं हूं। यह हो सकता है, दुनिया के सामने प्रमाणित हो जाए कि तुम गरीब नहीं हो। मगर क्या तुम स्वयं अपने भीतर अमीर हो जाओगे? धन तो बाहर है, बाहर ही रहेगा। भीतर तुम जितने खाली थे, शायद उससे भी ज्यादा खाली मालूम पड़ोगे, क्योंकि बाहर के धन की पृष्ठभूमि में, तुलना में... ।
और जीवन में तुलना बड़ी महत्वपूर्ण है, चीजें छोटी या बड़ी तुलना में दिखाई पड़ती हैं।
प्रसिद्ध कहानी है कि अकबर ने एक दिन दरबार में आकर एक लकीर खींच दी
और अपने दरबारियों से कहा कि इसे बिना छुए छोटा कर दो। कोई न कर सका। बिना छुए! सीधा गणित यही था कि छुएं तो छोटी कर दें, मिटा दें लकीर का एक हिस्सा; आधी लकीर मिटा दें तो आधी छोटी हो गई। मगर छूना मत लकीर को और छोटी कर देना। बीरबल उठा अंत में और उसने एक बड़ी लकीर उस लकीर के नीचे खींच दी। उस लकीर को छुआ नहीं और लकीर छोटी हो गई।
अलबर्ट आइंस्टीन ने सापेक्षवाद का जो सिद्धांत खोजा, बीरबल ने उसका
ही प्रयोग लकीर के पास एक बड़ी लकीर खींच कर कर दिया।
तुम्हारे बाहर जब धन का ढेर लग जाएगा, धन का गौरीशंकर तुम अपने चारों तरफ खड़ा कर लोगे, पहाड़, तब तुम्हें अपनी दरिद्रता और खलेगी। तुम्हें भीतर का खालीपन और भारी लगेगा। बाहर की पहाड़ियां तुम्हारे भीतर की खाई को और गहरा करके दिखलाएंगी।
बाहर प्रतिष्ठा मिल सकती है, सम्मान मिल सकता है, सस्ता है मामला, जरा
सी शर्तें पूरी करनी हैं; लोगों की अपेक्षाएं पूरी कर दो, और कोई बहुत मंहगा मामला नहीं है। न मालूम कितने मूढ़ कर लेते हैं। सच तो यह है कि बुद्धिमानी की कोई जरूरत ही नहीं। अगर लोग कहते हैं उपवास करो, तो उपवास कर लो। अगर लोग कहते हैं कि सिर के बल खड़े हो जाओ तो सिर के बल खड़े हो जाओ। और सम्मान मिलना शुरू हो जाएगा।
मैं एक गांव से गुजरा। गांव के लोगों ने कहा कि बड़े संयोग की बात है कि खड़े श्री बाबा भी आज गांव में हैं।
मैंने कहा, उनकी खूबी क्या है?
उन्होंने कहा, खूबी! वे आज वर्षों से खड़े हुए हैं।
मैंने कहा, और भी कोई खूबी है?
आप भी क्या बातें करते हैं, वे कहने लगे, यही क्या कोई कम खूबी है कि वे सिर्फ खड़े ही रहते हैं, बैठते ही नहीं!
रात में भी वे बैसाखियों पर खड़े रहते थे, छप्पर से रस्सी बांध कर उसको पकड़े रखते थे। और दो आदमी उनको सम्हाले रखते थे कि कहीं गिर न जाएं।
जब मैं उस रास्ते से गुजरा जहां वे खड़े हुए थे, तो मैंने देखा कि अब वे बैठना भी चाहें तो बैठ नहीं सकते; क्योंकि पैर उनके सूज गए हैं, हाथी-पांव हो गए हैं। सारा शरीर तो ऊपर सूख गया है, सूख ही जाएगा। सारा खून पैरों में ही आ गया है। उनकी दयनीय दशा मैंने देखी। आंखें निस्तेज हो गई हैं, चेहरा मुर्दा है, सिर्फ पैर जिंदा रह गए हैं। और सम्मान चल रहा है! भीड़ लगी है चरण छूने वालों की, फूल चढ़ाने वालों की! रुपये चढ़ाए जा रहे हैं, गहने चढ़ाए जा रहे हैं।
खड़े रहने के लिए कोई बुद्धिमत्ता की जरूरत है? सिर के बल खड़े होने के लिए कोई बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है? योगासन साधने के लिए कोई बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है? जितनी कम बुद्धि हो उतनी आसानी से हो जाएंगे ये काम। बुद्धिमान आदमी थोड़ा विचारेगा भी। बुद्धू इन कामों को जल्दी कर लेगा।
मर्तबा मिल सकता है, आदर मिल सकता है, अहंकार को खूब पोषण मिल सकता है,
बस समाज की मूढ़ अपेक्षाओं को पूरा कर दो। जिस समाज के भीतर जीते हो, उस

समाज की जो आकांक्षा है, उसको पूरी कर दो। मगर इससे तुम्हारे भीतर की हीनता नहीं मिटेगी। वह तो बनी ही रहेगी।
भीतर की हीनता मिटती है सिर्फ भीतर प्रवेश करने से। वह जो भीतर का खालीपन है, उसको भरना नहीं है, क्योंकि वही तुम्हारे जीवन का स्वभाव है। वह जो तुम्हारे भीतर शून्य है, उसको पहचानो। उसी शून्य में सब राज छिपा है। वही शून्य ध्यान है। उसी शून्य का साक्षात्कार समाधि है।
तुम्हें मिटना नहीं है; तुमने जो अपने को समझ रखा है, वह तुम नहीं हो, इतना जानना है। बस इसी जानने में मिटना हो गया। और तब यह सवाल उठता ही नहीं कि मर्तबा मिलेगा।
सत्य का अनुभव पर्याप्त है। सत्य का अनुभव परम संतुष्टि ले आता है। लेकिन पहले से ही ये इरादे रख कर मत चलो--
"मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे।"
अगर तू मर्तबा चाहे! बस भूल हो गई। फिर तुम मिटाओगे भी हस्ती को तो भी भीतर तो मर्तबा चाहोगे, इसीलिए मिटा रहे हो। कैसे मिटा पाओगे? सब झूठ हो जाएगा।
मैं तुमसे कहता हूं कि पहचान लो अपनी हस्ती को, तो जो नहीं है वह मिट जाएगी और जो है वह प्रकट हो जाएगी। और जो है वह प्रकट हो जाए, तो ही असली बहार आती है, वसंत आता है।
"कि दाना खाक में मिल कर गुलो-गुलजार होता है।"
निश्चित ही बीज जब मिट्टी में मिल जाता है तो ही अंकुरित होता है, तो
ही उसमें फूल खिलते हैं, पल्लवित होता है, फल लगते हैं। मगर एक बात ख्याल रखना कि तुम्हारा जीवन बीज और वृक्ष के जीवन से बहुत भिन्न है। तुम्हारे भीतर बीज को नहीं मिटना है। अहंकार तुम्हारा बीज नहीं है, सिर्फ भ्रांति है, आभास है, रस्सी में देखा गया सांप है।
मेरे गांव में एक कबीरपंथी महंत थे--साहबदास। साधु-संत शंकराचार्य के बाद इस प्रतीक का बहुत उपयोग करते रहे हैं--रस्सी में सांप। यह संसार सब माया है। साहबदास जी यह निरंतर समझाते थे कि यह संसार माया है। यह तो रस्सी में जैसे सांप।
बहुत मैंने सुना उनको। मैं उनका खास सुनने वाला था। क्योंकि वे ऐसी- ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें कहते थे। और मैं उनसे ऐसे प्रश्न पूछता था कि वे हर प्रश्न का जवाब देने को तैयार रहते थे। और हर चीज को सिद्ध करते थे कि उसका उदगम वेद में है। ऐसी-ऐसी चीजों का उदगम वेद में है कि जिनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। जैसे मैंने उनसे पूछा कि रेलगाड़ी, इसका उदगम वेद में कहां है? कई दिन खोजबीन करने के बाद उन्होंने कहा, इसका वेद में उदगम है, क्योंकि यह कहा गया है कि परमात्मा ने सब सरकती हुई चीजें बनाईं। रेलगाड़ी यानी सरकती हुई चीज। बड़े खोजी थे! वेद में सब होना ही चाहिए।
उनकी यह सुनते-सुनते बकवास कि यह संसार सब माया है... । और उनके जीवन को मैं देखता था और उनकी बातें सुनता था। बड़ा मठ था कबीरपंथियों का और उसके वे महंत थे। उनका बड़ा बगीचा था। मैं उनके बगीचे में अक्सर पहुंच जाता था उनके फल चुराने। एक दिन उन्होंने मुझे पकड़ लिया। मैंने कहा, सब माया है, साहबदास जी! जैसे रस्सी में सांप का भ्रम। कहां फल! कहां वृक्ष! कहां मैं! कहां आप!
कहने लगे, ये ज्ञान की बातें यहां न करो।
मैंने कहा, आपसे ही सुनी हैं।
मैं उनके कुएं में स्नान करता था, उससे वे बहुत नाराज होते थे। उनका कुआं प्यारा था, काफी बड़ा था और ज्यादा गहरा भी नहीं था, इसलिए सीधे ऊपर से छलांग लगाई जा सकती थी। और उसकी सफाई के लिए उन्होंने लोहे की सीढ़ियां लगा रखी थीं, इसलिए लौटने में कोई अड़चन न थी। एक दिन उन्होंने मुझे पकड़ लिया कुएं के भीतर। वे एक बांस ले आए और मुझे बांस से मारें।
मैंने उनसे कहा, साहबदास जी, भूल गए आप, यह सब संसार माया है! अब माया कुआं, माया जल, माया मैं।
उन्होंने कहा कि आज तुझे ठीक करके रहूंगा। आज तुझे निकलने नहीं दूंगा। और अपने एक शिष्य को कहा कि जाकर इनके पिता को बुला कर लाओ--पिता

मेरे उनके दोस्त थे--क्योंकि आज रंगे हाथ इसे पकड़ लिया है। मेरा कुआं बरबाद किए दे रहा है।
मैंने कहा, आप भेज तो रहे हैं वह ठीक, मगर मुझे बहुत जोर से पेशाब लगी है। अगर एक सेकेंड और मुझे कुएं के भीतर रहना पड़ा, फिर मैं आपको भरोसा नहीं देता। रोको उस आदमी को, नहीं तो पछताओगे।
जल्दी से मुझे बाहर निकाला और कहने लगे कि भइया तू माफ कर, यह काम अब
मत करना कम से कम, यही हम पानी पीते हैं।
मैंने कहा, क्या फर्क पड़ता है, सब माया है।
उनकी बातें सुन-सुन कर कि यह सब रज्जु में सांप... । वे मेरी गली से निकलते थे, पड़ोस से, क्योंकि पीछे मेरे मकान के उनका मठ था। तो रोज सांझ को प्रवचन देने के बाद वे गली से गुजरते थे। मैंने देखा कि प्रयोग कर लेना ठीक है। अगर ये कहते हैं सच में ही तो इतना बोध तो इनको होगा। तो बाजार में एक आदमी सांप बेच रहा था--कागज के सांप--वह मैं खरीद लाया और एक पतले धागे में बांध कर अपने घर के भीतर छिप रहा।
वे निकले कोई नौ बजे रात। मैंने उस सांप को धीरे-धीरे रस्सी से खींचना शुरू किया। जैसे ही उन्होंने सांप देखा, क्या भागे! घबड़ाहट में गिर पड़े, फ्रैक्चर हो गया।
मैं पकड़ा गया। लेकिन मैंने कहा कि इसमें मेरा कोई कसूर नहीं। ये रोज समझाते हैं कि सारा संसार रस्सी में सांप जैसा है, तो मैंने सोचा कम से कम इतना बोध तो इनको होगा ही कि झूठे सांप से ये धोखा न खाएंगे। ये झूठे सांप से धोखा खा गए! अब इन्होंने अगर अपनी हड्डी तोड़ ली है तो मेरा कोई जिम्मा नहीं। मेरा क्या कसूर है? मैं तो सिर्फ एक झूठे सांप को चला रहा था। यह संयोग की बात है कि ये निकल आए, कोई इनके लिए ही नहीं बैठा था। और कम से कम इनको तो सिद्ध करना था कि बेफिक्री से निकल जाते। मगर भागे क्यों? घबड़ाए क्यों?
वह आखिरी दिन था, फिर उन्होंने संसार रस्सी में सांपवत है, ऐसा कहना बंद कर दिया। कम से कम जब मैं उनकी सभा में जाता, तब वे नहीं कहते थे। क्योंकि जैसे ही मैंने देखा कि अब ये कहने जा रहे हैं, कि मैं हाथ ऊपर कर देता कि ख्याल रखना; सारी बात खोल दूंगा।
मनुष्य और उसके सहस्रदल कमल के खुलने के बीच ठीक वैसा ही नाता नहीं है जैसा बीज और वृक्ष के बीच। बीज तो यथार्थ है, सत्य है; लेकिन मनुष्य का अहंकार तो बिल्कुल अयथार्थ है, असत्य है।
मैं तुमसे कहता हूं संसार सत्य है। मैं नहीं कहता कि संसार माया है।
इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातें तुम्हारे जीवन को विकृत करने का कारण बनी हैं। संसार परिपूर्ण सत्य है। लेकिन अगर कोई चीज असत्य है, तो तुम्हारा अहंकार है। अहंकार केवल आभास है।
इसलिए मिटाना नहीं है प्रेममूर्ति, सिर्फ देखना है। देखते ही मिट जाता है। सिर्फ भीतर रोशनी जलानी है ध्यान की। ध्यान का दीया जला कि अहंकार विदा हुआ। और तब आ जाता है वसंत। तब खिल उठते हैं फूल। तब जीवन सुगंध से भर जाता है।
मैं अहंकार मिटाने को नहीं कहता। क्योंकि जब भी किसी चीज को मिटाने
को कहा जाएगा, तो आदमी पूछेगा--क्यों? कोई हेतु तो होना चाहिए। मिटाने का श्रम करना है; बनी-बनाई चीज को गिराना है; जिंदगी भर जिसको सजाया है, संवारा है, उसको समाप्त करना है, अरथी पर चढ़ाना है--क्यों? उसी क्यों का उत्तर ये तुम्हारे धर्मगुरु दे रहे हैं--मर्तबा मिलेगा, इसलिए; स्वर्ग का राज्य मिलेगा, इसलिए; स्वर्ग में पुण्यों का लाभ मिलेगा, इसलिए। फिर हेतु देना जरूरी हो जाता है।
मैं तुमसे मिटाने को नहीं कहता।
और मिटाने की बात में यह तुमने मान ही लिया कि अहंकार सत्य है। और सत्य को क्या मिटाया जा सकता है? मिटाने की बात में तुमने यह स्वीकृति ही दे दी कि अहंकार एक तथ्य है जिसको मिटाना है। तुम्हारी स्वीकृति उसे और मजबूत करेगी। तुम जितना मिटाने की कोशिश करोगे, वह उतना मजबूत होगा।
क्योंकि भ्रांति तुम्हारी कायम है।

इसलिए तुम देखोगे तथाकथित विनम्र लोग, जो हमेशा कहते हैं कि हम तो आपके पैर की धूल हैं, जरा इनके चेहरों पर देखो। यूं तो कहते हैं पैर की धूल हैं, जरा इनकी नाक पर पढ़ो तो अहंकार लिखा हुआ है। ये कह ही इसीलिए रहे हैं कि हम आपके पैर की धूल हैं कि ताकि मर्तबा मिले। इनके कहने के पीछे इरादे कुछ और हैं।
ये विनम्रता के धोखे अहंकार का बचाव हैं। यह अहंकार को और भी सौंदर्य देना है। एक झूठ को और सौंदर्य देना है, और रंग देना है।
नहीं, मैं तुमसे मिटाने को नहीं कहता। मिटाने की बात तो तब उठती है जब कुछ हो। अहंकार है ही नहीं।
बोधिधर्म से सम्राट वू ने पूछा था कि मैं अहंकार से बहुत पीड़ित हूं। लाख उपाय किए मिटाने के, यह मिटता नहीं। आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। अब आप आ गए हैं भारत से यात्रा करके चीन। और मैंने बड़ी प्यारी कहानियां आपके संबंध में सुनी हैं। क्या आप मेरे अहंकार को मिटा सकते हैं? मैं तो हार गया, मैं तो जो कर सकता था किया। जो मुझसे कहा गया किया। जो साधनाएं, जो तपश्चर्या मुझसे कही गई मैंने की। लेकिन मैं पाता हूं कि अहंकार तो बच ही जाता है; कहीं न कहीं, किसी कोने-कातर में छिप ही जाता है; फिर-फिर लौट आता है, पीछे के दरवाजे से लौट आता है। यहां से फेंको, पीछे के दरवाजे से आ जाता है। दरवाजे बंद करो, खिड़कियों से आ जाता है। खिड़कियां बंद करो, रंध्रों से आ जाता है। मगर जरूर आ जाता है; अनिवार्यरूपेण आ जाता है। अब मैं हार गया। कम से कम एक बात तो वू ने ठीक कही। ईमानदार आदमी था। इतनी परख उसने रखी
कि मेरे मिटाने के सारे क्रम व्यर्थ हो गए हैं। सारे उपक्रम असार गए हैं।
बोधिधर्म ने कहा, फिर यूं करो, तुम नहीं मिटा सके, मैं मिटा दूंगा।
सुबह तीन बजे तुम आ जाओ, मैं जहां ठहरा हूं पहाड़ी पर। मगर अकेले आना।
सम्राट वू ने कहा, ठीक।
और जब वह सीढ़ियां उतर रहा था उस मंदिर की जिसमें बोधिधर्म ठहरे थे, तो बोधिधर्म ने चिल्ला कर कहा कि एक बात और ख्याल रखना, अपने अहंकार को साथ ले आना, नहीं तो मैं खत्म कैसे करूंगा! ऐसा न हो कि अहंकार को घर ही छोड़ आओ। अकेले आना, इसका यह मतलब नहीं है कि अहंकार को घर छोड़ आना। अकेले आना, मतलब यह भीड़-भाड़ दरबारियों की, ये खुशामदियों की, यह चमचों का जुलूस साथ मत लाना, अकेले आना। मगर अहंकार को जरूर ले आना, भूल-चूक न करना; क्योंकि तुम लाओगे तो ही तो मैं उसको खत्म कर सकूंगा।
सम्राट वू थोड़ा हैरान हुआ कि यह आदमी होश में है या विक्षिप्त है! आदमी देखने में तो अदभुत मालूम होता है। इसके पास की आभा, इसकी ज्योति, इसकी आंखों की धार, इसके वचनों की चोट! मगर यह क्या बात कि अहंकार को भूल मत आना। अरे अहंकार तो भीतर है, भूल कहां से आऊंगा! अगर अहंकार को बाहर ही रख सकता तो मैं खुद ही छुटकारा न पा लेता! रख कर बाहर, निकाल कर तलवार खंड-खंड कर देता कभी का। अहंकार को पकड़ ही नहीं पाता हूं, भूल कैसे आऊंगा? अहंकार तो भीतर है, सो मेरे साथ आएगा। यह क्या बात कही!
सो न सका रात। सोचने लगा, जाऊं या न जाऊं! तीन बजे रात, अंधेरी रात, बिना किसी को साथ लिए जाना, और यह आदमी पता नहीं क्या करेगा! और आज तक किसी ने मुझसे नहीं कहा कि आओ मैं तुम्हारा अहंकार खत्म कर दूं। कुछ मार-पीट न करने लगे।
और डंडा रखता था बोधिधर्म। और बोधिधर्म की आंखें बड़ी थीं। और उसकी आंखें देख कर कोई डर जाए। और उसके हाथ का डंडा। और उसके शब्द भी बड़े धार वाले थे। तलवारें थीं उसके शब्द, चोट बेरहमी से करता था।
थोड़ा संकोच में था--जाऊं न जाऊं, जाऊं न जाऊं। रात भर सो न सका। लेकिन आकर्षण भी लगता था कि एक आदमी ने तो पहली दफे जीवन में कहा है कि मिटा दूंगा। फिर दुबारा ऐसा आदमी मिले न मिले। खतरा लेने जैसा है। अरे बहुत से बहुत डंडे मारेगा और क्या करेगा! कोई मार ही न डालेगा।
सम्राट आया। पहली बात बोधिधर्म ने पूछी, अहंकार ले आए कि नहीं?
सम्राट ने कहा, आप भी कैसी बातें करते हैं! रात भर मैं सो न सका इसी बात
के कारण, अब फिर वही बात। अरे अहंकार मेरे भीतर है; छोड़ना भी चाहूं तो छूटता नहीं। भूल कहां आऊंगा? एक क्षण को नहीं भूलता। हर घड़ी पकड़े है मुझे, जकड़े है मुझे।

बोधिधर्म ने कहा, तो तुम कहते हो भीतर है।
सम्राट ने कहा, निश्चित।
तो बोधिधर्म ने कहा, आंख बंद कर। मैं यह डंडा लिए तेरे सामने बैठा हूं,
तू भीतर खोज। और जब तुझे भीतर मिल जाए तो बता देना कि मिल गया। एक ही हाथ में सफाया कर दूंगा।
सम्राट बहुत घबड़ाया कि यह सफाया किसका करेगा! यह सफाया मेरा करेगा या मेरे अहंकार का करेगा? और यह डंडा लिए सामने बैठा है। यह कहीं खोपड़ी वगैरह न खोल दे!
लेकिन बोधिधर्म की मौजूदगी, उसके हाथ में डंडे का होना और यह स्पष्ट सूचना कि तू पकड़ भर पाए, पहचान भर पाए कि यह रहा, बस मुझे कह देना कि यह रहा, इशारा भर कर देना।
एक परिणाम यह हुआ कि बोधिधर्म की मौजूदगी ने सम्राट वू को सोने न दिया, नहीं तो झपकी लग जाती; रात भर का जागा था, तीन बजे बैठता आंख बंद करके, झपकी खा जाता। मगर वह आदमी सामने बैठा, डंडा मारेगा। खोजने चला--पहली दफा खोजने चला। पहली दफा भीतर खोजने चला--है कहां?
जितना खोजा उतना हैरान हुआ। जितना खोजा उतना ही नहीं पाया। खोज-खोज
कर थक गया, सब तरफ भीतर जांच-पड़ताल की; कहीं भी न था। सुबह होने लगी, सूरज उगने लगा। और बोधिधर्म ने देखा एक अपूर्व शांति, एक अपूर्व मौन, एक अदभुत प्रसाद सम्राट के ऊपर उतरना शुरू हो गया। इधर सुबह के सूरज का उगना, ताजी- ताजी किरणें; जैसे कि सम्राट के भीतर भी एक नया सूरज उगा है; जैसे बाहर भी सुबह हो गई, भीतर भी सुबह हो गई।
बोधिधर्म ने कहा कि अब आंख खोलो। और अब अपनी बात कह दो। मिला?
सम्राट वू कुछ बोला नहीं, सिर्फ बोधिधर्म के चरणों पर गिर पड़ा। और उसने कहा कि नहीं मिला। और बात साफ हो गई कि मैं जिसे मिटाने में लगा था, वह है ही नहीं। इसलिए कैसे मिटा सकता था। मैं एक झूठ से लड़ रहा था।
और जब भी तुम झूठ से लड़ोगे तो हारोगे। इसलिए नहीं कि झूठ मजबूत होता है; झूठ होता ही नहीं, इसलिए हारोगे। अंधेरे से लड़ोगे तो जीत नहीं सकते। इसलिए नहीं कि अंधेरा महा शक्तिशाली है। अंधेरा है ही नहीं। सिर्फ रोशनी का अभाव है।
अहंकार ध्यान का अभाव है, जैसे अंधेरा प्रकाश का अभाव है। इसलिए फिक्र ही मत करो अहंकार की। वह गलत फिक्र है। ध्यान का दीया जलाओ। अगर तुम्हें अपने घर के अंधेरे को हटाना है तो सिर्फ दीया जलाओ। तुम्हारी दृष्टि दीये जलाने पर लगनी चाहिए। तुम्हारी दृष्टि अंधेरे को हटाने में लग गई तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। क्या करोगे? धक्के मारोगे? अंधेरे से लड़ोगे? तलवार चलाओगे? कुछ भी करोगे, अंधेरा नहीं कटेगा, अंधेरा नहीं हटेगा। तुम खुद ही हार जाओगे, थक जाओगे, गिर पड़ोगे। और स्वभावतः, तर्क कहेगा कि अंधेरा बड़ा मजबूत है, मिटता ही नहीं। कितने ही दंड-बैठक लगाओ और कितनी ही ताकत बढ़ाओ, कुछ अंतर न पड़ेगा। कितनी ही पहलवानी करो, हार निश्चित है।
और ख्याल रखें, फिर से दोहरा दूं--हार इसलिए निश्चित नहीं है कि अंधेरा शक्तिशाली है; हार इसलिए निश्चित है कि अंधेरे का अभाव है, अंधेरा है ही नहीं। तुम किससे लड़ रहे हो? जो नहीं है! जो नहीं है उसको कैसे काटोगे, कैसे हटाओगे?
हजारों साल से धर्मों ने यही शिक्षा दी है--अहंकार मिटाओ, अहंकार हटाओ, अहंकार गलाओ। और उसका परिणाम यह हुआ है कि लोग व्यर्थ के संघर्ष में लीन हैं। यही ऊर्जा, जो तुम अंधेरे या अहंकार से लड़ने में लगा रहे हो, रोशनी बन सकती है।
मैं तुमसे नहीं कहता कि अहंकार को मिटाना है। मैं तो कहता हूं, ध्यान
को जगाना है। तुम्हारे भीतर सोई हुई क्षमता है ध्यान की, बस उसको जगाओ। जैसे-जैसे तुम शांत होओगे, मौन होओगे, तुम्हारे भीतर रोशनी फैल जाएगी, सुबह हो जाएगी। और तब तुम देखोगे कि अंधकार सिर्फ अभाव था। अहंकार था नहीं, सिर्फ एक सपना था। संसार सत्य है, आत्मा सत्य है, शरीर सत्य है, पदार्थ सत्य है--अहंकार असत्य है। अहंकार के अतिरिक्त और कोई चीज असत्य नहीं है।

प्रेममूर्ति, मगर ये तथाकथित सूफी वचनों के आधार से मत जीना--
"मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे।"
यह जिसने भी कहा होगा, अज्ञानी है; उसे ध्यान का कोई अनुभव नहीं। सूफी नहीं है वह। उसने तसव्वुफ नहीं जाना, क्या खाक सूफी होगा! तुकबंद होगा कोई।
"कि दाना खाक में मिल कर गुलो-गुलजार होता है।"
दाना के संबंध में तो सच है, बीज के संबंध में सच है, लेकिन तुम्हारे संबंध में सच नहीं है। और इस तरह के वचन तुम्हारी दिशा को गलत तरफ मोड़ देते हैं।
मेरी बात सीधी-साफ है, दो टूक है। ध्यान पर सारी ऊर्जा को केंद्रित करो। ध्यान के अतिरिक्त अपनी ऊर्जा को और किसी दिशा में प्रवाहित मत होने दो। सारी ऊर्जा ध्यान पर ही बरस जाए तो क्रांति अपने आप हो जाती है। अहंकार भी नहीं पाया जाएगा, ईर्ष्या भी नहीं पाई जाएगी, लोभ भी नहीं पाया जाएगा, मद-मत्सर--ये सब अंधेरे के ही खेल हैं, अंधेरे की ही तरंगें हैं--ये सब एक साथ विदा हो जाएंगे।
लेकिन तथाकथित धर्मों ने तुमसे अलग-अलग लड़ाई करने को कहा है--अहंकार
से लड़ो, लोभ से लड़ो, मोह से लड़ो। लड़ते ही रहो। जन्मों-जन्मों लड़ोगे और कुछ भी न पाओगे।
लड़ो मत। मैं कहता हूं--जागो!

दूसरा प्रश्नः ओशो, कल आपने कहा कि मोहम्मद और कृष्ण की बहुत सी बातों
से आप राजी नहीं हैं। और कृष्ण की हिंसा को आपने हिटलर आदि की हिंसा से भी ज्यादा खतरनाक बताया। दूसरी ओर कृष्ण के बहुत से वचनों को आप अदभुत कहते हैं। क्या हिंसा का इतना अनुमोदन करने वाला भी अदभुत सत्य-वचन कह सकता है? कृपया समझाने की अनुकंपा करें।

श्याम तलरेजा, पहली बात, कृष्ण ने जो भी कहा है, वह एक ही चित्त की दिशा में नहीं कहा गया है। कुछ वचन हैं जो कृष्ण ने तब कहे होंगे जब वे बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं थे, जब ऐसे ही सोए थे जैसे तुम सोए हो। कुछ वचन हैं जो उन्होंने तब कहे होंगे जब बुद्धत्व के करीब आ रहे थे। रात टूटने के करीब थी, आखिरी तारे डूबने लगे थे। हालांकि अभी सुबह नहीं गई थी, मगर फिर भी अंधेरा जा चुका था; वह संध्याकाल आ गया था, वह बीच का अंतराल, जब कि सूरज अब उगा तब उगा, कि बस उगा ही। कुछ वचन तब कहे होंगे जब पूरब पर सूरज की लाली फैल गई होगी; जब कि सूरज के आगमन की घोषणा हो गई होगी। और कुछ वचन तब कहे होंगे जब सूरज उग गया होगा। कुछ वचन तब कहे होंगे जब सूरज शिखर पर आ गया होगा, मध्य आकाश में होगा। और कुछ वचन तब कहे होंगे जब सूरज अपनी परिपूर्ण प्रौढ़ता को पा लिया होगा--सांझ को, सूर्यास्त के पहले, जब सूरज ने सारे आकाश का अनुभव कर लिया, जब कि सूरज पूरी यात्रा कर चुका।
इसलिए अड़चन होती है। शास्त्रों में तो सारे वचन संगृहीत कर लिए गए हैं। जैसे गीता। तुम कहोगे कि गीता तो एक ही समय में कही गई। युद्ध के प्रथम दिन, जब कि कौरव और पांडव इकट्ठे हो गए हैं और अर्जुन युद्ध की हिंसा देख कर, भयानक रक्तपात की संभावना देख कर विरक्त हुआ जा रहा है--तब गीता कही गई है। तो तुम कहोगे, गीता तो एक ही अवस्था में कही गई है।
सचाई कुछ और है। यह बात ही बहुत बेहूदी मालूम होती है, असंगत मालूम होती है, कि जब युद्ध के शंख बज चुके हों, योद्धा एक-दूसरे के सामने युद्ध के लिए तत्पर हो चुके हों, तब यह अठारह अध्याय वाली गीता कही जाए। यह तो बहुत समय लेगी। यह तो सिर्फ कथानक है। यह तो कृष्ण के सारे वचनों को एक जगह इकट्ठा करके एक नाटकीय प्रारंभ देना है। गीता में कृष्ण के जीवन के अलग-अलग अनुभवों, अलग-अलग मनोदशाओं, अलग-अलग अनुभूतियों और अलग-अलग भाव-स्तर के सारे वचन संगृहीत हैं। यह कौरव-पांडवों का युद्ध, यह युद्ध के साथ गीता को जोड़ना एक प्यारा नाटकीय उपक्रम है; इसे एक कथा का रूप देना है; इसे एक निश्चित ढांचा देना है। मगर ये वचन अलग-अलग स्तर में कहे गए हैं।
और इसलिए मैं किन्हीं वचनों से राजी होऊंगा और किन्हीं वचनों का विरोध करूंगा। किन्हीं वचनों से थोड़ा राजी होऊंगा, किन्हीं वचनों से

पूर्ण राजी होऊंगा। किन्हीं से आंशिक, किन्हीं से समग्र। और मेरे राजी होने या न राजी होने के पीछे मेरी अपनी अनुभूति ही आधारशिला है; वही मापदंड है, वही कसौटी है।
तुम्हारी अड़चन मैं समझ सकता हूं। तुम कहते हो, यह कैसे हो सकता है कि
एक ही व्यक्ति ने हिंसा का भी समर्थन किया हो इतना भयंकर और साथ ही वह अदभुत सत्य-वचन भी बोला हो?
यह हो सकता है। आखिर अज्ञानी ही तो ज्ञान को उपलब्ध होते हैं। आखिर सोए हुए ही लोग तो जागते हैं। सपनों में भटके हुए ही लोग तो एक दिन सत्य को उपलब्ध होते हैं। और आमतौर से रेखा खींचनी मुश्किल होती है कि कब क्रांति घटी। खास कर कृष्ण के संबंध में हमारे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है कि कब क्रांति घटी; वह कौन सा क्षण था जिसके बाद कृष्ण को बुद्धत्व उपलब्ध हुआ। हिंदुओं की मौलिक धारणा की भूल के कारण यह रेखा नहीं खींची जा सकी, क्योंकि वे मानते हैं कि कृष्ण तो परमात्मा के अवतार हैं। इसलिए वे तो पहले से ही बुद्धत्व को उपलब्ध हैं। वे जन्मे ही बुद्धत्व को लेकर हैं। उन्होंने बुद्धत्व पाया नहीं, लेकर ही आए हैं। इसलिए सारा जीवन स्वीकार करना पड़ेगा उन्हें।
मेरी ऐसी कोई मजबूरी नहीं है। मैं कोई हिंदू नहीं हूं। मैं कोई जैन नहीं हूं। मैं कोई बौद्ध नहीं हूं। मैं किसी का अनुयायी नहीं हूं। इसलिए मेरी एक स्वतंत्रता है, जो अनुयायी की नहीं हो सकती। मैं सरलता से निर्णय कर सकता हूं। और मेरा अनुभव मेरी कसौटी है। मेरे अनुभव पर जो बात सच उतरती है, उसे मैं सच कहूंगा; वह किसी ने भी कही हो। और जो मेरे अनुभव पर सच नहीं उतरती, वह मैं गलत कहूंगा; वह किसी ने भी कही हो। जीसस ने कही हो, कृष्ण ने कही हो, बुद्ध ने कही हो--कुछ भेद नहीं पड़ता।
मैं कृष्ण की हिंसात्मक दृष्टि से राजी नहीं हूं। कृष्ण की हिंसात्मक दृष्टि को मैं निश्चित ही हिटलर, स्टैलिन जैसे लोगों की हिंसा से बहुत ज्यादा खतरनाक मानता हूं। क्योंकि ये सारे लोग भला हिंसा किए हों, लेकिन इनके पास हिंसा का कोई दार्शनिक समर्थन नहीं है। इनके पास हिंसा की कोई तर्क-प्रक्रिया नहीं है। और कृष्ण ने हिंसा के लिए तर्क-प्रक्रिया दी, एक दार्शनिक पृष्ठभूमि दी। वही खतरनाक बात है। दार्शनिक जो आधारशिला कृष्ण ने दी है, वह महाभारत में हुई हिंसा को ही सही नहीं कर देती, वह तो सभी तरह की हिंसा को सही कर देती है।
कृष्ण यह कहते हैं कि शरीर तो मरा ही हुआ है। संक्षिप्त में तर्क इतना
है कि शरीर तो मरा ही हुआ है, क्योंकि मिट्टी से बना हुआ है। और आत्मा अमृत है, इसलिए आत्मा मर नहीं सकती। तो जब तुम किसी को मारते हो तो तुम इतना ही कर रहे हो कि उसके शरीर और आत्मा को अलग कर रहे हो। इसमें मृत्यु जैसा कुछ भी नहीं है। शरीर मरा ही हुआ है, पहले भी मरा हुआ था, इसलिए मरे हुए को तो क्या मारोगे! आत्मा पहले भी अमर थी, अब भी अमर है; अमर को क्या मारोगे!
तो यह तो यूं ही है जैसे कोई किसी के वस्त्र उतार दे। वह आदमी वस्त्रों के भीतर तो नंगा था ही; कोई वस्त्र उतारने से नंगा हो गया, ऐसा नहीं। नंगा तो वस्त्र के भीतर था ही, वस्त्र उतारने से सिर्फ नग्नता प्रकट हो गई। तो कृष्ण कहते हैं कि हिंसा में कोई पाप नहीं है। क्योंकि कोई मरता ही नहीं तो पाप कैसे लगेगा?
अगर यह बात सच है, तो इस दुनिया में जितने हिंसक हुए हैं--फिर चाहे वह तैमूर लंगड़ा हो, कि चाहे चंगीजखान हो, चाहे नादिरशाह हो--उन्होंने कुछ हर्जा नहीं किया। धार्मिक कार्य कर रहे थे, अच्छा ही कार्य कर रहे थे, शरीर को आत्मा से अलग कर रहे थे, नीर-क्षीर-विवेक कर रहे थे, परमहंस थे!
दूसरा तर्क कृष्ण ने हिंसा के लिए दिया है कि मृत्यु तो सुनिश्चित है, श्वास-श्वास सुनिश्चित है। जिसको जब मरना है, तभी मरना है। तू अर्जुन, इस भूल में मत पड़ कि तू मारने वाला है। अरे मारने वाला परमात्मा है! वह तो पहले ही मार चुका है। तू निमित्त मात्र है।
अगर यह बात सच है तो सभी हत्यारों के संबंध में यह बात सच है। फिर नाथूराम गोडसे को फांसी देने की क्या जरूरत? महात्मा गांधी को भगवान पहले ही मार चुका होगा। नाथूराम राम ही समझो, जरा नक-कटे हैं इसलिए नाथूराम! काम

तो राम का ही कर रहे हैं। तो नाथूराम को तो महात्मा कहना चाहिए; परमात्मा के निमित्त बने। इनको फांसी देने की क्या जरूरत?
फिर तो सभी हत्याएं, सभी पाप अंगीकृत हो जाते हैं। तुम्हारी चोरी होनी है, तो ही होगी। तुम्हारे भाग्य में बदी थी। इसमें चोर का क्या कसूर है! तुम्हारी पत्नी को कोई भगा ले जाए, इसमें वह क्या कर सकता है भगाने वाला, परमात्मा पहले ही भगा चुका था!
जरा इस तर्क की बेहूदगी देखो। इस तर्क के आधार पर तो जीवन असंभव हो जाएगा। और कृष्ण खुद भी इस तर्क के आधार पर जीते नहीं, इसलिए मैं बेईमान कहता हूं। क्योंकि जब दुर्योधन द्रौपदी के वस्त्र खींचने लगा, तो बेचारा उसका क्या कसूर, भगवान पहले ही खींच चुका हो। सीधी-साफ बात है। जब मृत्यु जैसी बड़ी चीज को भी भगवान पर छोड़ा जा रहा है, भाग्य पर छोड़ा जा रहा है, तो यह द्रौपदी का वस्त्र खींचना कोई बहुत बड़ी बात हो रही है! फिर उसे पूरा नैतिक अधिकार था, क्योंकि जुए में उसने जीता था। वह अगर वस्त्र छीन रहा है, तो कृष्ण को उसकी साड़ी बढ़ाने की क्या जरूरत है? ये परमात्मा के काम में बाधा डाल रहे हैं। दुर्योधन परमात्मा का काम कर रहा है, और ये भइया बाधा डाल रहे हैं!
और बाधा डालने का कुल कारण इतना है कि द्रौपदी इनकी बहन है। और ये खुद दूसरी स्त्रियों के वस्त्र चुरा-चुरा कर झाड़ों पर चढ़ कर बैठते रहे, मगर वे इनकी बहनें नहीं थीं, सो वह रासलीला थी। बेचारे दुर्योधन ने सोचा होगा मैं भी थोड़ी रासलीला करूं। जब रासलीला ऐसी रसभरी चीज है तो कुछ मैं भी करूं। कृष्ण से ही प्रेरणा मिली होगी। वह भी रासलीला कर रहा था, तो उसको रासलीला क्यों नहीं करने देते? खुद दूसरी स्त्रियों के वस्त्र चुरा कर झाड़ों पर बैठ जाते हो, तब यह बात नैतिक है, तब यह बात धार्मिक है, तब यह बड़े गजब का काम हो रहा है, तब इसका गुणगान होना चाहिए। और जब दुर्योधन को भी ऐसी ही आध्यात्मिक प्रेरणा उठी, तो पाप होने लगा!
कृष्ण ने इस तरह के जो वचन कहे हैं, वे वचन शुद्ध राजनैतिक हैं और फैसिस्ट हैं। और उनकी जितनी निंदा की जाए ठीक है। लेकिन कृष्ण ने बहुत से प्यारे वचन भी कहे हैं, उनका मैं समर्थन करता हूं; उनसे मेरा कोई विरोध नहीं है। मगर ये अलग-अलग भाव-दशाओं में कहे गए होंगे, यह बात सुनिश्चित है। और यही सत्य है मोहम्मद के संबंध में। यही सत्य है बुद्ध के संबंध में।
मेरा चुनाव आणविक है, यह तुम्हें समझ लेना चाहिए। मैं तो एक-एक चीज को कसौटी पर कसता हूं। मैं कोई सारी बातों को अंगीकार नहीं करता, चाहे कितने ही सम्मानित शास्त्रों में वे क्यों न हों। अगर मेरे लिए गलत दिखाई पड़ती हैं, तो मैं उन्हें गलत कहूंगा, चाहे जो परिणाम हो। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जब मुझे कोई चीज सही दिखाई पड़ती है तो मैं अपने को रोकूं यह कहने से कि वह बात सही है, क्योंकि कहीं लोग यह न समझें कि मैं असंगतियां कर रहा हूं--कभी कहता हूं सही किसी बात को, कभी कहता हूं गलत किसी बात को। मेरी दृष्टि आणविक है।
जैसे श्रीमद्भागवत का यह वचनः सुखदुःखो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृत्भूवपुमान्।
अर्थात सुख और दुख का देने वाला कोई दूसरा नहीं होता, क्योंकि मनुष्य अपने किए का ही फल पाता है।
यह बात एक दृष्टि से सही और दूसरी दृष्टि से गलत। इस दृष्टि से सही है
कि यह प्रत्येक व्यक्ति को अपना उत्तरदायित्व समझने की प्रेरणा देती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना मालिक बनाती है, कि तुम अपने दुखों के खुद कारण हो और तुम अपने सुखों के भी खुद कारण हो। यह तुम्हारा चुनाव है। तुम ऐसी जीवन-शैली चुन सकते हो जो स्वर्ग बन जाए और तुम ऐसी जीवन-शैली जी सकते हो जो नर्क बन जाए। अगर इस बात का यह अर्थ लिया जाए, तो मैं इसका समर्थन करूंगा।
मैं तुम्हें उदाहरण दे रहा हूं कि कभी यह भी हो सकता है कि मैं किसी एक बात का, एक वक्तव्य का, किसी खास अर्थ में समर्थन करूं और खास अर्थ में विरोध भी करूं।

इसका दूसरा जो अर्थ है, उसका मैं विरोधी हूं। और वही दूसरा अर्थ भारत
की छाती पर पत्थर की तरह बैठा हुआ है। दूसरा अर्थ इसका यह हुआ कि फिर समाज को रूपांतरित करने का कोई उपाय न बचा। अगर तुम गरीब हो, तो अपने पापों के कारण--नहीं उन लोगों के कारण जो चूस रहे हैं। अगर तुम दुख भोग रहे हो, तो अपने पापों के कारण--नहीं इसलिए कि समाज की एक ऐसी व्यवस्था में तुम जी रहे हो जहां सुख से जीने की कोई सुविधा नहीं है, जहां चारों तरफ दुख पैदा करने के उपाय हैं।
इससे एक तरह की सामाजिक दासता पैदा होती है। हजारों साल हो गए भारत में गरीब हैं, लेकिन गरीबों ने कोई बगावत नहीं की। क्यों? कैसे बगावत करें! यह श्रीमद्भागवत का वचन उनसे यह कह रहा है कि तुम गरीब हो अपने कर्मों के कारण। पिछले जन्मों में किए कर्म, अब उनका तुम करोगे भी क्या! सिवाय सहने के और क्या उपाय है! सह लो शांति से, धैर्य से। अपने किए को भोग लो, ताकि कर्म कट जाएं। इससे सामाजिक उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। और यही समाज के शोषक चाहते हैं।
अगर यह बात समझ में आनी शुरू हो जाए कि गरीबी का कोई संबंध तुम्हारे अतीत के पाप-कर्मों से नहीं है... और मैं तुमसे कहता हूं नहीं है, कोई संबंध नहीं है। गरीबी सामाजिक व्यवस्था है। गुलामी सामाजिक व्यवस्था है।
भारत बाईस सौ साल गुलाम रहा, श्रीमद्भागवत के इस तरह के वचनों के ही कारण। क्योंकि क्या कर सकते हो, गुलामी हमारे भाग्य में बदी है। छोटे-छोटे कबीले इस देश पर आए--जिनकी कोई ताकत न थी, कोई हैसियत न थी--इस विराट देश को गुलाम बना सके बड़ी सुगमता से, क्योंकि इस देश के भीतर एक आध्यात्मिक गुलामी का शड्यंत्र सदियों से चल रहा था। लोगों ने अंगीकार कर लिया, दासता को अंगीकार कर लिया। भाग्य है, किया क्या जा सकता है! अपने हाथ में कुछ भी नहीं। परमात्मा के बिना हिलाए पत्ता नहीं हिलता, सो गुलामी कैसे हटेगी! जब वह हटाना चाहेगा, तब हटेगी। जब हमारे कर्म बदलेंगे, तब हटेगी।
इसका मतलब यह हुआ कि जो लुटेरे आए, उनका कोई जिम्मा नहीं है। जिन्होंने इस मुल्क को दलित किया, शोषित किया, इसकी छाती पर घूंघर मूती, उनका कोई दायित्व नहीं है। हम ही जिम्मेवार हैं। यह मामला ऐसा हो गया कि चार आदमी एक स्त्री को पकड़ कर बलात्कार करें, तो स्त्री जिम्मेवार है; पिछले जन्मों का फल भोग रही है। और ये चार सज्जन जो कर रहे हैं, ये शायद पिछले जन्मों का पुण्य भोग रहे हैं। ये क्या कर रहे हैं? इन्होंने पिछले जन्मों में पुण्य किए होंगे, सो इनको पुरस्कार मिला है कि बलात्कार करो एक स्त्री से। और स्त्री अपना पाप भोग रही है।
अगर इस तरह के सूत्रों का ऐसा अर्थ लिया जाए, तो मैं विरोध करूंगा। इसलिए यह भी तुमसे कह दूं कि जरूरी नहीं है कि मैं किसी वक्तव्य का उसके सब अर्थों में समर्थन करूं। एक-एक वक्तव्य के कई आयाम हो सकते हैं। आयाम भी चुनने होंगे।
यह मैं मानता हूं कि तुम अगर दुखी हो तो तुम्हारी जीवन-दृष्टि में कहीं भूल है। और तुम्हारी जीवन-दृष्टि में अगर भूल है तो तुम गरीब होकर भी दुखी रहोगे, तुम धनी होकर भी दुखी रहोगे। लेकिन तुम्हारी जीवन-दृष्टि तुम्हारे गरीब होने और अमीर होने का कारण नहीं है। उसके कारण अलग हैं। समाज की व्यवस्था; आर्थिक व्यवस्था; वैज्ञानिक, तकनीकी, औद्योगिक व्यवस्था; उसके हजार कारण हैं। लेकिन एक बात तय है कि अगर तुम्हारी जीवन-दृष्टि का कहीं मौलिक रूप गलत है, तो तुम धनी भी हो जाओ तो भी दुखी रहोगे। तुम धन का उपयोग अपने दुख को बढ़ाने के लिए ही करोगे, और क्या करोगे!
एक आदमी को, जो कि एक साधारण दर्जी था, शौक था, हर महीने एक रुपये की लाटरी खरीद लेता था। तीस वर्ष से खरीद रहा था। न कभी उसे पुरस्कार मिला था, न कोई आशा थी मिलने की; पर आदतन हर महीने की एक तारीख को एक रुपया लगा देता। हर्ज भी क्या था!
मगर यूं हुआ कि एक दिन एक बड़ी कार दरवाजे पर आकर रुकी, और थैलों में भर
कर रुपये लाए गए। उसकी तो आंखें फटी की फटी रह गईं। उसने कहा, क्या हो रहा है?

उन लोगों ने कहा कि तुम धन्यभागी हो, लाटरी तुम्हारे नाम खुली है। प्रथम पुरस्कार तुम्हें मिला है। ये दस लाख रुपये हम तुम्हें देने आए हैं।
स्वभावतः दर्जी तो बहक गया। अरे, कोई भी बहक जाता। दस लाख रुपये! दस रुपये इकट्ठे उसने नहीं देखे थे कभी। उसने तो दुकान पर ताला लगाया और चाबी कुएं में फेंक दी। मामला खत्म, अब करना क्या है! और दस लाख रुपये पा लिए तो शराब पीने लगा, वेश्यागमन करने लगा। सब तरह के उपद्रवों में पड़ गया। जुआ खेलने लगा। और लोग भी मिल गए, जब दस लाख रुपये आए तो जुआरियों की भी नजर आई, शराबियों की भी नजर आई, वेश्याओं के दलालों की भी नजर आई, राजनेता भी आए। किसी ने कहा कि चुनाव में खड़ा हो जा भैया। ऐसा मौका मत चूक!
सब तरह के उपद्रव में साल भर में दस लाख रुपये खत्म हो गए। रुपये ही खत्म नहीं हुए दस साल में सारा स्वास्थ्य भी बरबाद हो गया।
साल भर बाद लौटा अपनी दुकान पर, क्योंकि अब एक पैसा पास नहीं। तब याद आया है कि चाबी तो कुएं में फेंक दी! सो कुएं में उतरा--बामुश्किल चाबी खोज पाया। तब सोचा-विचारा कि मैंने क्या किया यह साल भर! ये दस लाख रुपये मेरे लिए सौभाग्य नहीं हुए, यह तो दुर्भाग्य हो गया। पहले ही मैं भला-चंगा था--न चिंता थी, न फिक्र थी, न परेशानी थी, स्वस्थ भी था। भगवान न करे अब कभी दुबारा लाटरी खुले।
मगर पुरानी आदत, हर महीने वह फिर एक रुपये से टिकट खरीदने लगा। यूं भी सोचता चला जाए--ये तुम आदमी के द्वंद्व समझो--कि अब नहीं मिले, अरे अब कहीं मिलने वाली है! तीस साल नहीं मिली, यह तो एक संयोग की बात, मिल गई। मगर टिकट खरीदता रहा।
और संयोग कुछ यूं घटा कि दूसरे साल फिर मिली। जब कार आकर उसके सामने रुकी, उसने अपनी छाती पीट ली कि नहीं भैया, अब नहीं! कहे कि अब नहीं, लेकिन ताला बंद करता जाए। कहे कि अब नहीं, लेकिन चाबी फिर फेंक दी। आदमी की विक्षिप्तताएं! इनकार कर रहा है और थैली सम्हाल भी रहा है, और फिर वही दौर शुरू हुआ।
मगर दूसरे दौर में खात्मा ही हो गया। फिर चाबी निकालने का मौका ही नहीं आया। प्राण ही निकल गए।
आदमी की जीवन-शैली, उसके भीतर की आंतरिक दशा, निर्णायक तो है--धन हो तो, गरीबी हो तो; सुविधा हो तो, असुविधा हो तो। इसलिए एक आयाम में यह वचन सत्य है, मगर और आयामों में यह वचन असत्य हो जाता है।
श्याम तलरेजा, मेरी बातें तुम जब सुन रहे हो, तो तुम किसी साधारण धर्मगुरु की बातें नहीं सुन रहे हो। मैं किसी शास्त्र का अनुमोदन या समर्थन करने को यहां नहीं बैठा हूं। मुझे शास्त्रों से क्या लेना-देना! मेरे पास अपनी जीवन-दृष्टि है; देखने का अपना ढंग है; अपना सलीका है। और उस जीवन-दृष्टि से मैं आनंदित हुआ हूं--परम आनंदित हुआ हूं। इसलिए अपनी जीवन-दृष्टि तुम्हें बांटना चाहता हूं। शायद किसी के भीतर का दीया जल जाए। शायद किसी के भीतर रोशनी हो उठे। शायद किसी के भीतर का फूल खिल जाए। इसलिए मैं जो भी कह रहा हूं उसका कोई प्रयोजन न कृष्ण से है, न बुद्ध
से है, न क्राइस्ट से है, न मोहम्मद से है। लेकिन चूंकि ये नाम सदियों से तुम्हारे दिमाग में रहे हैं, इनका मैं उपयोग कर लेता हूं। सिर्फ बात तुम तक पहुंच जाए, यह भाषा तुम्हारी है, इसलिए इनका उपयोग कर लेता हूं। अन्यथा मैं सीधी-सीधी अपनी बात कह सकता हूं; किसी का भी नाम लेने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तब तुम्हें समझना थोड़ा मुश्किल हो जाएगा।
और मैं तुम्हें एक अवसर भी देना चाहता हूं कि तुम भी सीख सको कि किसी शास्त्र को पूरा का पूरा स्वीकार कर लेना सिर्फ बुद्धूपन है। या पूरा इनकार कर देना, वह भी बुद्धूपन है। और ये दो तरह के बुद्धूपन प्रचलित बुद्धूपन हैं। या तो कोई मानता है तो पूरी किताब को मानता है, और या कोई नहीं मानता तो पूरी किताब को नहीं मानता।
यह बात गलत है। तुम्हारे पास विवेक है। और तुम्हें चुनाव करने की क्षमता आनी चाहिए। तुम स्वतंत्र हो चुनने को। और जिस दिन तुममें इतना साहस आ जाएगा कि तुम कृष्ण की किसी बात को भी गलत कह सको और कृष्ण की किसी बात को सही भी कह सको, उस दिन तुम्हारे भीतर एक गरिमा पैदा होगी; तुम्हारा

व्यक्तित्व निखरेगा। उस दिन तुम्हारे भीतर भी कृष्ण और क्राइस्ट और बुद्ध जैसी क्षमता की पहली शुरुआत होगी।
मैं तुम्हें तुम्हारे भीतर छिपी हुई क्षमताओं का धीरे-धीरे आभास कराना चाहता हूं। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर परम विवेक छिपा है, परम ज्ञान छिपा है; सिर्फ उसे प्रकट करने के लिए, उसे अभिव्यक्ति देने के लिए--कुछ बाधाएं हैं बीच में जो हटानी हैं, कुछ पत्थर हैं, चट्टानें हैं, जो तुम्हारी चेतना के झरने को नहीं बहने देती हैं--उन चट्टानों को हटाने के लिए मुझे यह चर्चा करनी पड़ती है। तुम्हें मुश्किल भी होती है, कठिनाई भी होती है। मगर मेरी भी मजबूरी है।
अगर मेरे साथ चलना है तो तुम्हें तैयारी रखनी होगी सब तरह की चोटें झेलने की। अगर तुम्हें मेरे पास बैठना है, तो तुम्हें याद रखना होगा--जिस ढंग से सम्राट वू बैठा था बोधिधर्म के सामने। मेरा लट्ठ तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, यह और बात है।
कबीर कहते हैं--
कबिरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर बारे आपना, चलै हमारे साथ।।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
पांचवां प्रवचन

मैं धर्म नहीं, धार्मिकता दे रहा हूं

पहला प्रश्नः ओशो, आपने कहा प्यासा ही कुएं के पास जाता है, न कि कुआं प्यासे के पास। जो प्यासे हैं वे तो आ ही गए हैं, आ ही रहे हैं, आ ही जाएंगे; परंतु जो इतनी नींद में हैं कि उन्हें अपनी प्यास का पता ही नहीं या स्वप्न के पानी को पीकर ही वे जागने का आभास पा रहे हैं, वे कैसे वास्तविक प्यास का अनुभव कर सकेंगे? क्या आपका आनंद का झरना सब जगह बहता हुआ उनकी प्यास को जगा कर उन्हें तृप्त नहीं कर देगा?
भगवान बुद्ध की परम करुणा की अभिव्यक्ति थी कि जब तक संसार के समस्त जीव निर्वाण प्राप्त नहीं कर लेते हैं, वे भी निर्वाण में प्रवेश नहीं करेंगे। पता नहीं वे कितने सामर्थ्यवान थे। निरपेक्ष परम तत्व की अनुभूति में आप सभी बुद्ध पुरुषों के एक समान होने पर भी सभी की अभिव्यक्ति और अन्यों को परम तत्व की अनुभूति कराने का सामर्थ्य तो भिन्न ही होता है। आप जैसा सामर्थ्यवान बुद्ध पुरुष विश्व में न कभी पैदा हुआ है और न कभी हो सकेगा। क्या आपका सामर्थ्यवान प्रकाश उन अंधेरे कमरों को भी प्रकाशित नहीं कर देगा जिनके कि दरवाजे बंद हैं?

प्रेम प्रमोद, पहली तो बात यह कि गौतम बुद्ध की यह घोषणा--कि जब तक सभी जीव निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो जाते हैं तब तक वे निर्वाण में प्रवेश नहीं करेंगे--कपोल-कल्पित है। एक कहानी मात्र। और बुद्ध की मृत्यु के कोई हजार साल बाद गढ़ी गई कहानी। प्रीतिकर लगती है, सुंदर भासती है, सोए हुए लोगों के हृदय को सांत्वना देती मालूम पड़ती है, पर सत्य नहीं है। निर्वाण में कोई अपने प्रवेश को रोक नहीं सकता है। आंख खुली कि प्रकाश हुआ। फिर तुम चाहे आंख भी बंद कर लो तो भी तुम जानते हो कि प्रकाश है। निर्वाण का अनुभव ऐसा कोई अनुभव नहीं है कि कोई चाहे तो प्रवेश करे और चाहे तो ठहर जाए।
और यह कहानी बुद्ध की जीवन-धारणाओं से मेल भी नहीं खाती। बुद्ध का अंतिम वचन था... जब उनके शिष्य रोने लगे, जो कि स्वाभाविक था, चालीस वर्षों तक सतत जिन्होंने बुद्ध का सत्संग किया था, उस अमृत को पीया था, काश उनकी आंखें आंसुओं से भर गईं तो आश्चर्य कुछ भी नहीं। वे भी रोने लगे जो बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए थे; उनके हृदय भी आंसुओं से भर गए। यह विदाई कठिन थी। जब बुद्ध ने कहा अब मैं विदा होता हूं और मेरी अंतिम घड़ी आ गई, तो आनंद भी रोने लगा।
बुद्ध ने कहा, आनंद, रो मत। औरों से भी कहा कि रोओ मत।
आनंद ने कहा, कैसे न रोएं? कैसे रोने को रोकें? यह हमारे बस की बात नहीं है। यह अनिवार्य है। इतना प्रेम पाया, इतना अमृत पीया--यह कृतज्ञता स्वाभाविक है। यह धन्यवाद है। ये हमारे आंसू हमारे हृदय की भावनाओं के प्रतीक हैं। और इसलिए भी हम रोते हैं कि आपके रहते भी, आपके सत्संग में जीते भी हममें से कितने ही अभी भी जागे नहीं। मैं भी उनमें से हूं--आनंद ने कहा--जो अभी जागा नहीं। रोऊं न तो क्या करूं? क्योंकि आपकी मौजूदगी में न जाग सका, तो आपके विदा हो जाने पर मेरे जागने की क्या संभावना है! फिर तो अनंत काल में भी आप जैसे सदगुरु को पा सकूंगा, इसकी आशा भी नहीं रख सकता। ऐसा महान अवसर मैंने खोया है। आपकी विदाई के लिए रोता हूं, अपनी मूढ़ता के लिए रोता हूं।
बुद्ध ने कहा, तू पागल है। तू मेरी शिक्षा का सूत्र ही नहीं समझा। मैं चाहूं भी तो तुझे मुक्त नहीं कर सकता हूं। बंधन भी तूने निर्मित किए हैं और तू ही काटेगा। इसलिए स्मरण रखना--बुद्ध ने आनंद को कहा--यह मेरा अंतिम वक्तव्य है पृथ्वी परः अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो, क्योंकि कोई और किसी का दीया काम नहीं आ सकता है। मेरे होने न होने से कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम्हें स्वयं ही अपने प्रकाश की तलाश करनी होगी।
धर्म उधार नहीं होता; न शास्त्र से मिलता है, न शास्ता से मिलता है।
धर्म तो स्वयं की अनुभूति है; कोई दूसरा देना भी चाहे तो भी दिया नहीं जा

सकता। धर्म का सत्य हस्तांतरणीय नहीं है। सत्य हस्तांतरणीय हो भी नहीं सकता। सत्य कोई वस्तु नहीं है कि कोई किसी को दे दे, कि कोई खरीद ले, कि कोई बेच दे। यही तो सत्य की गरिमा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निजता में ही उसे खोजना होता है।
सदगुरु इशारा दे सकता है, लेकिन इशारे पर चलना तो तुम्हें ही होगा। और तुम अगर न चलना चाहो तो कोई तुम्हें जबरदस्ती नहीं चला सकता है।
यह कहानी कि बुद्ध मृत्यु के बाद जब मोक्ष के द्वार पर पहुंचे, उनके स्वागत में द्वार खुला, फूलमालाएं लिए हुए मोक्ष उनका स्वागत करने को तैयार है, लेकिन बुद्ध पीठ करके खड़े हो गए और उन्होंने कहा, मैं मोक्ष में तब तक प्रवेश नहीं करूंगा जब तक कि समस्त जीव मुक्त नहीं हो जाते। यह कहानी एक हजार साल बाद गढ़ी गई। और इस कहानी के पीछे बुद्ध की करुणा नहीं है, इस कहानी के पीछे राज कुछ और है।
बुद्ध ने व्यक्ति को इतनी महत्ता दी थी जितनी कभी किसी ने नहीं दी; इतनी गरिमा दी जितनी कभी किसी ने नहीं दी। लेकिन बुद्ध की व्यक्ति को दी गई गरिमा को समझा नहीं जा सका। पंडित और पुरोहित चाहते भी न थे कि व्यक्ति को इतनी गरिमा मिले, क्योंकि व्यक्ति अगर इतना गरिमावान है तो पंडित-पुरोहित की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। सत्य स्वयं पाना है तो फिर मध्यस्थों की और दलालों की क्या जरूरत है? फिर पुजारियों की और महंतों की क्या आवश्यकता है?
बुद्ध के धर्म को उखाड़ फेंका गया भारत से। जब बुद्ध-धर्म भारत से उखड़ गया, तिब्बत, बर्मा, लंका, चीन और दूर कोरिया तक फैला, तब उसने अपनी आधारशिलाएं बदल लीं। एक बात जाहिर हो गई थी कि बुद्ध का सत्य इतना शुद्धतम सत्य है कि लोग उसे पचा नहीं सकते। बौद्ध भिक्षु अब सत्य में उतने उत्सुक नहीं थे जितने बुद्ध-धर्म के प्रचार में उत्सुक थे। इसलिए उन्होंने समझौते किए। उन्होंने समझौते किए लोकमानस से। बुद्ध ने कभी कोई समझौता नहीं किया लोकमानस से। कोई बुद्ध पुरुष लोकमानस से समझौता नहीं करता--कर नहीं सकता। लोकमानस से समझौता करने का अर्थ हैः सत्य झुक रहा है असत्य के सामने। लेकिन पंडित और पुरोहित तो हमेशा समझौता करने को राजी होते हैं। जो लोग बुद्ध के धर्म को सारे एशिया में ले गए वे पंडित-पुरोहित थे।
अब उनका यह न्यस्त स्वार्थ था, उन्होंने आधारशिलाएं बदल दीं। फिर चीन और जापान और कोरिया के लोगों को पता भी न था कि बुद्ध का मौलिक उपदेश क्या है।
वे धोखे में आ गए। इन पंडित-पुरोहितों ने यह कथा गढ़ी कि बुद्ध मनुष्य-जाति के कल्याण के लिए पैदा हुए थे।
और बुद्ध ने कहा है कि कोई दूसरा किसी का कल्याण नहीं कर सकता।
इन्होंने कहा कि तुम चिंता न करो, तुम सिर्फ बुद्ध की पूजा करो, इतना काफी है; बुद्ध का स्मरण करो, इतना पर्याप्त है; और बुद्ध की करुणा तुम्हें पार ले जाएगी। बुद्ध की करुणा की जो नाव है, उसमें सवार हो जाओ। तुम्हें न ध्यान करना है, न समाधि साधनी है। एकमात्र तुम्हें काम करना है वह यह कि बुद्ध की नाव में सवार हो जाओ।
इन पंडित-पुरोहितों ने यह कथा गढ़ी कि बुद्ध अभी मोक्ष के द्वार पर खड़े हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे तब तक प्रवेश न करेंगे जब तक कि तुम्हें प्रवेश न करवा दें। वे समस्त प्राणियों को मोक्ष में ले जाएंगे। तब अंततः अंतिम व्यक्ति की तरह मोक्ष में प्रवेश करेंगे।
लोकमानस को यह बात प्रीतिकर लगती है कि बुद्ध हमारे लिए रुके हैं, कि हमें कुछ करना नहीं है, सिर्फ बुद्ध का गुणगान करना है, स्तुति गानी है। बुद्ध का धर्म प्रार्थना का धर्म नहीं था। लेकिन बुद्ध के अनुयायियों
ने उसे प्रार्थना का धर्म बना दिया। बुद्ध के धर्म में भगवान का कोई स्थान ही न था। बुद्ध का धर्म निरीश्वरवादी धर्म है; उसमें कोई स्रष्टा नहीं है, कोई भगवान नहीं है। लेकिन बुद्ध के पंडित-पुरोहितों ने बुद्ध को ही, बुद्ध की प्रतिमा को ही मंदिर में विराजित कर दिया।
बुद्ध की सुनी होती तो बुद्ध के नाम से कोई मंदिर नहीं बन सकता था, कोई मूर्ति नहीं बन सकती थी, पूजा का कोई आधार न था, प्रार्थना का कोई उपाय न था। लेकिन यह लोकमानस से समझौता किया, झूठ से समझौता किया।

और जब भी तुम झूठ से समझौता करोगे तो निश्चित ही, इस बात को स्मरण रखना, सत्य पूरी तरह तिरोहित हो जाएगा। सत्य आंशिक रूप से नहीं बचता है; या तो पूरा या बिल्कुल नहीं। और जब भी तुम सत्य के साथ असत्य को मिलाओगे तो जीत असत्य की हो जाएगी। सत्य तो तिरोहित हो जाएगा। सत्य को तुम थोड़ा-बहुत नहीं बचा सकते।
इसलिए मैं इस कहानी से राजी नहीं हूं। ये बातें छोड़ो कि किसी की करुणा
से तुम बच सकोगे। यह बेईमानी है। यह अपने साथ बेईमानी है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि तुम्हारी कोई स्वतंत्रता नहीं है। बंधे हो, शायद यह भी किसी और के कारण; छूटोगे, यह भी किसी और के कारण। तो तुम कौन हो? तुम हो या नहीं? तुम्हारी कोई सत्ता है या नहीं? तुम्हारा कोई गौरव, तुम्हारी कोई गरिमा है या नहीं? तुम्हारी कोई निजता है या नहीं? तुम्हारे पास आत्मा भी है या नहीं? कोई तुम्हें बांध देता है तो बंध जाते हो और कोई तुम्हें छुड़ा देता है तो छूट जाते हो। और फिर किसी ने बांध दिया तो क्या करोगे? फिर बंध जाओगे।
मैं व्यक्ति की परम स्वतंत्रता में भरोसा करता हूं। इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि मैं तुम्हें मुक्त करा दूंगा। यह बात ही बेमानी है। हां, मैंने जिस सत्य को जाना है उसे निवेदन कर सकता हूं। लेना न लेना, स्वीकार करना न स्वीकार करना तुम्हारे हाथ है। तुम्हारी मालकियत है तुम्हारे ऊपर।
सूरज ऊगता है। तुम दरवाजा खोलो तो सूरज की किरणें तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाएं। और तुम दरवाजा बंद रखो तो क्या तुम सोचते हो सूरज धक्के देकर दरवाजे तोड़ेगा? सूरज की किरणें धक्के तो दूर, थपकी भी न देंगी तुम्हारे द्वार पर, तुम्हारे द्वार की सांकल भी न खटखटाएंगी। और इसलिए नहीं कि अस्तित्व में करुणा नहीं है।
मेरे हिसाब में तो व्यक्ति को परिपूर्ण स्वतंत्रता देना ही सबसे बड़ी करुणा है। यह अपेक्षा--कि जब तक सभी मुक्त न हो जाएंगे मैं भी मोक्ष को स्वीकार न करूंगा--जबरदस्ती मालूम होती है, करुणा नहीं। क्या दूसरों को अमुक्त रहने का अधिकार नहीं है? फिर स्वतंत्रता का अर्थ क्या है? और यह कैसा मोक्ष जो एक आदमी की जबरदस्ती से लेना ही पड़ेगा? करुणा कौन किस पर कर रहा है--बुद्ध तुम पर करुणा कर रहे हैं या तुम उन पर करुणा कर रहे हो कि चलो भई, तुम्हारे मोक्ष-प्रवेश के लिए हम भी प्रवेश किए जाते हैं, क्या करें! नहीं तो तुम प्रवेश करोगे नहीं, तुम द्वार पर ही खड़े रहोगे। थक गए होंगे बुद्ध खड़े-खड़े। करुणा कौन किस पर कर रहा है? तुम्हीं को दया आने लगेगी कि अब ठीक है, बंद करो संसार, बंद करो दुकान, बंद करो यह उपद्रव। बेचारे गौतम बुद्ध अभी तक खड़े हैं! निश्चित खड़े होंगे, क्योंकि अभी यह सारा जगत वैसा का वैसा अमुक्त है।
सच तो यह है, जितने प्राणी बुद्ध के समय थे, उससे प्राणी अब ज्यादा हैं। यह मामला तो बिगड़ता जा रहा है। बुद्ध के समय में भारत की कुल आबादी दो करोड़ थी। अगर सिर्फ भारत को ही हिसाब में लें तो अब सत्तर करोड़ आबादी है। सारी दुनिया की आबादी को अगर हिसाब में लें तो वह अब साढ़े चार अरब से ऊपर पहुंच रही है।
और बुद्ध को तो कुछ पता न था। यह पृथ्वी अकेली नहीं है। अब वैज्ञानिक कहते हैं, ऐसी कम से कम पचास हजार पृथ्वियां हैं जिन पर जीवन है। बुद्ध तो बड़ी झंझट में पड़ गए! ये पचास हजार पृथ्वियां और इन पर जीवन। और बुद्ध ने यह नहीं कहा है कि सभी मनुष्य जब तक मुक्त हो जाएंगे मैं रुकूंगा; वरन सभी जीव। इसमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं, हाथी-घोड़े, गधे भी सम्मिलित हैं, इसमें बंदर-भालू, तोते-कौवे, इसमें मक्खी-मच्छर... ।
मैं नहीं सोचता कि बुद्ध कभी भी प्रवेश कर पाएंगे। असंभव! यह कब घटना घटेगी? यह कब होगा जब कि सारा अस्तित्व मुक्त हो जाए? करुणा तुम को उन पर करनी पड़ेगी।
मगर तुम्हारी करुणा से भी कुछ होगा नहीं। मच्छर वगैरह इतने करुणावान नहीं हैं। मैं सारनाथ में बौद्ध भिक्षु जगदीश काश्यप के घर मेहमान था। सारनाथ में इतने बड़े मच्छर! मैंने कहीं देखे नहीं। धार्मिक मच्छर होंगे।
सारनाथ जैसे पवित्र स्थान पर, जैसे काशी के पंडे ऐसे सारनाथ के मच्छर! दिन

में भी मच्छरदानी के भीतर बैठना पड़े। एक मच्छरदानी में मैं बैठूं, एक में भिक्षु जगदीश काश्यप बैठें। चर्चा यूं दो मच्छरदानियों के आर-पार हो। मैंने जगदीश काश्यप को कहा कि अब मैं समझा एक राज की बात।
उन्होंने कहा, कौन सी राज की बात?
मैंने कहा, बुद्ध बयालीस वर्ष तक यात्रा किए बिहार की। कई स्थानों पर बीस बार गए, कई स्थानों पर तीस बार गए, कई स्थानों पर चालीस बार गए, सारनाथ सिर्फ एक ही बार आए। मैं सदा सोचता था कि बात क्या है। एक ही बार आए और एक ही दिन रुके। अब मैं समझ गया राज--मैंने उनसे कहा--ये मच्छर! और मैं भी अब दुबारा आने वाला नहीं हूं।
और मैं दुबारा गया भी नहीं। दिन भर मच्छरदानी में बैठना पड़े। मच्छर जिंदा बुद्ध पर दया नहीं किए, तो तुम सोचते हो मरे बुद्ध पर दया करेंगे? मच्छर फिक्र करेंगे इसकी कि यह बेचारा रुका है? वे तो कहेंगे, अच्छा ही है रुका है, और थोड़ा चूस लो। और फिर बुद्ध का रक्त भी तो मीठा होता है। कहीं से भी चखो, बुद्ध मीठे हैं।
इस तरह की कहानियां लोकमानस को भरमाने के लिए गढ़ी गई हैं। और सभी धर्मों ने गढ़ी हैं। बुद्ध के धर्म में तो यह बात बिल्कुल अप्रासंगिक है, बिल्कुल ही बुद्ध की जीवन-दृष्टि से मेल नहीं खाती।
करुणा का अर्थ एक ही हो सकता है कि जो मिला है जिसे वह निवेदन कर दे। नहीं कि थोपे। नहीं कि जबरदस्ती करे। अच्छे आदमियों के भीतर भी जबरदस्ती करने का गुण होता है, ज्यादा ही होता है। बुरा आदमी तो थोड़ा डरा होता है, थोड़ा भयभीत होता है कि यह बात बुराई की है। थोड़ा अपराध-भाव होता है। अच्छे आदमी का अहंकार तो खूब प्रगाढ़ हो जाता है। वह तो एकदम किसी की भी गर्दन पकड़ने को तैयार रहता है।
साधु-संत, तथाकथित जिनको तुम अच्छे आदमी कहते हो, ये मौका भर पा जाएं
कि तुम्हारी गर्दन दबा सकते हों तो फौरन दबाएंगे। तुम्हारी निंदा कर सकते हों तो फौरन करेंगे। तुम नारकीय हो, पापी हो, यह बताने का अवसर ये न छोड़ेंगे। क्योंकि वही बताने से इनके पुण्यात्मा होने का और स्वर्गीय होने का निर्णय होता है। ये सारे के सारे तथाकथित धर्मगुरु, तुम्हारे संत और तुम्हारे महात्मा करुणा के नाम पर गुलामी थोप रहे हैं। मगर गुलामी का उनका थोपने का ढंग सूक्ष्म है।
महात्मा गांधी के आश्रम में चाय तक पीने की मनाही थी। कभी कोई अगर चाय पीता हुआ पकड़ लिया जाता तो महात्मा गांधी अपनी आत्मशुद्धि के लिए... चाय उसने पी है! अब तुम स्वभावतः कहोगे कि महाकरुणा की बात हो गई। चाय उसने पी है; आत्मा उसकी अशुद्ध हुई। पहले तो यह सवाल कि चाय क्या आत्मा में जाती है? चमत्कार कि चाय और आत्मा में चली जाए! शरीर में जाएगी और निकल जाएगी। आत्मा तो अछूती ही रहेगी। मगर नहीं, उसकी आत्मा की शुद्धि के लिए महात्मा गांधी उपवास करेंगे।
अब यह सताने का खूब सुंदर ढंग हुआ। अब उस आदमी की तुम दशा सोचो। सारा आश्रम उसको यूं देखेगा जैसे यह कोई महापापी। सारा आश्रम उस पर टूट पड़ेगा कि तेरे कारण महात्मा गांधी को भूखे मरना पड़ रहा है। वह आदमी रोएगा, गिड़गिड़ाएगा, पैरों पर गिरेगा कि आप भोजन करें, अब कभी ऐसी भूल न करूंगा, मुझे क्षमा करें।
चाय की तो बात ही छूट गई। चाय का तो सवाल ही न उठा कि ऐसा क्या कसूर हो गया था! वह तो गौण हो गई बात। असली सवाल अब यह हो गया कि महात्मा गांधी को कैसे भोजन कराया जाए, कहीं ये मर न जाएं। अगर ये मर जाएं, तो उस चाय पीने वाले को जीवन भर के लिए यह भाव रहेगा कि मैं हिंसक हूं, कि मैंने हत्या कर दी।
यह भी खूब तरकीब हुई दूसरे आदमी को शुद्ध करने की। मगर खूब जबरदस्ती हुई। अहिंसा के नाम पर खूब हिंसा हुई। और स्वभावतः अब वह क्या दलील करे और क्या तर्क करे? दलील और तर्क का कोई सवाल न रहा। विचार-विमर्श का कोई उपाय न रहा। महात्मा गांधी मरने को तत्पर हैं। और वे यह भी नहीं कहते कि मैं तेरे लिए यह कर रहा हूं। वे कहते यह हैं कि अगर मेरे आश्रम में इस तरह के पाप हो सकते हैं तो उसका अर्थ है कि मेरी आत्मा अभी अशुद्ध है, मैं तो अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए कर रहा हूं।

उनकी आत्मा की शुद्धि के लिए वे उपवास कर रहे हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि अगर सारा आश्रम उनके अनुसार चले तो ही उनकी आत्मा शुद्ध है। उनकी आत्म-शुद्धि एक तरह का अधिकार बन गया, एक तरह की तानाशाही बन गई। मगर ये सूक्ष्म बातें हैं। परदे की ओट में कुछ और चल रहा है। यह दूसरे की आत्मा पर कब्जा करने की चेष्टा करुणा नहीं है। मैं इस तरह की करुणा में भरोसा नहीं रखता। करुणा का मेरे लिए एक ही अर्थ है, प्रेम का मेरे लिए एक ही अर्थ है कि तुम्हें स्वतंत्रता दूं; निवेदन कर दूं कि राह यह रही और फिर तुम्हें पूरी स्वतंत्रता दूं कि तुम चुनाव करो। और अगर तुम्हें प्रीतिकर लगता है बंधन में रहना, तो मैं कौन हूं जो बाधा बनूं? अगर तुम निर्णय करते हो कि मुझे बंधन में रहना ही सुखद है, तो जबरदस्ती तुम्हें छुड़वाने का क्या सवाल है? रवींद्रनाथ ठाकुर का एक गीत है, अंतिम दिनों में लिखा हुआ गीत, जिसमें उन्होंने कहा हैः हे प्रभु, मैं आवागमन से मुक्ति नहीं चाहता हूं। मैं चाहता हूं वापस-वापस मुझे भेजना। तेरा जगत बहुत प्यारा है। तेरा सूरज, तेरे चांद, तेरे तारे, तेरे फूल, तेरे इंद्रधनुष, तेरे लोग, यह पृथ्वी इतनी मनमोहक है कि मुझे कोई स्वर्ग नहीं चाहिए, मुझे कोई मोक्ष नहीं चाहिए। तू इतनी ही कृपा करना कि मुझे बार-बार यहीं भेज देना, कि मैं तेरे गीत गाऊं, कि मेरी बांसुरी पर तेरे स्वर उठाऊं।
अब बड़ी मुश्किल खड़ी होगी। बुद्ध खड़े हुए हैं मोक्ष के द्वार पर। रवींद्रनाथ कहते हैं, मुझे वापस यहीं भेजना। अब संघर्ष छिड़ेगा रवींद्रनाथ में और बुद्ध में। बुद्ध कहेंगे, मुक्त होना ही पड़ेगा! नहीं तो मैं यहां खड़ा हूं दरवाजे पर, कुछ मेरी सोचो। और तुम यह क्या प्रार्थना कर रहे हो कि वापस-वापस मुझे भेजना।
माना कि--रवींद्रनाथ ने कहा है--माना कि मैं इस योग्य नहीं कि तू मुझे बार-बार भेजे, मगर तेरी करुणा अपार है। माना कि मैं जीवन का वैसा सदुपयोग नहीं कर पाया जैसा कि मुझे करना था, मगर तेरी करुणा अपार है। भेजना। कितना ही अयोग्य होऊं, अब की बार और भी चेष्टा करूंगा कि गीत थोड़े सुंदर रचूं, कि साज और ठीक से बिठाऊं।
अंतिम दिन जिस दिन उनका देहांत हुआ, आखिरी गीत जो रवींद्रनाथ ने लिखा है, उसमें उन्होंने लिखा है कि यह भी क्या बात हुई! जब बामुश्किल मैं साज बिठा पाया था... ।
तुमने देखा न, शास्त्रीय संगीतज्ञ साज ही बिठाते हैं आधा घंटा तक। कोई तबला ठोंक रहा है, कोई सितार कस रहा है। आधा घंटे तक तो यही ठोंक-पीट चलती है।
लखनऊ के एक नवाब ने वाइसराय को निमंत्रण दिया था। स्वागत में, रात महफिल बैठी। शास्त्रीय संगीत शुरू हुआ। आधा घंटे तक तो खटखट, हथौड़ी चली तबलों पर, तार बिठाए गए। वाइसराय समझा कि यही शास्त्रीय संगीत है। सो उसने नवाब से कहा, बहुत आनंद आ रहा है, चलने दो। यही संगीत चलने दो। नवाब चौंका, मगर करे भी क्या! सो रात भर यही चला। संगीतज्ञों से कहा, आगे मत बढ़ना। साज ही बिठाओ, क्योंकि वाइसराय को बहुत जंच रहा है। और वाइसराय बड़ा आनंदित लौटा कि ऐसा शास्त्रीय संगीत... ।
रवींद्रनाथ ने अपने अंतिम गीत में कहा है कि हे प्रभु, यह कैसा तेरा ढंग! अभी तो मैं साज ही बिठा पाया था। अभी गीत गाया कहां, और विदा का क्षण आ गया! इतनी क्या जल्दी थी? थोड़ा समय और दे देता, गीत तो गा लेता, बांसुरी तो बजा लेता।
क्या तुम सोचते हो रवींद्रनाथ को जबरदस्ती मोक्ष भिजवाने की कोशिश करनी चाहिए? क्या यह करुणा होगी? क्या यह उचित होगा? अगर रवींद्रनाथ को यही प्रीतिकर है तो यही उनके लिए मोक्ष है। इनको जबरदस्ती मोक्ष में भेज देने से मोक्ष भी नरक जैसा मालूम पड़ेगा।
इस सूत्र को याद रखो कि जबरदस्ती अगर तुम्हें स्वर्ग में भी भेज दिया जाए तो स्वर्ग कारागृह हो जाएगा। और अगर तुम अपनी मौज से, अपनी स्वेच्छा से, अपने चुनाव से नरक में भी जाओ तो नरक भी स्वर्ग हो जाएगा। सवाल स्वर्ग और नरक का है ही नहीं। सवाल है स्वतंत्र चुनाव का।
इसलिए सदगुरु स्वतंत्रता सिखाता है।

तुमने कहा कि आप कहते हैं प्यासा ही कुएं के पास आता है, न कि कुआं प्यासे के पास।
यही उचित है। क्योंकि कुआं प्यासे के पास जाने लगे, प्यासे के पीछे- पीछे दौड़ने लगे, तो प्यासे को भी दया आए कि बेचारा कुआं कब से भटक रहा है! प्यासा जा रहा है दफ्तर, कुआं जा रहा है प्यासे के पीछे। प्यासा जा रहा है सब्जी खरीदने, कुआं जा रहा है प्यासे के पीछे। प्यासा अपनी पत्नी को प्रेम कर रहा है, कुआं वहीं खड़ा हुआ है। यह कुछ भलमनसाहत होगी? इसमें कुछ करुणा होगी? यह तो कुआं न हुआ, कोई पुलिसवाला हो गया।
नहीं, उचित यही है कि कुआं प्यासे के पास न जाए। हां, कुआं अपनी खबर भेज दे। कुआं इस बात की घोषणा कर दे कि यहां जल उपलब्ध है और जिसको प्यास हो वह आ जाए।
और जिसको प्यास नहीं है अभी, वह क्यों आए? क्या कारण है उसके आने का?
और जो अभी स्वप्न के जल से ही तृप्त है, उसको भी आने की कोई जरूरत नहीं। सच तो यह है, किसी को किसी के स्वप्न को तोड़ने का भी अधिकार नहीं है। मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता को परम मानता हूं। तुम अच्छा प्यारा सपना देख रहे हो, मैं कौन हूं जो तुम्हारे सपने को तोड़ दूं? मेरा क्या हक है? मैं तुम्हें झकझोर दूं और तुम्हारे सपने को तोड़ दूं, इससे सिर्फ तुम मुझ पर नाराज होओगे। और तुम फिर वापस अपने सपने में गिर जाओगे।
जबरदस्ती नहीं की जा सकती। धर्म कोई जबरदस्ती नहीं है। मगर धर्म के नाम पर बहुत जबरदस्ती चली है। और उन सबने यही सोचा है कि करुणा की जा रही है।
मोहम्मद तलवार लेकर चलते थे। मोहम्मद की तलवार पर एक वचन लिखा हुआ था
कि शांति ही मेरा धर्म है। यह गजब का मामला हुआ! तलवार पर लिखा हुआ हैः शांति मेरा धर्म है। इसलाम शब्द का अर्थ शांति होता है। मगर जितनी अशांति इसलाम से दुनिया में फैली, शायद किसी धर्म से नहीं फैली।
मगर ख्याल रखना तुम, तुम्हारी जो करुणा की धारणा है, प्रेम प्रमोद, वही धारणा इसलाम की है। इसलाम की मान्यता है कि जो मुसलमान नहीं है वह कभी भी स्वर्ग में प्रवेश न पा सकेगा। तो हर एक को मुसलमान बनाना ही है-- करुणावश। फिर चाहे तलवार ही क्यों न उठानी पड़े। चाहे जोर-जबरदस्ती ही क्यों न करनी पड़े। हर हाल आदमी को स्वर्ग भेजना है। आज दुनिया में तुम्हें जितने मुसलमान दिखाई पड़ते हैं। इनमें से अधिकतम जबरदस्ती मुसलमान बनाए गए हैं।
ईसाइयों की धारणा है कि जो ईसाई नहीं हैं, अंतिम निर्णय के दिन जीसस परमात्मा के साथ खड़े होंगे और अपनी भेड़ों को छांट कर अलग कर लेंगे। वे अपनी भेड़ें छांट लेंगे कि ये हैं ईसाई। और जो ईसाई नहीं हैं वे नरक में गिरेंगे। स्वभावतः, ईसाई करुणावश सभी को ईसाई बनाने की कोशिश में लगे हैं। फिर जैसे भी हो, येन केन प्रकारेण, तलवार के जमाने तो चले गए, अब तलवार उठाना बेहूदा मालूम होगा, असभ्य मालूम होगा, लेकिन अब दूसरे ढंग उपयोग में लाए जाते हैं। भूखे, दीन-हीन, गरीब लोगों को रोटी दो, दवा दो, अस्पताल खोलो, स्कूल बनाओ, अनाथालय चलाओ, विधवा आश्रम बनाओ। यह प्रलोभन, यह रिश्वत उनके ईसाई हो जाने के लिए। क्योंकि बिना ईसाई हुए उनका कोई भविष्य नहीं है। और इस सबके पीछे धारणा यही है कि करुणावश यह महान कार्य किया जा रहा है। हमें यह करुणा की धारणा तोड़नी पड़ेगी, क्योंकि इस धारणा ने पूरी मनुष्य-जाति को लहूलुहान कर दिया है। पिछले पांच हजार सालों का इतिहास इस बात का गवाह है कि धर्म के नाम पर जितनी हत्याएं हुईं, जितने बलात्कार हुए, जितने लोग जलाए गए जिंदा, उतने किसी और चीज के नाम पर नहीं। धर्म के नाम पर भारी कलंक है। धर्म मनुष्य के लिए वरदान सिद्ध नहीं हुआ, अभिशाप सिद्ध हुआ है। कारण क्या था?
कारण यही था कि प्रत्येक व्यक्ति की चेष्टा यही थी कि मेरी जो धारणा
है स्वर्ग की, मेरी जो अवधारणा है स्वर्ग पहुंचने की, सभी को उसी मार्ग पर ले आऊं, क्योंकि यही सच्चा रास्ता है, और सब रास्ते गलत हैं। स्वभावतः अगर और सब रास्ते गलत हैं तो सच्चे रास्ते पर लाना करुणा की बात है। यह सब करुणा के नाम पर हुआ है।

इसलिए, प्रेम प्रमोद, मैं करुणा की धारणा को ही बदलना चाहता हूं। नहीं
तो यह मूर्खता जारी रहेगी; यह पाप जारी रहेगा; यह धर्म के नाम पर अधर्म जारी रहेगा। मेरी करुणा की धारणा स्वतंत्रता की है। तुम स्वतंत्र हो। मैं अपनी बात कहने को स्वतंत्र हूं, लेकिन मानो या न मानो यह तुम्हारी स्वतंत्रता है। मेरी मौज कि मैंने कहा। तुम्हारी मौज कि तुमने माना या न माना। जिसने माना उससे मैं प्रसन्न हूं; जिसने नहीं माना उससे मैं प्रसन्न हूं। मैं दोनों की स्वतंत्रता का समादर करता हूं। ऐसा नहीं कि जिसने माना उससे मैं ज्यादा प्रसन्न हूं और जिसने नहीं माना उससे थोड़ा कम प्रसन्न हूं। उतना भी फर्क अगर मैंने किया तो मैंने तुम्हारी स्वतंत्रता को समादर नहीं दिया; मैंने तुम्हारी निजता को गौरव नहीं दिया। यह मेरी मौज थी कि मैंने कहा। यह तुम्हारी मौज थी कि तुमने सुना। यह तुम्हारी मौज कि तुमने माना या नहीं माना। मेरी कोई अपेक्षा नहीं। और मेरा कोई दावा नहीं। कृष्ण का दावा है कि जब-जब पृथ्वी पर धर्म का ह्नास होगा, धर्म की ग्लानि होगी, तब-तब मैं आऊंगा और लोगों को अधर्म से मुक्त करूंगा और धर्म की दिशा में लगाऊंगा।
इस तरह की दावेदारी व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा है। इस तरह की दावेदारी अलोकतांत्रिक है। और फिर मजा यह है कि इस दावे को पूरा भी तो नहीं कर पाए। जब आए थे तब कौन सा लोगों को अधर्म से मुक्त करवा दिया? और अगर कृष्ण लोगों को अधर्म से मुक्त करवा चुके थे, तो फिर कृष्ण के बाद दुनिया में अधर्म होना नहीं चाहिए था। अधर्म बढ़ा, घटा नहीं। सच तो यह है, कृष्ण के कारण बढ़ा, घटा नहीं। अर्जुन ही ज्यादा धार्मिक आदमी मालूम पड़ता है, ज्यादा संवेदनशील। देखा उसने कि इतने लोगों को काट डालना... और कितने लोग थे तुम सोचो! अठारह अक्षौहिणी सेनाएं इकट्ठी थीं। इसको ठीक आज के हिसाब में अनुवादित करो तो सवा अरब लोग इकट्ठे थे। सोचने जैसा था कि इस छोटे से राज्य के लिए, धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए क्या एक अरब, सवा अरब लोगों की हत्या का आयोजन उचित है?
अर्जुन को कुछ थोड़ी सदबुद्धि उठी थी, थोड़ा सदभाव उठा था। उसके हाथ से गांडीव छूट गया था। वह निढाल होकर अपने रथ में बैठ गया। और उसने कहा कि यह युद्ध करने जैसा नहीं मालूम होता। क्या करूंगा यह युद्ध करके? इतने लोगों को मार कर? और ये सब अपने ही लोग। सभी अपने भाई-बंधु, अपने मित्र। क्योंकि झगड़ा ही भाइयों के बीच था, तो सभी संबंधी बंट गए थे। खुद कृष्ण अर्जुन की तरफ थे और कृष्ण की फौजें कौरवों की तरफ थीं। कोई भाई इस तरफ था, कोई भतीजा उस तरफ था। कोई चाचा उस तरफ थे, कोई दादा इस तरफ थे। अपना ही परिवार था, वह बंटा हुआ था। और अपने ही मित्र थे, वे बंटे हुए थे। भीष्म पितामह, जिनके प्रति अर्जुन को उतना ही समादर था जितना किसी और को, वे उस तरफ थे, दुश्मनों की भीड़ में खड़े थे। कृष्ण इस तरफ थे। अर्जुन को सीधी बात दिखाई पड़ी कि यह अपने ही लोगों को मारना है। इतनी महान हिंसा करना, परिणाम क्या है? यही कि कुछ दिन सिंहासन पर बैठेंगे, फिर मर जाना है। यह चार दिन की चांदनी के लिए इतने लोगों की जिंदगी से खिलवाड़, उचित नहीं मालूम होता। कृष्ण ने लेकिन समझा-बुझा कर, हर उपाय करके, हर तरह के गलत और सही तर्क देकर... पूरी गीता इस बात का सबूत है--सिर्फ एक बात का सबूत--कि कृष्ण तर्क की दृष्टि से अर्जुन से ज्यादा कुशल थे, और किसी बात का सबूत नहीं है।
मगर तर्क की कुशलता कोई कुशलता नहीं है। तर्क से तो कुछ भी सिद्ध किया
जा सकता है। तर्क तो वेश्या है, किसी के भी साथ हो ले। तर्क तो वकील है। तुम वकील के पास जाओ, कैसा ही मुकदमा हो, वह तुमसे कहेगाः बेफिक्र रहो, तुम जीतोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन एक वकील के पास गया। उसने अपनी पूरी कहानी बताई। वकील ने कहा, बेफिक्र रहो! हालांकि तुमने काम बहुत बुरा किया है, लेकिन तुम बच जाओगे। कोई कानून तुम्हें फंसा नहीं सकता। तुम सुनिश्चित छूट जाओगे।
इसका मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं।
मुल्ला उठ कर खड़ा हो गया। चलने लगा तो वकील ने पूछा, कहां जाते हो? मुकदमे की तैयारी नहीं करनी?

मुल्ला ने कहा, अब क्या फायदा! क्योंकि मैंने कहानी अपने विपरीत आदमी
की सुनाई थी। अगर उसकी जीत निश्चित ही है तो नाहक तुम्हें फीस देने से क्या फायदा?
मुल्ला भी होशियार आदमी है।
कृष्ण ने सब तरह के तर्क-जाल से अर्जुन को युद्ध में उतार दिया और यह समझाया कि इससे धर्म की रक्षा होगी। हत्या हुई धर्म की, रक्षा कहां हुई? सवा अरब आदमी मरे। लाशों से पट गया देश। और धर्म का कौन सा अभिनव रूप प्रकट हुआ? कौन सी क्रांति हो गई? न तब हो सकी, लेकिन फिर भी हिंदू हैं कि अभी भी विश्वास किए हैं कि आएंगे कृष्ण। संभवामि युगे युगे। आएंगे और बचाएंगे। यही धारणाएं औरों की हैं, यही दावे औरों के हैं।
जीसस का दावा है कि वे दुनिया को पाप से मुक्त कराने के लिए आए हैं। और ईसाई मानते हैं कि यह दावा सच है। मगर दुनिया पाप से मुक्त कहां हुई? दावा सच है तो दुनिया पाप से मुक्त हो जानी चाहिए। किसको पाप से मुक्त करवा पाए? पाप अपनी जगह है। जीसस को सूली लग गई, पाप को सूली नहीं लगी। पाप तो सिंहासन पर बैठा है; अब भी बैठा है, तब भी बैठा था। दावेदारी की बात ही गलत है।
मैं कोई दावा नहीं करता कि मैं तुम्हें मुक्त कराऊं, कि मैं तुम्हें स्वर्ग ले चलूं, कि मैं तुम्हें मोक्ष की गारंटी दे दूं। नहीं, मेरा कोई दावा नहीं। मेरी तो सिर्फ इतनी उदघोषणा है कि मैंने जीवन को आनंद से जीने का सूत्र पा लिया है, उस सूत्र को तुम्हें निवेदन कर देता हूं। और मैं तुम्हारे पीछे नहीं आऊंगा। जिसको प्यास हो उसी को आना पड़ेगा। और जिसको प्यास नहीं है, तो ऐसी जल्दी भी क्या है? जब प्यास होगी तब आएगा। मैं नहीं तो किसी और के पास आएगा। कोई मैंने ही थोड़े ठेका लिया है। मैं नहीं रहूंगा तो कोई और रहेगा। बुद्धों कीशृंखला तो जारी रहेगी।
तुम कहते होः "क्या आपका आनंद का झरना सब जगह बहता हुआ उनकी प्यास को जगा कर उन्हें तृप्त नहीं कर देगा?"
आनंद सूर्य की किरणों की भांति है। द्वार पर दस्तक भी नहीं देता। सिर्फ प्रतीक्षा करता है, आहट भी नहीं करता--किसी की नींद टूट जाए, किसी के सपने में भंग पड़ जाए। आनंद जबरदस्ती किसी के घर में प्रवेश नहीं करता। और जिसको प्यास नहीं है, तो क्या जरूरत है कि जबरदस्ती उसको प्यास का बोध करवाया जाए? और क्या तुम सोचते हो कभी कोई भी आज तक पूरी पृथ्वी पर किसी में प्यास जगाने में समर्थ हो सका है? यह तो जीवन का अनुभव ही क्रमशः व्यक्ति को उस जगह ले आता है जहां प्यास पैदा होती है--देर-अबेर, कोई आज, कोई कल। मगर अनंत काल पड़ा है, जल्दी भी क्या है? ऐसी घबड़ाहट क्या है? मुझे कोई जल्दी नहीं है।
तुम कहते होः "भगवान बुद्ध की परम करुणा की अभिव्यक्ति थी कि जब तक संसार के समस्त जीव निर्वाण प्राप्त नहीं कर लेते हैं, वे भी निर्वाण में प्रवेश नहीं करेंगे।"
यह तो शर्तबंदी हो गई। यह तो एक शर्त हो गई कि यह शर्त जब पूरी होगी तब मैं निर्वाण में प्रवेश करूंगा। और शर्तें काम नहीं आतीं। शर्तें छोड़ दे कोई तो ही तो निर्वाण उपलब्ध होता है। निर्वाण का अर्थ ही यह है कि अब मेरे जीवन पर कोई शर्त नहीं है, कोई अपेक्षा नहीं है; ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए--ऐसा मेरा कोई आग्रह नहीं है। निराग्रह व्यक्ति ही तो निर्वाण को उपलब्ध होता है।
अगर बुद्ध की यह शर्त थी, तो तुम गलती में हो, अगर यह उनकी शर्त थी तो
वे चाहें तो भी निर्वाण में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। यूं नहीं है कि वे निर्वाण के द्वार पर रुके हुए हैं अपनी शर्त के कारण कि जब तक सभी प्रवेश न कर लेंगे, मैं प्रवेश नहीं करूंगा। अगर यह शर्त है तो वे प्रवेश भी करना चाहें तो द्वार बंद है, प्रवेश नहीं हो सकता। शर्त ही द्वार बंद कर देती है। फिर शर्त चाहे कितनी ही सुंदर क्यों न हो, शर्त आखिर शर्त है। अस्तित्व के साथ सौदा नहीं किया जा सकता। अस्तित्व के साथ बेशर्त ही हुआ जा सकता है। सारी शर्तों का गिर जाना ही निर्वाण है।
यह भी तो वासना ही हुई न! यह भी तो आकांक्षा ही हुई न!

थोड़ा समझने की कोशिश करो! यह करुणा नहीं है, वासना है। वासना का अर्थ यही होता हैः ऐसा होना चाहिए; अगर ऐसा होगा तो मैं सुखी; अगर ऐसा नहीं होगा तो मैं दुखी; इतना धन मिले तो मैं सुखी; इतना पद मिले तो मैं सुखी। हम समझ लेते हैं कि यह वासना है। लेकिन कोई आदमी अगर निर्वाण के द्वार पर भी इस तरह का दावा करे कि ऐसा हो--और छोटी-मोटी शर्त भी नहीं, ऐसी शर्त कि सारे प्राणी, अनंत प्राणी हैं, इन अनंत प्राणियों की मुक्ति पर ही मैं प्रवेश करूंगा--यह शर्त ही काफी है। अगर बुद्ध ने ऐसा किया होगा तो वे किसी और द्वार पर खड़े हैं, वह द्वार निर्वाण का नहीं है। वे भ्रांति में हैं। निर्वाण का द्वार तो खुलता ही तब है जब तुम्हारे जीवन में कोई वासना नहीं रह जाती। यह भी वासना है। दूसरे को मुक्त करने की वासना भी वासना है। आनंद को उपलब्ध व्यक्ति अपना गीत गाता है, अपनी धुन में मस्त होता है। जरूर उसके पास एक महफिल इकट्ठी हो जाती है। जरूर उसके पास दीवाने आ जाते हैं। जरूर उसके पास एक मधुशाला खड़ी हो जाती है। मगर यह सब सहज होता है। इसकी कोई शर्त नहीं। ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं। ऐसा हो जाता है। जरूर बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के पास बहुत से लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हैं। मगर बुद्ध उन्हें बुद्धत्व को उपलब्ध करवा नहीं देते। वे खुद ही अपनी प्यास से बुद्धत्व के जल को पीते हैं; खुद अपनी प्यास से, अपने हृदय को पात्र बनाते हैं। खुद अपने बुझे हुए दीये को बुद्ध के दीये के पास लाते हैं; ताकि ज्योति से ज्योति जल उठे।
अगर तुम मेरी बात समझना चाहते हो, प्रेम प्रमोद, तो मैं तुमसे कहना चाहूंगा कि बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति कुछ भी नहीं करता। बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया व्यक्ति पर्याप्त है; उसकी मौजूदगी में चीजें घटती हैं; वह कुछ करता नहीं। जैसे वसंत आता है और फूल खिल जाते हैं; यूं नहीं है कि एक-एक फूल को और पंखुरी-पंखुरी को खींच-खींच कर खोलना पड़ता है। सुबह होती है और पक्षी गीत गाने लगते हैं; यूं नहीं है कि सूरज आकर एक-एक पक्षी के गले को दबाता है कि गा, सुबह हो गई! यह स्वाभाविक घटता है।
लेकिन सभी फूल नहीं खिलते। कुछ फूल रात को खिलते हैं। और सभी पक्षी नहीं गाते। उल्लू भी हैं, उल्लू के पट्ठे भी हैं; वे सूरज को देखते ही से आंख बंद कर लेते हैं। मगर यह उनकी स्वतंत्रता है। अब जबरदस्ती उल्लुओं की आंखें खोलो तो नाराज ही होंगे। यह उनकी मौज! उनको रात में ही मजा आता है, तो कोई हर्ज नहीं। जिसको जैसे मजा आता है।
मेरे मन में किसी की निंदा नहीं--किसी की भी! अगर किसी को शराब पीने में मजा आ रहा है, तो भी मेरे मन में उसकी कोई निंदा नहीं। यह उसकी स्वतंत्रता है। जरूर निवेदन कर दूंगा कि तू व्यर्थ की शराब में उलझा है, और भी बेहतर शराब है! भीतर की भी शराब है, जो अंगूरों से नहीं ढलती, आत्मा से ढलती है। मगर फिर तेरी मौज। तुझे अगर अंगूर से ढली शराब में ही रस आ रहा है, तो तू अधिकारी है अपने रास्ते पर जाने का। जबरदस्ती खींच कर तुझे भीतर की शराब पिलाने का आयोजन नहीं किया जा सकता। जबरदस्ती मेरे जीवन-दृष्टिकोण में कहीं आती नहीं।
इसलिए मुझसे अक्सर लोग पूछते हैं कि आप अपने संन्यासियों को कोई अनुशासन क्यों नहीं देते?
अनुशासन मैं नहीं दे सकता हूं। महावीर ने दिया; इसलिए महावीर को जैन कहते हैं अनुशास्ता। और जैन धर्म को कहते हैं जैन शासन। यह राजनीति की भाषा है। बुद्ध ने दिया। मगर अब तुम बुद्ध का अनुशासन पढ़ने बैठो तो घबड़ा जाओगे। तैंतीस हजार नियम, जिनको याद रखना भी मुश्किल, पालने की तो बात छोड़ दो। हर छोटी-छोटी बात के नियम। कैसे उठना, कैसे बैठना, कौन सा पैर किस पैर के ऊपर रख कर बैठना, कौन से हाथ पर कौन सा हाथ होना--हर छोटी-छोटी बात के नियम, तैंतीस हजार नियम--क्या खाना, क्या नहीं खाना; कब खाना, कब नहीं खाना; कब पीना, कब नहीं पीना; कब यात्रा करनी, कब नहीं यात्रा करनी। तैंतीस हजार नियमों में बंधा हुआ आदमी मोक्ष को उपलब्ध हो सकेगा? तैंतीस हजार जंजीरों में बंधा हुआ आदमी है यह। जंजीरें ही जंजीरें हैं, आदमी तो वह न मालूम कहां खो जाएगा!

और फिर, बुद्ध को क्या अधिकार है? किसी को क्या अधिकार है कि दूसरे के जीवन पर नियमन करे, शासन करे? और प्रत्येक व्यक्ति इतना अनूठा और भिन्न है कि कोई भी सार्वलौकिक नियम बनाए नहीं जा सकते।
जैसे कि हिंदू मानते हैं ब्रह्ममुहूर्त में उठना बड़ा धार्मिक कार्य है; जो ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठता वह न तो साधु है, न संत है; साधु-संतों को तो ब्रह्ममुहूर्त में उठना ही चाहिए।
यह नियम कैसे बना? क्यों बना?
हिंदू व्यवस्था यह थी कि पच्चीस वर्ष तक व्यक्ति ब्रह्मचर्य वास करे, गुरुकुल में रहे, विद्या-अध्ययन करे। वह ब्रह्मचर्य का काल था। फिर पच्चीस वर्ष गृहस्थी बसाए, बाल-बच्चे पैदा करे, दुकान चलाए, संसार में रहे। वह गृहस्थाश्रम था। पहला ब्रह्मचर्य आश्रम, दूसरा गृहस्थ आश्रम। फिर पच्चीस वर्ष, तीसरे चरण में, वानप्रस्थ हो जाए। वानप्रस्थ का अर्थ होता हैः मुंह जंगल की तरफ हो जाए। जंगल अभी जाए नहीं, सिर्फ टाइम-टेबल देखे, नक्शा अध्ययन करे, तैयारी करे, बिस्तर बांधे, मगर जाए नहीं। पच्चीस साल बिस्तर बांधे और खोले, नक्शा खोले और बंद करे, तैयारी करे, अभ्यास करे, तब वह हो जाएगा पचहत्तर वर्ष का, तब जाकर वह संन्यासी हो। वह चौथा आश्रम। ये पचहत्तर साल के बाद जो लोग संन्यासी हुए, साधु हुए, संत हुए, ऋषि-मुनि हुए, ये कहते हैं ब्रह्ममुहूर्त में उठ आना चाहिए।
असल में बूढ़ों को नींद नहीं आती। पचहत्तर साल के बाद ब्रह्ममुहूर्त में तुम सोना भी चाहो तो नहीं सो सकते। बूढ़ों ने नियम बनाया, बूढ़ों को नींद ही आती है कम। यह स्वाभाविक है। मां के पेट में बच्चा चौबीस घंटे सोता है, क्योंकि नौ महीने में जितना काम होता है बच्चे के जीवन में उतना फिर पूरे जीवन में नहीं होता। नौ महीने में इतना काम चलता है कि अगर बच्चा जाग जाए तो काम में बाधा पड़ जाए। सारी ऊर्जा उसकी देह के निर्माण में लगी होती है। अभी जागने लायक न तो समय है, न सुविधा है। बच्चा सोया रहता है। नौ महीने मां के पेट में बच्चा सोता है।
फिर जब बच्चा पैदा होता है तो तेईस घंटे सोता है, बाईस घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है, अठारह घंटे सोता है। धीरे-धीरे-धीरे जवान होते-होते करीब सात-आठ घंटे सोता है। क्योंकि अब जीवन का जो कार्य था, शरीर के निर्माण का जो कार्य था, वह पूर्ण हो चुका, अब ज्यादा नींद की जरूरत नहीं है। नींद बड़ी अपरिहार्य है। नींद जीवन के लिए बहुत जरूरी है। जवान आदमी को सात-आठ घंटे पर्याप्त है, ताकि जितनी थकान, जो ऊर्जा काम में व्यय हुई है, वह सात-आठ घंटे में वापस लौट आती है। लेकिन बूढ़ा आदमी चार घंटे, तीन घंटे, दो घंटे, यूं सोने लगता है। क्योंकि बूढ़े आदमी को अब मरना है। अब शरीर में निर्माण का काम बंद हो चुका। अब नींद की ज्यादा जरूरत न रही।
पचहत्तर साल की उम्र के बाद जिन लोगों ने शास्त्र रचे हैं, इनकी बातें अगर जवानों को माननी पड़ें तो झंझट खड़ी होगी। अगर कोई जवान आदमी दो-तीन घंटे सोए और ब्रह्ममुहूर्त में उठ आए, तो दिन भर झपकी खाएगा। फिर वह इन्हीं बूढ़ों से जाकर पूछेगा कि बात क्या है? तो वे कहेंगे कि तुम्हारी वृत्ति तामसिक है, इसलिए झपकी आती है। हमको क्यों नहीं आती? तो तुम अपना भोजन बदलो। तुम्हारा भोजन तामसिक है। तो शुद्ध भोजन क्या है? शुद्ध भोजन है दूध, दुग्धाहार करो।
अब सिर्फ आदमी अकेला जानवर है दुनिया में जो बचपन के बाद भी दूध पीता है। सभी जानवर बचपन में दूध पीते हैं, सदा दुग्धाहार नहीं करते। आदमी अजीब है! दुग्धाहार बच्चों के लिए ठीक है, क्योंकि वे केवल दूध ही पचा सकते हैं। लेकिन जवान आदमी से कहना कि सिर्फ दूध पर जीओ, दूध पर जीएगा तो सदा भूखा अनुभव करेगा। बच्चे का भोजन जवान आदमी के काम का नहीं है। फिर वहीं पहुंचेगा, उन्हीं ऋषि-मुनियों से पूछने, क्योंकि उन्हीं ने सिलसिला शुरू करवा दिया। तो वे और तरकीबें बताएंगे उसको कि सिर के बल खड़े होओ, आसन-व्यायाम करो। मतलब यह कि वह जाल में उलझता जाएगा--एक छोटी सी भूल के कारण। भूल सिर्फ इतनी थी कि जो नियम बूढ़ों ने बनाए हैं, वे जवानों के काम के नहीं हैं।
फिर प्रत्येक व्यक्ति में भी अंतर है। किसी को छह घंटे नींद काफी है, किसी को आठ घंटे नींद और किसी को दस घंटे की जरूरत है। और प्रत्येक को अपनी

ही व्यवस्था को समझ कर जीना चाहिए। इसलिए मैं कोई सार्वलौकिक नियम नहीं दे सकता, कि मैं तुमसे कह दूं कि ठीक छह घंटे सोना चाहिए। बूढ़े दिक्कत में पड़ जाएंगे, क्योंकि वे छह घंटे नहीं सो सकते। जवान दिक्कत में पड़ जाएंगे, क्योंकि उनको आठ घंटे की नींद की जरूरत है। बच्चे मुसीबत में पड़ जाएंगे, क्योंकि उनको दस-बारह घंटे की नींद की जरूरत है। और अगर गर्भस्थ बच्चों को पता चल जाए कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना है, तो वे पागल ही पैदा होंगे। और वे पागल पैदा होंगे ही होंगे, उनकी मां भी पागल हो जाएगी। क्योंकि ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर वे करेंगे क्या? कहीं भजन-कीर्तन शुरू कर दिया गर्भ में, या आसन-व्यायाम इत्यादि करने लगे, तो मां पगला जाएगी।
प्रत्येक व्यक्ति को अपने बोध से जीना चाहिए। तो मैं, सिर्फ बोध कैसे पैदा हो, इसकी प्रक्रिया तुम्हें देता हूं। फिर जीवन का अनुशासन तुम्हें तय करना है। तुम्हारा जीवन है, तुम नियंता हो। कोई और नियंता नहीं।
लेकिन ये सारे धर्मगुरु इस चेष्टा में लगे रहते हैं--किस तरह तुम्हारे पर कब्जा करें! हर तरह से तुम्हारी गर्दन पर फंदा डाल देने की आकांक्षा! यह कोई अच्छी आकांक्षा नहीं है। यह करुणा नहीं है। यह करुणा से ठीक उलटी बात है।
और अंततः, प्रेम प्रमोद, तुम कहते होः "आप जैसा सामर्थ्यवान बुद्ध पुरुष विश्व में न कभी पैदा हुआ है और न कभी हो सकेगा।"
यह तुम्हें कैसे पता लगा? तुम्हारा मुझसे प्रेम है, यह और बात। प्रेम में इस तरह की बातें सूझती हैं। किसी स्त्री से प्रेम हो जाए तो लोग कहते हैं कि तुझसे ज्यादा सुंदर न कभी कोई स्त्री थी, न कभी होगी। अरे क्लिओपैट्रा भी कुछ न थी! लैला भी कुछ न थी! हीर भी कुछ न थी! तू तो क्लिओपैट्रा और लैला और हीर, सबकी मिली-जुली खीर है! और तेरे जैसी स्त्री अब कभी पैदा नहीं होगी।
यह पागलपन प्रेम में पकड़ता है। बुद्ध को प्रेम करने वाले यही कहते हैं कि ऐसा बुद्ध पुरुष कभी नहीं हुआ और कभी नहीं होगा। महावीर को मानने वाले भी यही कहते हैं। और मोहम्मद को मानने वाले भी यही कहते हैं। और जीसस को मानने वाले भी यही कहते हैं। यह पागलपन है। जहां तक प्रेम का और कविता का सवाल है, क्षम्य है, मगर इस तरह की घोषणाएं नहीं करनी हैं।
इस तरह की घोषणाओं के कारण मनुष्य-जाति की बहुत हानि हुई है। कोई कारण नहीं है। जब भी कोई जागता है तो जागने का स्वाद एक जैसा है। वह चाहे पांच हजार साल पहले जागा हो, चाहे आज जागे; चाहे इस देह में जागा हो, चाहे किसी और देह में जागा हो या पांच हजार साल बाद किसी देह में जागे, जागरण का स्वाद एक है, जागरण की अनुभूति एक है।
मगर प्रेम प्रमोद, मैं समझता हूं, तुम्हारा मुझसे प्रेम है। मेरे संन्यासियों का मुझसे प्रेम है। लेकिन मैं तुम्हें आगाह करता हूं कि यह भूल बार-बार हुई है, मेरे साथ नहीं होनी चाहिए। अगर ईसाइयों से कहो कि बुद्ध जीसस से महान, झगड़ा खड़ा हो जाए! जैनों से कहो कि बुद्ध महावीर से महान, झगड़ा खड़ा हो जाए! यह झगड़ा आगे खड़ा नहीं होना चाहिए। यह तुम्हारे प्रेम का प्रतीक है, मगर ये प्रेम के प्रतीक मंहगे साबित हुए हैं।
इसलिए मेरे संबंध में तुम स्पष्ट समझ लो। मेरे जैसे लोग बहुत हुए हैं
और बहुत होंगे। असल में बहुत होने चाहिए। इतने होने चाहिए कि पृथ्वी इस तरह के लोगों से ही भर जाए। मैं तो चाहूंगा कि ऐसी घड़ी आनी चाहिए जब हमें बुद्ध पुरुषों को अलग से गिनती करने की जरूरत न रह जाए। आखिर हम क्यों गिनते हैं अंगुलियों पर--बुद्ध, महावीर, कृष्ण, जरथुस्त्र, लाओत्सु--क्यों अंगुलियों पर गिनते हैं? इसीलिए कि बहुत न्यून संख्या में लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं। यह बात बदलनी चाहिए।
किसी बगीचे में हजारों पौधे हों और एक पौधे पर फूल खिल जाए--एक फूल--तो स्वभावतः नजर उस पर अटक जाएगी। हम सदियों तक याद रखेंगे। मगर यह कोई शोभा की बात नहीं है। हर पौधे पर फूल होने चाहिए। और एक ही क्यों, हजारों होने चाहिए। स्वभावतः फिर हमें कृष्ण और बुद्ध और मोहम्मद और जीसस को अलग-अलग गिनने की कोई जरूरत न रह जाएगी। बुद्धत्व जीवन की सामान्य सहज स्थिति होनी चाहिए। वक्त ऐसा आना चाहिए कि बुद्धुओं की गिनती अलग की जा सके, कि फलां-फलां बुद्धू हैं, और बुद्धों की गिनती की कोई जरूरत न रह जाए। बात कुछ

बदलनी चाहिए। और यह बदलाहट तभी हो सकती है जब हम बहुत सजग हों; अन्यथा प्रेम हमें मूर्च्छित कर देता है।
सामवेद का एक प्यारा वचन है--
यो जागार तमृचः कामयन्ते।
यो जागार तमु सामानि यन्ते।
"जो जागता है, उसी को ऋचाएं चाहती हैं। जो जागता है, सामवेद के मंत्र
भी उसी के पास आते हैं।"
जहां जागरण है वहां वेद अपने आप प्रकट होने लगते हैं। जहां जागरण है वहां शब्द-शब्द ऋचा हो जाता है। जहां जागरण है वहां जो बोलो वही अमृत है। वहां मौन भी अमृत है। न बोलो, सन्नाटा हो, तो भी अमृत है। बोलना भी ऋचा है, न बोलना भी ऋचा है। जहां जागरण है वहां जीवन की सारी संपदा है।
और जागरण का कोई संबंध समय से नहीं है, किसी काल से नहीं है। लेकिन सारे धर्मों ने इस बात की कोशिश की है, जैसे ईसाई कहते हैं कि जीसस ईश्वर के इकलौते बेटे हैं। क्यों इकलौते? डर है कि कहीं दूसरा आदमी न कह दे कि हम भी ईश्वर के बेटे हैं! कोई यह भी कह सकता है कि हम जुड़वां हैं। कोई यह भी कह सकता है कि हम जीसस के बड़े भाई हैं। फिर क्या करोगे? पहले ही से तय कर दिया--इकलौते। झंझट ही मिटा दी। घबड़ाहट है कि कहीं और कोई व्यक्ति जीसस की गरिमा का, जीसस के साथ तौला न जाने लगे। अन्यथा हमारे ईसाई धर्म का क्या होगा! वह उसी आधार पर तो खड़ा है कि जीसस का मुकाबला कोई और दूसरा नहीं कर सकता।
जैन कहते हैं, महावीर अंतिम तीर्थंकर हैं, अब कोई तीर्थंकर नहीं होगा। दरवाजा बंद। यह भी खूब रही! अब अनंत काल कोई जागेगा नहीं।
यह दरवाजा बंद करने की चेष्टा सभी धर्मों में है।
सिक्ख कहते हैं, दसवें गुरु हो चुके। दस यानी बस। अब गुरुग्रंथ साहिब पढ़ो। अब कोई सदगुरु नहीं हो सकता। या कोई अगर सदगुरु होने की बात करेगा तो ठीक नहीं, कृपाणें निकल आएंगी। अब यह हो ही नहीं सकता, दरवाजा बंद कर दिया। बौद्धों की भी यही धारणा है। सारे धर्मों की यही धारणा है। मोहम्मद-- मुसलमान कहते हैं--आखिरी पैगंबर हैं। अब कोई और पैगाम परमात्मा की तरफ से नहीं आएगा। आखिरी संशोधित संस्करण आ चुका कुरान का। अब इसमें कोई तरमीम, कोई संशोधन आवश्यक नहीं है। पहले जो किताबें आई थीं, उनमें कुछ भूल-चूकें थीं। पहले जो किताबें आई थीं, वे कुछ अधूरी थीं। कुरान में सब पूरा हो गया। कुरान पूर्ण है। और हजरत मोहम्मद आखिरी पैगंबर हैं।
यह क्या आग्रह है? मनुष्य-जाति जीएगी, क्यों उसे तुम यह आभास दे रहे
हो कि अब अंधेरा ही अंधेरा रहेगा? सच तो यह है कि अब और ज्यादा बुद्ध पुरुष होंगे, और ज्यादा पैगंबर होंगे, और ज्यादा जीसस की हैसियत के लोग होंगे।
क्योंकि आदमी विकासमान है। आदमी ज्यादा प्रतिभाशाली होता जा रहा है। आदमी के जीवन में निखार आ रहा है। आदमी की प्रतिभा और मेधा नयी-नयी ज्योतियों से जगमगा रही है।
गंगोत्री से गंगा निकलती है, तब पतली धार होती है। गऊमुख से गिरती है, इतनी पतली होती है। फिर बढ़ती जाती है, बड़ी होती जाती है। यूं ही मनुष्य की चेतना है। कुछ लोग उसे गंगोत्री पर ही रोक देना चाहते हैं। मनुष्य की चेतना बढ़ती जाती है, गंगोत्री से गंगासागर तक पहुंचना है। और यह रोज धारा बड़ी हो रही है।
इसलिए मेरे संन्यासी इसे सदा स्मरण रखें कि मैं कोई आखिरी पैगंबर नहीं हूं, न ही कोई आखिरी तीर्थंकर हूं, न ही कोई आखिरी अवतार हूं, न ही कोई आखिरी बुद्ध हूं। न आखिरी हूं, न प्रथम हूं। पहले भी अपूर्व फूल खिले हैं और आगे भी अपूर्व फूल खिलेंगे। और तुम अगर सच में मुझे प्रेम करते हो तो तुम उन सब फूलों को प्रेम करोगे। क्योंकि तुमने अगर एक फूल को प्रेम किया और उस एक फूल से बंध गए तो तुमने फूल को प्रेम किया ही नहीं।
फूल को प्रेम करने का अर्थ होता है कि तुमने खिलने को प्रेम किया, तुमने फूल की पंखुड़ियों के खुल जाने को और गंध के उड़ जाने को प्रेम किया। इसलिए गंध कहीं भी उड़ी हो, किसी फूल से उड़ी हो, अतीत में या भविष्य में, अगर तुमने सच में ही एक फूल को चाहा है, तो उस चाहत में सारे फूलों की चाहत सम्मिलित हो जानी चाहिए।

मैं तुम्हें कोई एक धर्म नहीं दे रहा हूं, बस एक धार्मिकता दे रहा हूं। इसलिए मुझ पर तुम्हें रुक नहीं जाना है। मेरा उपयोग करो, ताकि तुम पहचान सको अतीत के सारे बुद्धों को और भविष्य के सारे बुद्धों को। मैं तुम्हें विराट करना चाहता हूं, तुम्हारे हृदय को बहु-आयाम देना चाहता हूं। क्या बंध कर बैठ जाना?
हर बुद्ध की अपनी एक अभिव्यक्ति होती है। जैसे कि चंपा का फूल है, उसका एक ढंग है। और जैसे गुलाब का फूल है, उसका एक ढंग है। और जैसे जूही का फूल है और जैसे कमल का फूल है, सब के अपने ढंग हैं। मगर खिलना एक ही घटना है। सब खिलते हैं। सब सुगंध को बिखेर देते हैं। जो आदमी जूही के फूल से ही बंधा रह गया, वह चंपाओं से वंचित रह जाएगा, कमलों के प्रति अंधा हो जाएगा, गुलाबों से बच कर निकलेगा। उसके जीवन में एकांगिता पैदा हो जाएगी। जब कि सभी फूल उसके हो सकते थे, जब कि सारी बगिया उसकी हो सकती थी। तो क्यों कंजूसी? प्रेम में क्या कंजूसी? कम से कम प्रेम को तो उदार करो।
अब निश्चित ही बुद्ध का एक ढंग है, जैसे कि जूही के फूल। महावीर का और ढंग है, जैसे चंपा के फूल। जरथुस्त्र का और ही ढंग है, जैसे टेसू के फूल। और लाओत्सु का और ही ढंग है, जैसे गुलाब के फूल। तुम्हारी बगिया, तुम्हारे हृदय की बगिया में इन सारे फूलों की जगह होनी चाहिए। अगर तुमने सच में मुझे चाहा है तो ये सारे फूल तुम्हारे हैं। वे फूल जो खिले और वे फूल जो कभी खिलेंगे, वे भी तुम्हारे हैं। मैं तुम्हें अतीत ही नहीं दे रहा हूं, तुम्हें भविष्य भी दे रहा हूं। जब तुम्हारी चेतना सभी आयामों को छूती है, तभी तुम सच में मुक्त हो।
जो जैन हो गया वह मुक्त नहीं। जो बौद्ध हो गया वह मुक्त नहीं। जो मुसलमान हो गया वह मुक्त नहीं। जो ईसाई हो गया वह मुक्त नहीं।
सिर्फ धार्मिक होना पर्याप्त है। जीवन में सत्य की खोज, सौंदर्य की खोज पर्याप्त है। जीवन में अपने स्वयं के केंद्र को अनुभव कर लेना पर्याप्त है। न किसी मंदिर में जाने की जरूरत है, न किसी मस्जिद में, क्योंकि असली मंदिर तुम्हारे भीतर है। जिस दिन तुम अपने मंदिर में विराजमान हो जाओगे उस दिन तुम अचानक पाओगे कि चारों तरफ मंदिर ही मंदिर हैं, क्योंकि हर चेतना मंदिर है। चारों तरफ परमात्मा ही परमात्मा है, क्योंकि हर व्यक्ति के भीतर वही विराजमान है।
ऋग्वेद का एक वचन हैः ऋतस्यशृंगमुर्विया विपप्रथे।
"ऋत की सत्ता सर्वत्र फैली हुई है।"
ऋत वेद का बहुमूल्य शब्द है। उसी से हमारा शब्द ऋतु बना। ऋतु प्राचीन समय में बहुत नियमबद्ध थी। ठीक समय पर, ठीक दिन पर वर्षा आती थी; ठीक दिन पर गर्मी शुरू होती थी; ठीक क्षण में सर्दी आती थी। वह वर्तुल ऋतुओं का एक नियम से घूमता था। धीरे-धीरे ऋतुएं डगमगा गईं। आदमी ने डगमगा दीं। आणविक विस्फोटों ने ऋतुओं को डगमगा दिया। जैसे ऋतुओं का वर्तुल था, ऐसे ही जीवन में और भी गहरा एक ऋत है, जिसके अनुसार चेतना चलती है। चेतना का जो नियम है उसका नाम धर्म है। उसी को वेद ऋत कहते हैं।
"ऋत की सत्ता सर्वत्र फैली हुई है।"
जिस दिन तुम अपने भीतर ऋत की सत्ता का अनुभव कर लोगे, तुम धार्मिक हुए। जिस दिन तुमने जीवन का परम नियम अपने भीतर पहचान लिया, उस दिन तुम्हें सबके भीतर उसी नियम के दर्शन होने शुरू हो जाएंगे। सारा अस्तित्व तब एक दर्पण हो जाता है।
और तब तुम पाओगे कि जो सोए हैं वे भी बुद्ध हैं। जागे--जब जागे--तब बुद्ध हो जाएंगे। कुछ हानि भी नहीं हो जा रही है अगर सोए हैं तो। कुछ खो नहीं रहे हैं। हमारा जो स्वभाव है उसे हम खो ही नहीं सकते। ज्यादा से ज्यादा भूल सकते हैं। भूलने में क्या हानि है? आज भूल गए, कल याद कर लेंगे। और प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, जब याद करना चाहे तब।
इसलिए मैं किसी के द्वार पर दस्तक नहीं दूंगा। यह कुआं किसी की तलाश में नहीं जाएगा। जिन्हें आना है, जिन्हें प्यास है, उन्हें आना होगा। और बहुतों को प्यास है। सारी पृथ्वी प्यासी है। और ऐसा भी नहीं है कि लोगों को अपनी प्यास का आभास नहीं है। आभास भी है। मगर अपने को भुलाए रखते हैं।

प्यास को भी छिपाए रखते हैं। डरते हैं कि कहीं प्यास का पता चल गया तो फिर कुछ करना पड़ेगा। फिर किसी कुएं की तलाश करनी पड़ेगी।
और कुएं की तलाश कुछ आसान मामला नहीं। और कुएं से पानी पीना कोई सस्ता सौदा नहीं। क्योंकि सत्य के कुएं से वही पानी पी सकता है, जो अहंकार को उतार कर रख दे। सत्य के कुएं से वही पानी पी सकता है, जो ध्यान की अंजुली बना ले।
उतनी तैयारी न होने से लोग कल पर टालते जाते हैं कि खोजेंगे, कभी खोजेंगे। अगर कुआं पास भी हो तो वे हजार बहाने खोज लेते हैं कुएं से बच कर निकलने के। डर है, क्योंकि यह कुआं, सत्य का कुआं, इसके नियम बड़े उलटे हैं-- उलटबांसियों जैसे हैं। यहां वही उबरता है जो डूबता है। यहां वही पाता है जो मिटता है। खोज उसी की पूरी होती है जो खो जाने को राजी है।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
छठवां प्रवचन

मेरा एकमात्र प्रयोजनः तुम जागो

पहला प्रश्नः ओशो,
यजुर्वेद का सूत्र है--
व्रतेन दीक्षाम आप्नोति;
दीक्षया आप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धाम आप्नोति;
श्रद्धया सत्यम आप्यते।।
अर्थात व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा, दक्षिणा से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।
ओशो, सत्य-प्राप्ति के चार चरण समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद किरण, धर्म सदियों से पुरोहितों के शड्यंत्र से पीड़ित रहा है।
धर्म के अमृत में पुरोहित ने सब भांति जहर घोला है। मगर ढंग से घोला है, व्यवस्था से, तर्क से--यूं कि पहचान में न आए। ऐसा ही यह सूत्र है। इसे समझना उपयोगी है।
"व्रतेन दीक्षाम आप्नोति। व्रत से दीक्षा।"
यहीं से पहला कदम ही गलत दिशा में शुरू हुआ। व्रत से दीक्षा का कोई संबंध नहीं है। दीक्षा से भला व्रत पैदा हो जाए, लेकिन व्रत से कैसे दीक्षा पैदा हो सकती है! फिर व्रत कहां से आएगा? व्रत का अर्थ होता हैः अनुशासित जीवन; वस्तुतः आत्म-अनुशासित जीवन। व्रत का अर्थ होता हैः बोधपूर्वक जीना; मूर्च्छा से न जीना।
व्रत का अर्थ कसम खाकर जीना नहीं होता, जैसा कि तुम्हें समझाया गया है। क्योंकि कसमें तो वे ही लोग खाते हैं, जिनमें बोध की कमी है।
जैसे, जो आदमी यह व्रत लेता है कि मैं कभी झूठ न बोलूंगा, वह इस बात की घोषणा कर रहा है कि उसके भीतर झूठ बोलने की आकांक्षा है, प्रबल आकांक्षा है, महत आकांक्षा है, गहरा आकर्षण है। डरा है उस आकांक्षा से, भयभीत है अपने ही भीतर बैठे हुए झूठ के आकर्षण से। तो कसम खाता है--कसम खाता है भीड़ के सामने, समाज के सामने; मंदिर में, मस्जिद में, चर्च में; पंडित-पुरोहित के समक्ष, साक्षी बना कर; मुनि, साधु, महात्मा के सामने--ताकि लोगों की आंखें उसके भीतर छिपे हुए झूठ को प्रकट होने से रोक सकें। व्रत लिया है, लोगों के सामने लिया है; अब उसके विपरीत चलना समादर खोना हो जाएगा। और समाज व्रती को बहुत सम्मान देता है। सम्मान इसीलिए देता है, ताकि व्रती सम्मान के आधार से अपने व्रत पर टिका रहे। वह रिश्वत है समाज की। समाज साफ कर देता है कि जब तक व्रती हो तब तक सम्मान है। और जैसे ही व्रत टूटा कि सम्मान अपमान में बदल जाएगा।
इस प्रक्रिया को ठीक से समझो। इस तरह का व्रत तो मूलतः अहंकार की ही अभिव्यक्ति है, क्योंकि सम्मान अहंकार का पोषण है। जब कोई व्रत लेता है तो समाज में बड़ी प्रशंसा होती है। जब कोई त्याग करता है, समाज में बड़ा आदर होता है। यह आदर अहंकार के लिए सहारा बन रहा है। और यह बात भी साफ हो जाती है कि जिस दिन व्रत गया, त्याग गया, यह जो फूल गया है अहंकार, यह गुब्बारे की तरह, यही लोग तोड़ देंगे, जिन्होंने हवा भरी है इस गुब्बारे में। ये खींच लेंगे उस पोषण को।
समाज उन चीजों को आदर देता है जिनसे समाज के न्यस्त स्वार्थ लाभान्वित होते हैं। समाज अकारण आदर नहीं देता। समाज के आदर के पीछे भी हेतु है। समाज अपने हेतु से आदर देता है। और व्रती अहंकार के पोषण से आनंदित होता है। फिर लौटना मुश्किल होने लगता है। जितना बड़ा आदर उतना ही पीछे लौट कर देखना भी मुश्किल हो जाता है।
व्रत से जो यात्रा शुरू होगी, वह अहंकार से ही शुरू हो रही है। और अहंकार से शुरू हुई यात्रा कभी सत्य तक नहीं पहुंचती, पहुंच ही नहीं सकती।
अहंकार का विसर्जन ही सत्य का आगमन बनता है। और यह तो अहंकार का पोषण है।

तुम साधुओं को, मुनियों को, महात्माओं को इतना जो आदर दे रहे हो, तुम्हें शायद पता भी नहीं कि तुम्हारे आदर के कारण तुम उनके जीवन में सत्य के आगमन की सारी संभावनाएं समाप्त कर रहे हो। वे तुम्हारा आदर ले रहे हैं; उन्हें पता नहीं कि अपने ही हाथों वे उसी शाखा को काट रहे हैं जिस पर बैठे हैं। कोई मूढ़ ही इस शड्यंत्र में फंस सकता है। मगर मूढ़ों की जमात है, मूढ़ों की भीड़ है।
व्रत से दीक्षा का कोई संबंध नहीं। फिर दीक्षा का किस बात से संबंध है?
आनंद किरण, मुझसे पूछते हो तो मैं कहूंगाः बोध से दीक्षा।
जीवन दुख है--जैसा जीवन तुम जीते हो। जीवन अर्थहीन है--जैसा जीवन तुम जीते हो। तुम्हारा जीवन एक बोझ है। तुम्हारे जीवन में न कोई काव्य है, न कोई फूल खिलते हैं, न कोई दीया जलता है। तुम्हारे जीवन में न कोई संगीत है, न कोई नृत्य। न कभी पैरों में घूंघर बंधते हैं, न ओंठों पर बांसुरी है। तुम्हारा जीवन एक रेगिस्तान है; एक व्यर्थ की आपाधापी है; एक विक्षिप्त कथा है, जिसमें कोई तुक नहीं, संगति नहीं। क्यों तुम जी रहे हो, इसका भी तुम जवाब नहीं दे सकते हो। क्या तुमने जीवन से पाया है? गौर करोगे तो हाथ खाली हैं, प्राण भी खाली हैं।
जैसे ही कोई व्यक्ति जीवन की अपनी इस गलत शैली को देख पाता है... और देखना कठिन नहीं है। यह सत्य है तुम्हारा। प्रतिपल तुम्हारे सामने खड़ा है। सुबह उठते हो, दिन भर आपाधापी करते हो, सांझ बिस्तर पर गिर पड़ते हो, फिर सुबह उठते हो--यूं ही झूले से लेकर कब्र तक, क्या है इसमें सार? क्या है उपलब्धि? कौन सी गरिमा है इसमें? कौन सा गौरव है? कौन सी महिमा है? इसको देख कर, इसको पहचान कर, इस बोध से कि मेरे जीवन की शैली गलत है, कि मैं जिस ढंग से जी रहा हूं, वह ढंग नहीं है जीने का; वह ढंग है केवल क्रमशः मरने का-- इस बोध से दीक्षा पैदा होती है। इस बोध से ही सम्यक दीक्षा पैदा होती है। इस बोध के अतिरिक्त और कोई दीक्षा का उपाय नहीं है।
दीक्षा का क्या अर्थ है? दीक्षा का अर्थ हैः अपने जीवन की व्यर्थता को देख कर, अपने जीवन की असारता को देख कर उसकी तलाश, जिसके जीवन में फूल खिले हों और सुगंध हो; उसकी तलाश, जिसके जीवन में अंधेरा न हो और ज्योति हो; उसकी तलाश, जहां रेगिस्तान एक बगिया बन गया हो; उसकी तलाश, जिसका सहस्रदल कमल खिला हो। गुरु की तलाश। और मिल जाए जब कोई ऐसा व्यक्ति, जिसके सामने तुम साफ-साफ देख सको कि मैं अमावस की रात हूं और यह पूर्णिमा की रात, उसके सामने झुक जाना, उसके सत्संग में बैठ जाना दीक्षा है। उसके सामने नतमस्तक हो जाना दीक्षा है। उससे प्रार्थना करना कि मेरे हाथ को अपने हाथ में ले लो! ले चलो मुझे भी अपनी राह पर! मोड़ दे दो मेरे जीवन को भी! दिशा नहीं है मेरे पास; मैं भटका हूं। चौराहे पर क्या चुनाव करूं, इसकी मेरे पास समझ नहीं है। और जो मैंने अब तक चुना है, गलत सिद्ध हुआ है। और गलत को ही चुनने की मेरी आदत हो गई है। इसलिए मैं जो भी चुनूंगा, उसकी फिर गलत होने की संभावना है। इसलिए मैं राजी हूं अपने को बदलने को, अपने को रूपांतरित करने को।
अपने अतीत को पोंछ डालने की तैयारी दीक्षा है। अपने अतीत से स्वयं को विच्छिन्न कर लेने की तैयारी दीक्षा है। एक नयी शुरुआत, एक नया जन्म दीक्षा है।
और दीक्षा उसके पास ही घटित हो सकती है जिसके भीतर चेतना का सूर्य ऊगा हो। उसके संग-साथ में ही, उसके पास उठते-बैठते ही, उसकी आग तुम्हारे भीतर भी आग को प्रज्वलित कर दे सकती है। उसका संगीत तुम्हारी हृदयतंत्री को भी झंकार दे सकता है।
यह एक संगीत का, ध्वनिशास्त्र का जाना-माना नियम है कि अगर एक खाली कमरे में, एक कोने में सितार रख दी जाए और दूसरे कोने में सितारवादक बैठ कर दूसरी सितार बजाए, तो जो सितार कोने में रखी है जहां कोई सितारवादक भी नहीं, एक सितार के बजने पर दूसरे सितार के तार भी झनझनाने लगते हैं। जैसे ही कमरे में एक सितार की गूंज भरनी शुरू होती है, वह गूंज पर्याप्त है, उसकी अनुगूंज दूसरे सितार में उठनी शुरू हो जाती है, उसकी प्रतिध्वनि जगनी शुरू हो जाती है।

पश्चिम के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने इसके लिए
एक प्यारा नाम दिया है, एक नये ही नियम का नाम दिया है।
विज्ञान में एक नियम स्वीकृत है कार्य-कारण का। जैसे सौ डिग्री तक पानी को गरम करो, तो यह कारण है; और सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाएगा, यह कार्य है। यह अपरिहार्य है। जब भी सौ डिग्री तक पानी गर्म होगा, भाप बनेगा ही बनेगा। विज्ञान की सारी खोज कार्य-कारण की खोज है। जिस दिन हम कारण को खोज लेते हैं, हम कार्य के भी मालिक हो जाते हैं।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने कहा कि एक और भी नियम है, जो चेतना के जगत में लागू होता है। पदार्थ के जगत में कार्य-कारण का नियम सही है, चेतना के जगत में सही नहीं है। उसने उसे नाम दियाः लॉ ऑफ सिनक्रानिसिटी; समस्वरता का नियम। एक सितार बजे तो यह कोई कारण नहीं है दूसरे सितार के बजने के लिए। लेकिन दूसरा सितार झंकार देने लगता है।
सदगुरु के पास बैठना उपासना है। उपासना का अर्थ ही यही होता हैः पास बैठना, उप-आसन। सदगुरु के पास बैठ कर ही उपनिषद पैदा होता है। उपनिषद का भी यही अर्थ होता हैः पास बैठना। और उपवास का भी यही अर्थ होता हैः सदगुरु के पास बैठना। उपवास, उपासना, उपनिषद--इनके वे अर्थ नहीं होते जो तुमने समझे हैं।
उपवास का अर्थ अनशन नहीं होता। भूखे मरने से क्या संबंध है? भूखे मर
कर अगर लोग आत्मज्ञान को उपलब्ध होते हों तो दुनिया से भूखे मरते हुए लोगों को समाप्त करना ठीक नहीं है। तब तो दीन और दरिद्र और भिखमंगे आत्मज्ञान के ज्यादा करीब हैं। भूखे मरने से कोई संबंध नहीं है। उपवास का अर्थ हैः पास बैठना। उस शब्द को ही देखो।
उपासना का भी वही अर्थ है। मंदिर में तुम जो पूजा के थाल उतार रहे हो
और फूल चढ़ा रहे हो, वह उपासना नहीं है। यह पत्थर की मूर्ति के पास क्या खाक बैठोगे! तुम खुद ही पत्थर हो और पत्थर की मूर्ति के पास बैठ-बैठ कर और पत्थर हो जाओगे। किसी जीवंत संगीत के पास बैठो। मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे साथ नहीं दे सकते। किसी जीवंत बुद्ध को तलाशो।
और निश्चित ही उसके पास बैठने का अर्थ एक ही हो सकता हैः समर्पित होकर बैठना। नहीं तो अकड़ कर बैठे रहे, समझ लो कि दूसरा सितार कोने में अकड़ा बैठा रहे, अहंकारी हो, दंभी हो, जकड़ा बैठा रहे अपने अहंकार में, तो लाख पहली सितार बजती रहे, उस दूसरे सितार के तारों में झंकार पैदा नहीं होगी। लेकिन सितार ऐसे अहंकारी नहीं होते। यह आदमी की ही मूढ़ता है। सितार इतने मूढ़ नहीं होते; सरल होते हैं। गुरु के पास भी बैठ जाओ अगर अकड़ कर, तो तुम पास बैठे ही नहीं। फिर उपनिषद पैदा नहीं होगा। फिर तुम्हारे भीतर प्रतिगूंज पैदा नहीं होगी। इसलिए दीक्षा।
दीक्षा का इतना ही अर्थ हैः निवेदन, कि मुझे स्वीकार कर लो। प्रार्थना, कि मेरा हाथ अपने हाथ में ले लो। अनुरोध, कि मुझे आज्ञा दो कि तुम्हारे साथ बैठ सकूं, सत्संग हो सके।
बोध से दीक्षा। जीवन की व्यर्थता की अनुभूति मूल आधार है सत्य की खोज का। और जब तुम अपने जीवन की व्यर्थता समझ पाते हो, तभी तुम किसी के जीवन की सार्थकता को समझ सकोगे। जब तक तुम कांटों को न पहचान लो, फूल को पहचानना असंभव है। अगर तुम अंधेरे को ही रोशनी समझते हो, तो क्या तुम रोशनी की तलाश करोगे? क्यों करोगे?
इसलिए तथाकथित पंडित और थोथे ज्ञानी कभी दीक्षा को उपलब्ध नहीं होते। उनको तो यह भ्रांति है कि वे जानते ही हैं, पहचानते ही हैं। उन्होंने तो पा ही लिया है। क्योंकि तोतों की तरह वे वेदों के वचन दोहरा सकते हैं।
आनंद किरण, अगर तुमने यही यजुर्वेद का सूत्र किसी पंडित से पूछा होता
तो वह कहताः अहा! क्या अदभुत सूत्र है! सारी सत्य की बात आ गई।
सूत्र बिल्कुल गलत है। सूत्र किसी थोथे पंडित ने खोजा होगा। यह किसी ज्ञानी, किसी प्रबुद्ध चेतना से निकला हुआ झरना नहीं है। हां, किसी नल की टोंटी से निकला होगा।
"व्रतेन दीक्षाम आप्नोति। व्रत से दीक्षा।"
यह तो बैलों को गाड़ी के पीछे बांधना हुआ।

मैं तुमसे कहता हूंः दीक्षा से व्रत। बोध से दीक्षा, और जब दीक्षा से व्रत आता है तो व्रत का सौंदर्य ही और। तब व्रत लेना नहीं पड़ता--आता है। और उस भेद को स्मरण में रखना। जो व्रत लिया जाता है, थोथा है, दो कौड़ी का है। भूल कर कोई व्रत मत लेना।
मैं कलकत्ता में सोहनलाल दूगड़ के घर अक्सर मेहमान होता था। वे प्यारे आदमी थे। यूं तो इस देश में उनके मुकाबले कोई सटोरिया नहीं था। वे सब से बड़े सटोरिया थे। लेकिन अक्सर यूं होता है कि तुम्हारे तथाकथित संतों से सटोरिए भी ज्यादा सच्चे और ईमानदार आदमी होते हैं। सीधे और साफ आदमी थे। मैं उनके घर पहली बार मेहमान हुआ तो उन्होंने मुझसे कहा... ।
जन्म से वे तेरापंथी जैन थे, तो आचार्य तुलसी के शिष्य थे। और आचार्य तुलसी का यही गोरखधंधा है--व्रत दिलाना। और चूंकि लोग बड़े-बड़े व्रत नहीं ले सकते, जीवन जीना मुश्किल हो जाएगा, इसलिए उन्होंने अणुव्रत की ईजाद की है। अणुव्रत का अर्थ हैः छोटा-मोटा व्रत, जिसको कोई भी साध ले। तो व्रतों को भी उन्होंने बाजार के योग्य बना दिया है। थोक नहीं खरीद सकते, कोई बात नहीं, फुटकर खरीद लो! आचार्य तुलसी मारवाड़ी हैं। चलो पूरा थान नहीं खरीद सकते तो गज भर ही ले लो। गज भर नहीं तो चिंदी ही सही। अरे भागते भूत की लंगोटी ही भली! इस लंगोटी को वे कहते हैंः अणुव्रत। नाम तो प्यारा चुन लिया है। जितना बन सके, जितनी औकात हो उतना ले लो।
सोहनलाल दूगड़ मुझसे कहे कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत आचार्य तुलसी से लिया। मैंने उनकी तरफ गौर से देखा और देखता ही रहा। वे थोड़े घबड़ाए, थोड़े बेचैन हुए। कहने लगे कि आप इस तरह घूर-घूर कर क्यों देख रहे हैं? मैंने उनसे पूछा कि अब सच-सच बताओ, व्रत कितनी बार लिया? आदमी ईमानदार थे, उन्होंने कहा कि तीन बार लिया।
मेरे साथ एक मूरख जैन बैठे हुए थे, वे बड़े प्रभावित हुए। मूर्खता का अपना गणित होता है। अरे जब एक बार की जगह तीन बार व्रत लिया! वे तो मुझसे कहने लगे कि मैंने कभी सोचा नहीं था कि सोहनलाल दूगड़ और ऐसे व्रती हैं! मैंने कहा, तुम अपने बुद्धूपन को अपने पास रखो। जरा यह तो सोचो कि ब्रह्मचर्य का व्रत तीन बार कैसे लिया जा सकता है! और मैंने सोहनलाल से पूछा कि तुम अब मुझे यह बताओ, चौथी बार क्यों नहीं लिया?
वे आदमी सच्चे थे। उन्होंने कहा, अब आपसे क्या छिपाऊं, किसी ने मुझसे
यह पूछा ही नहीं! पहले तो किसी ने मुझसे यही नहीं पूछा कि कितनी बार लिया। ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, इतना ही कहता हूं कि लोग आह्लादित हो जाते हैं। आपने पहले तो मुझे घूर कर यह पूछा कि मुझे पसीना छूट गया। तो मुझे सच्ची बात कहनी पड़ी कि तीन बार लिया। और अब आप यह पूछते हैं, यह और अजीब बात है। मैंने कहा, तुम सच-सच ही मुझसे कह दो।
उन्होंने कहा कि नहीं, चौथी बार नहीं लिया। क्योंकि हिम्मत ही टूट गई लेने की। तीन बार लेकर देख लिया कि सधता तो है ही नहीं, किसको धोखा देना है?
व्रत लिए नहीं जाते। जो लिए जाते हैं, थोथे होते हैं, ढोंग होते हैं, पाखंड होते हैं। क्योंकि लेने का मतलब ही यह है कि तुम अपने विपरीत ले रहे हो। तुम अपने को दो हिस्सों में तोड़ रहे हो। तुम्हारे भीतर कामवासना भरी है और व्रत तुम ब्रह्मचर्य का ले रहे हो। लोगे ही ब्रह्मचर्य का व्रत तभी न, जब भीतर कामवासना भरी हो। जिसके भीतर कामवासना नहीं है वह क्या ब्रह्मचर्य का व्रत लेगा? क्यों लेगा? किस कारण लेगा?
व्रत इस बात का सबूत है कि उससे विपरीत तुम्हारे भीतर की अवस्था है। लेकिन व्रत लेकर क्या तुम अपने भीतर की अवस्था को बदल सकोगे? ज्यादा से ज्यादा दबा सकते हो। तुम दोहरे हो जाओगे, तुम्हारे दो चेहरे हो जाएंगे--एक दिखाने का मुखौटा और एक जीने का। और तब तुम्हारे भीतर ग्लानि पैदा होगी, अपराध-भाव पैदा होगा। और ये सारे धर्मों ने पृथ्वी को ग्लानि और अपराध से भर दिया है। हर आदमी अपराधी है। हर आदमी को लगता है मैं गलत कर रहा हूं। क्योंकि हर आदमी को समझाया गया है कि सही क्या है। और सही तो उससे हो नहीं रहा है; जो हो रहा है वह गलत हो रहा है। इसमें जो बेईमान हैं, जो चालबाज हैं, वे तो अपने ढोंग को साधे रखते हैं। मगर जो सीधे-सादे लोग हैं, सरल चित्त हैं, उनकी बड़ी मुश्किल हो जाती है।

तुम्हारे तथाकथित धर्मों के व्रतों के आग्रह ने दो तरह के लोग पैदा किए हैंः बेईमान और चालबाज और पाखंडी, ये बन जाते हैं तुम्हारे महात्मा, मुनि, साधु, संत; और दूसरे अपराधी लोग; ये सीधे-सादे लोग, जो नाहक नरक की अग्नि में जलने लगते हैं। या तो तुम पाखंडी पैदा करते हो और या तुम अपराधी पैदा करते हो। ये दोनों बातें विकृत हैं। तुम आदमी को रूपांतरित नहीं करते।
इसलिए मैं नहीं कहता कि कोई व्रत ले। व्रत लिया नहीं जाता। दीक्षा से व्रत फलित होते हैं। जब तुम सदगुरु के पास बैठते हो, जब धीरे-धीरे तुम्हारे हृदय की वीणा बजने लगती है, जब धीरे-धीरे सदगुरु का शून्य तुम्हारे भीतर प्रवेश करने लगता है, जब धीरे-धीरे उसका गीत तुम्हारी समझ में आने लगता है--तो बिना किसी चेष्टा के, बिना किसी प्रयास के क्रांति शुरू हो जाती है।
एक चिनगारी, और काफी है कि तुम्हारे पूरे जीवन में यूं आग लग जाए जैसे जंगल में आग लग जाती है। उस आग में, जो भी व्यर्थ है, सब खाक हो जाता है; और जो सार्थक है, निखर कर आता है, कुंदन हो जाता है, खालिस सोना बचता है। जो राख होना है वह राख हो जाना चाहिए। जो आग से गुजर कर बच जाए वही सोना है। बस यही कसौटी है।
सदगुरु के पास होना आग के पास होना है। इसलिए लोग मुर्दा गुरुओं को पूजते हैं, क्योंकि मुर्दा गुरु से क्या डर? मुर्दा गुरु यानी राख। राख को चाहो तो विभूति कहो। चालबाज इसको विभूति कहते हैं। मुर्दा गुरुओं को पूजते हैं। पांच हजार साल पहले कोई गुरु मर चुका है, पूजा अब तक चल रही है। अब पांच हजार साल में आग तो कहां बची? अंगार कहां बचे? अरे राख भी न मालूम कितनी बार बदली जा चुकी होगी।
मैंने एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन को देखा, छाता लगाए बड़ी शान से चला आ रहा था। मैंने पूछा, नसरुद्दीन, छाता बिल्कुल नया है, अभी-अभी खरीदा क्या? उसने कहा कि नहीं, तीस साल पुराना है। मैंने कहा, यह छाता तीस साल पुराना होकर इतना ताजा, इतना नया, यूं लगता है अभी-अभी कारखाने से तैयार होकर आ रहा हो!
नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, तीस साल पुराना है। खरीदा तो मेरे दादा ने था, फिर मेरे पिता ने भी उपयोग किया, अब मैं उपयोग कर रहा हूं। मगर छाता गजब का है, मेरे बच्चे भी उपयोग करेंगे।
मैंने कहा, इसका राज तो तुम बताओ कि कैसे उपयोग करते हो?
उसने कहा, राज क्या है! राज यह है कि कई दफे बदला जा चुका है। कल ही मस्जिद में फिर बदल गया। तीस साल पुराना है, कई दफे बदला जा चुका है।
पांच हजार साल में राख भी कई दफे बदली जा चुकी होगी।
लंका में कैंडी का मंदिर है, जहां बुद्ध के एक दांत को बचा कर रखा गया है। वैज्ञानिकों के हिसाब से यह दांत आदमी का है ही नहीं। बुद्ध की तो बात छोड़ो, आदमी का भी नहीं है, किसी जानवर का है। मगर पूजा जारी है, अब भी जारी है। कोई वैज्ञानिक राजी नहीं है कि यह आदमी का दांत है। ऐसा दांत आदमी का होता ही नहीं। उसका सब वैज्ञानिक रासायनिक परीक्षण हो चुका है। मगर कैंडी का मंदिर हजारों यात्रियों से भरा रहता है प्रतिदिन। बुद्ध के दांत की पूजा चल रही है। और दांत बुद्ध का है ही नहीं।
श्रीनगर में हजरतबाल मस्जिद है, मोहम्मद का एक बाल रखा हुआ है। तुम्हें कहानी भूली नहीं होगी, कुछ ही साल पहले वह बाल चोरी चला गया, फिर प्रकट भी हो गया। अब यह कोई भी नहीं पूछता कि जो बाल प्रकट हुआ है, यह वही है जो चोरी गया था? चौदह सौ साल में न मालूम यह बाल कितनी दफे बदला गया होगा। अभी-अभी आठ-दस साल पहले ही बदला गया है। चोरी भी चला गया, दंगे-फसाद भी हो गए, हिंदू-मुसलमान जूझ भी गए, कत्लेआम भी हो गया, और फिर बाल मिल भी गया। मगर यह राज खोला ही नहीं गया कि यह बाल मिला कैसे, किसके पास मिला, किसने चुराया था? कोई पता नहीं चला किसने चुराया, कैसे पाया गया, मगर बाल मिल गया।
यह बाल बिल्कुल झूठा है। लेकिन अब कोई उपाय भी तो नहीं है तय करने का
कि यह बाल झूठा है या सच्चा है। कैसे तय करोगे कि यह मोहम्मद का बाल है? हो सकता है किसी मोहम्मद नाम के आदमी का हो। मगर हजरत मोहम्मद का बाल, यह फिर

मिला कैसे? और जिसने चोरी की थी और जिसके कारण इतना उपद्रव मचा, वह आदमी पकड़ा क्यों नहीं गया?
लेकिन एक साजिश है। बाल तो होना ही चाहिए। क्योंकि वह मस्जिद और उस मस्जिद के पुजारी इसी बाल के आधार पर जीते हैं। खो गया होगा असली तो खो गया, मगर कोई भी बाल काम देगा। कम से कम मस्जिद का धंधा तो जारी रहे। मुर्दा गुरु को पूजना हमेशा आसान है। लेकिन मुर्दा गुरु को पूजने वाले मुर्दे लोग होते हैं। मुर्दे हैं, इसलिए मुर्दे को पूजते हैं। तुम्हारी पूजा तुम्हारे संबंध में खबर देती है। कृष्ण को पूजो, कि मोहम्मद को, कि राम को, कि बुद्ध को, कि महावीर को, किसी न किसी बहाने तुम मुर्दों को पूज रहे हो। मैं तुमसे कहता हूं कि अगर महावीर जिंदा होते, तुम उनके पास नहीं जाते। क्योंकि तब खतरा था। तब आग थी। तब तो केवल वे ही लोग जाएंगे जो जल मिटने को तैयार हैं। परवाने जाएंगे।
जब शमा जल रही है, तब परवाने जाते हैं। जब शमा बुझ जाती है, तब फिर सब तरह के कीड़े-मकोड़े पहुंचने लगते हैं। शमा जब जलती है, तब परवाना। शमा जब बुझ जाती है, तब भीड़-भाड़ आती है। वही भीड़-भाड़ जो परवानों को पागल समझती है। कीड़े-मकोड़ों की भीड़-भाड़। खटमल, मच्छर सब आते हैं। लेकिन परवाने नहीं आते। परवाने तो हमेशा जीवित को तलाशते हैं। मरने की तैयारी चाहिए।
पत्थर की मूर्तियां किनने ईजाद की हैं? पथरीले लोगों ने। जिनकी आंखें पथरा गई हैं और जिनके हृदय भी पत्थर हो गए हैं, उन्होंने पत्थर की मूर्तियां ईजाद की हैं, उन्होंने पत्थर के मंदिर बना लिए हैं। अपने ही अनुरूप। अपने ही हिसाब से। अपनी ही सुविधा के लिए।
बोध से दीक्षा और दीक्षा से क्रांति। दीक्षा से फिर तुम्हारे जीवन में रूपांतरण शुरू होता है। बहुत सी बातें गिर जाती हैं। गिरानी नहीं पड़तीं, सिर्फ सत्संग से गिर जाती हैं।
मौलुंकपुत्त नाम का एक दार्शनिक बुद्ध के पास आया। और उसने बुद्ध से पूछा कि मैं बड़े-बड़े दार्शनिकों के पास गया हूं--वह खुद भी प्रसिद्ध दार्शनिक था--लेकिन मेरे प्रश्नों का उत्तर कोई भी नहीं दे पाता। क्या आप तैयार हैं मेरे प्रश्नों के उत्तर देने को?
बुद्ध ने जो कहा, उसने सोचा भी न था। क्योंकि बुद्ध कोई दार्शनिक नहीं हैं, द्रष्टा हैं। दार्शनिक तो वे लोग हैं जो अंधे हैं और विचार कर रहे हैं प्रकाश के संबंध में। द्रष्टा वह है जिसकी आंख खुली है और जो प्रकाश को देख रहा है, विचार नहीं कर रहा है। दार्शनिक होते हैं विचारक; द्रष्टा होता है निर्विचार। सोचा न था मौलुंकपुत्त ने कि यह घटना यूं घट जाएगी। मगर सदगुरु के पास भी पहुंच जाना खतरनाक है।
बुद्ध ने कहा, अच्छा हुआ तुम आ गए। तुम्हारा कोई भी उत्तर नहीं दे सका
न?
मौलुंकपुत्त ने कहा कि निश्चय ही कोई भी उत्तर नहीं दे सका।
बुद्ध ने कहा, मैं उत्तर दे सकता हूं, लेकिन तुम लेने को राजी हो? मौलुंकपुत्त से यह किसी ने पूछा ही नहीं था। जिससे भी उसने प्रश्न पूछे थे, उसने उत्तर दिया था। यह सवाल ही किसी ने नहीं पूछा था कि क्या तुम लेने को राजी हो?
मौलुंकपुत्त ने पूछा, क्या शर्त पूरी करनी पड़ेगी लेने के लिए?
बुद्ध ने कहा, दो साल मेरे पास बैठना पड़ेगा--चुपचाप, बिना कुछ पूछे। बस बैठना पड़ेगा, कुछ भी नहीं करना है। बैठते-बैठते शांत होते जाओ। दो साल बाद, जब तुम्हारा चित्त बिल्कुल शांत हो गया हो, पूछ लेना जो पूछना है। और मैं वायदा करता हूं कि हर प्रश्न का उत्तर दूंगा। और आश्वासन दिलाता हूं कि तुम्हारे सारे प्रश्न हल हो जाएंगे। समाधान का मैं तुम्हें वायदा करता हूं। लेकिन इतनी तैयारी तुम्हें दिखानी पड़ेगी। मुफ्त नहीं हो सकती यह बात। दो साल मेरे पास बैठो।
मौलुंकपुत्त ने कहा, ठीक।
जैसे ही उसने कहा ठीक, महाकाश्यप नाम का एक बौद्ध शिष्य हंसने लगा, खिलखिलाने लगा। मौलुंकपुत्त को जरा चोट लगी। पूछा कि यह महाकाश्यप हंसता क्यों है?
बुद्ध ने कहा, तू ही पूछ ले। हंसता है तो कोई कारण होगा।

महाकाश्यप से पूछा कि आप हंसते क्यों हैं?
महाकाश्यप ने कहा, भले आदमी, पूछना हो तो अभी पूछ ले। यूं ही मैं भी एक दिन आया था। और यूं ही चुप बैठे-बैठे प्रश्न ही गिर गए। अब बुद्ध मुझे बार-बार, जहां मिल जाता हूं मुझसे पूछते हैंः पूछ! पूछने को कुछ बचा नहीं। ये चिकोटी लेते हैं। कहीं भी मिल जाता हूं, कहते हैंः महाकाश्यप, कुछ पूछना नहीं है? कहां गई तेरी पूछ?
तो महाकाश्यप ने कहा, इसलिए मैं हंसता हूं कि यह फिर हुआ जा रहा है धोखा। तू बातों में न आ। पूछना हो, पूछ ही ले। मैं भी जरा सुन लूं कि क्या उत्तर देते हैं।
बुद्ध ने कहा, मैं अपने वचन पर दृढ़ रहूंगा। मगर पूछना तू दो ही साल बाद।
दो साल बीत गए। और ठीक दो साल बाद बुद्ध ने मौलुंकपुत्त को कहा कि अब
तू खड़ा हो जा और पूछ ले। वह खिलखिला कर हंसा। उसने कहा, अब मैं समझा राज महाकाश्यप के हंसने का। इस दो साल में तो सब गिर ही गया। पूछने वाला मन ही न रहा। पूछने वाला ही जा चुका। यह दो साल का सन्नाटा, यूं जैसे कि बाढ़ आई और सब कूड़ा-करकट बहा ले गई। मुझे कुछ पूछना नहीं है। और बिना पूछे आपने सब समाधान दे दिया। समाधि दे दी तो समाधान हो गया।
सदगुरु के पास बैठ कर क्रांति घटती है। जीवन रूपांतरित होता है। व्रत आते हैं, लिए नहीं जाते। गलत छूट जाता है; सही जीवन का उपक्रम हो जाता है। सत्संग में मृत्यु भी घटती है, क्योंकि अतीत तुम्हारा मर जाता है; और पुनर्जीवन भी उपलब्ध होता है।
इसलिए मैं यजुर्वेद के इस सूत्र से राजी नहीं हो सकता।
"व्रतेन दीक्षाम आप्नोति। व्रत से दीक्षा।"
नहीं, बिल्कुल नहीं। दीक्षा से व्रत! और व्रत भी--मेरा अर्थ ध्यान में रखना--लिया हुआ नहीं, कसम खाया हुआ नहीं; सहज, स्वस्फूर्त।
दूसरा सूत्र हैः "दीक्षया आप्नोति दक्षिणाम्।"
तब तुम समझ सकते हो कि पुरोहित किस चालबाजी से भीतर आ रहा है।
"दीक्षा से दक्षिणा।"
दक्षिणा का क्या संबंध? यह दक्षिणा कहां से आ गई? मगर पुरोहित अपना हिसाब तो रखेगा ही, अपना इंतजाम तो रखेगा ही।
"दीक्षया आप्नोति दक्षिणाम्।"
दीक्षा जब होगी तो फिर दक्षिणा देनी होगी। फिर पुरोहित को कुछ देना पड़ेगा।
सदगुरु दक्षिणा नहीं मांगता। सदगुरु कुछ भी नहीं मांगता। सदगुरु तो इतना ही कहता है, तुम चुप हो जाओ, मौन हो जाओ। लेकिन पुरोहित कुछ मांगने बैठा है। दक्षिणा पर उसकी नजर है। और क्या-क्या पुरोहितों ने जाल रचे हैं! जैन शास्त्र कहते हैंः सिर्फ जैन मुनि को ही दक्षिणा देना, सिर्फ जैन मुनि को ही भोजन देना; क्योंकि वही सुगुरु है, बाकी सब कुगुरु हैं।
और बौद्ध भिक्षु कहते हैं कि सिर्फ बौद्ध भिक्षु को ही दक्षिणा और दान, वस्त्र, भोजन, वर्षा में आवास। सिर्फ बौद्ध भिक्षु को! क्योंकि वही एकमात्र सुगुरु है, बाकी तो सब कुगुरु हैं।
और ब्राह्मण कहते हैंः ब्राह्मण को दक्षिणा और ब्राह्मण को दान। ब्राह्मण के दान की महिमा से शास्त्र भरे पड़े हैं। दान देना तो ब्राह्मण को, तो ही फल मिलेगा स्वर्ग में। कोई शास्त्र नहीं कहता कि शूद्र को दान देना, कि शूद्र को दक्षिणा देना। शूद्र की तो छाया भी पड़ जाए तो तुम भ्रष्ट हो जाओगे। ब्राह्मण को देना। शूद्र चाहे सच्चरित्र ही क्यों न हो तो भी पात्र नहीं है। और ब्राह्मण अगर दुश्चरित्र भी हो तो भी पात्र है।
ये जालसाजियां तुम देखते हो! ये बेईमानियां तुम देखते हो!
यजुर्वेद के इस सूत्र में भी वही बात घुस गईः "दीक्षया आप्नोति दक्षिणाम्। और दीक्षा से दक्षिणा।"
दीक्षा से दक्षिणा का कोई भी संबंध नहीं। सदगुरु कुछ भी नहीं मांगता। सदगुरु देता है, मांगेगा क्या! तुम्हारे पास है क्या जो तुम सदगुरु को दे सकते हो? काश, तुम्हारे पास कुछ होता! तुम्हारे पास कुछ भी तो नहीं। तुम एकदम खाली हो। तुम भिखारी हो। तुम क्या दोगे?

सदगुरु देता है। सदगुरु के पास देने को है। सदगुरु के पास परमात्मा
है देने को। सदगुरु के पास जीवन की परम संपदा है देने को, प्रकाश है देने को, आनंद है देने को, सौंदर्य है देने को, सत्य है देने को। सदगुरु के पास सारी अलौकिक संपदा है देने को। तुम्हारे पास क्या है?
मगर बड़े चालबाजों ने धर्मों की छाती पर घूंघर मूता है। धर्मों की छाती पर ऐसी दाल घोंटी है, आदमी को इस तरह चूसा है, जिसका हिसाब नहीं। एक तरफ तो कहते हैं कि धन मिट्टी है और दूसरी तरफ कहते हैं कि ब्राह्मण को धन दान दो। शर्म नहीं आती! मिट्टी दान कोई देगा, अच्छी यह बात हुई? यही समझाते हैं कि धन मिट्टी है। समझाते इसीलिए हैं। अरे क्या पकड़ रहा है मिट्टी को! छोड़, दान दे! और यहां दान देगा तो वहां परलोक में करोड़ गुना पाएगा।
मिट्टी दोगे तो करोड़ गुनी मिट्टी पाओगे! कब्र बन जाएगी। करोड़ गुनी मिट्टी जब ऊपर गिरेगी परलोक में तो कहां खो जाओगे पता नहीं चलेगा। भूल कर दान मत देना, दक्षिणा मत देना।
दक्षिणा का कोई संबंध दीक्षा से नहीं है। इसलिए मैं कहूंगाः दीक्षा
से संन्यास। संन्यास का अर्थ होता हैः जीवन को सम्यक ढंग से जीने की कला; जीवन को बोधपूर्वक जीना; अंधे की तरह नहीं, आंख वाले की तरह जीना। भीतर के दीये को जला कर जीना। बोध से दीक्षा, दीक्षा से संन्यास। संन्यास में सब व्रत आ गए। सम्यक जीवन में सब कुछ आ गया।
लेकिन संन्यास के नाम से कुछ अजीब ही बात चलती रही है।
एक मित्र यहां भूल-चूक से आ गए हैं। नाम है उनकाः महंत गरीबदास झोलीवाले। जरा उनसे सावधान रहना, क्योंकि झोली लिए हुए हैं और गरीबदास हैं, दक्षिणा लेकर रहेंगे।
उन्होंने पूछा हैः संन्यास की पवित्रता सदियों से इस महान देश भारत में सुरक्षित रही। पर न जाने क्यों आप और आपके संन्यासी संन्यास की पवित्रता को नष्ट करने में लगे हैं। इससे आप लोगों को क्या मिल जाएगा? क्या इस पवित्र संन्यास का कुछ भी योगदान नहीं रहा, ऐसा आप लोग सोचते हैं? स्पष्ट करने का आपसे अनुरोध है।
संन्यास के नाम से जो धोखा और पाखंड इस देश में चला है, पवित्रता से उसका कोई भी संबंध नहीं, पाखंड से संबंध है। संन्यास के नाम से सिखाया क्या है सदियों से तुमने? यही सिखाया है कि जीवन को छोड़ कर भागो। भगोड़ापन सिखाया है। पलायनवाद सिखाया है।
युद्ध से कोई भाग जाता है तो हम उसको कायर कहते हैं। और जीवन के युद्ध
से जो भाग जाता है उसको तुम महात्मा कहते हो! शर्म भी नहीं आती महात्मा कहते! भगोड़ा है, कायर है, डरपोक है, जीवन का साक्षात्कार नहीं कर सका।
और एक तरफ तुम कहते हो कि परमात्मा ने सृष्टि बनाई, जीवन दिया। यह बड़े मजे की बात हुई। परमात्मा सृष्टि बनाता है, जीवन देता है और तुम जीवन छोड़ कर भागते हो और इसको धर्म मानते हो! तो परमात्मा गलती कर रहा है। तुम सुधार कर रहे हो परमात्मा की गलती में। अगर परमात्मा में थोड़ी भी अकल हो तो उसे जीवन को बनाना बंद कर देना चाहिए। जिस जीवन को छोड़ना पड़ता है, जो जीवन केवल छोड़ने योग्य है, यह परमात्मा विक्षिप्त है क्या, क्यों इस जीवन को बनाए चला जाता है? क्यों नये बच्चे पैदा किए चला जाता है? क्यों नये बीज और नये अंकुर? क्यों नये तारे और नये सूरज? महात्मा ज्यादा समझदार हैं परमात्मा से! अगर इन महात्माओं को परमात्मा मिल जाए तो ये उसका गला घोंट दें।
मगर इनको मिलता ही नहीं। इनको मिल सकता ही नहीं, क्योंकि जिन्होंने परमात्मा के जीवन को इनकार कर दिया, जो जीवन को छोड़ कर भाग गए, वे परमात्मा को पाएंगे कहां? परमात्मा जीवन में छिपा है। परमात्मा जीवन ही है। जीवन और परमात्मा पर्यायवाची हैं।
गरीबदास, तुम कहते होः "संन्यास की पवित्रता... ।"
किस संन्यास की तुम बातें कर रहे हो? कौन सी पवित्रता तुम्हारे संन्यास में रही है? भगोड़ेपन को पवित्रता कहते हो? कमजोरों, नपुंसकों को पवित्रता का नाम देते हो? जो जीवन की चुनौती को झेल न सके, जिनमें बुद्धि न थी जीवन की चुनौती को झेलने की, जो भागे, जो छिप रहे गुफाओं में, परमात्मा ने गलती की जो इनको आदमी बनाया, चमगादड़ बनाना था! इनको पैदा ही क्यों किया? ये परमात्मा की भूल को सुधार करने में लगे हैं!

और जो आदमी भागता है, वह सिर्फ अपने भय को जाहिर कर रहा है। वह जानता
है कि अगर जीवन में मैं रहा तो मैं अपने पर काबू न रख सकूंगा।
बुद्ध का एक शिष्य धर्म-प्रचार के लिए जा रहा है। उसने बुद्ध से पूछा
कि मेरे लिए कोई आदेश? तो बुद्ध ने कहा, एक बात ख्याल रखना, किसी स्त्री को देखना मत।
किस बात का डर है? किस बात का भय है? इस आदमी के भीतर अभी स्त्री के प्रति बहुत वासना भरी होगी। और यह धर्म-प्रचार को चला! अभी वासना तो मिटी नहीं, अभी काम तो मिटा नहीं, तो राम से पहचान कैसे होगी? रामनाम जान्यो नहीं! जब तक काम से भरा है, तब तक राम को कोई जान सका है?
अब बुद्ध का यह कहना कि स्त्री को मत देखना, इससे क्या फर्क पड़ेगा? क्या तुम सोचते हो कि आंख बंद करके स्त्री के पास से निकल जाओगे तो स्त्री दिखाई नहीं पड़ेगी? आंख बंद करके स्त्री और भी सुंदर मालूम होती है। आंख बंद करके स्त्री को देखने का मजा ही और है। स्त्री इतनी सुंदर नहीं होती खुली आंख से अगर देखो। और अगर पूरे बोधपूर्वक आंख से देखो तो स्त्री में कुछ भी नहीं बच रहता। और जरा एक्स-रे अगर तुम्हारी आंख में हो, जो कि ध्यानी की आंख में होता ही है, तो हड्डी-मांस-मज्जा, मवाद, मल-मूत्र सब दिखाई पड़ने लगता है। जरा गहरी पैनी आंख होनी चाहिए। मगर यह कोई स्त्री में ही नहीं, तुममें भी यही भरा हुआ है। सब में यही भरा हुआ है। पैनी आंख हो तो सब जगह यही दिखाई पड़ेगा। इसमें घबड़ाने की क्या जरूरत है?
अब समझ लो कि कोई तुमसे कहे कि भैया जा तो रहे हो रास्ते पर, लेकिन म्युनिसिपल कमेटी की कूड़ा-कचरा, मल-मूत्तर से भरी गाड़ी अगर निकले तो देखना मत। इसका मतलब क्या होगा? इसका मतलब यही होगा कि तुम मोरारजी देसाई हो, कि अगर मल-मूत्तर दिखाई पड़ा तो फिर तुम अपने पर काबू न रख सकोगे। जीवन-जल ऐसा तुम्हारे भीतर हड़कंप मचा देगा कि फिर तुम भूल ही जाओगे कि अपना है कि दूसरे का है। अरे क्या भेदभाव, अद्वैत भाव रखना चाहिए! ऐसी प्यास जगेगी कि फिर तुमसे न रहा जाएगा।
यह बुद्ध का कहना, स्त्री को मत देखना, पलायनवाद का सूत्र है। और अगर
यह बात सच थी कि यह आदमी स्त्री को देख कर डांवाडोल होने वाला है तो इसको धर्म-प्रचार के लिए किसलिए भेज रहे हो? यह क्या खाक धर्म-प्रचार करेगा! यह अधर्म प्रचार करेगा।
मगर वह आदमी भी इतने जल्दी राजी हो जाने वाला नहीं था। क्योंकि जब भी कानून बनाए जाते हैं, जब भी नियम बनाए जाते हैं, तो आदमी उनसे निकलने की कोशिश भी करता है। आदमी होशियार है। आदमी बड़ा होशियार है, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और जब तुम किसी चीज को दबाते हो तो वह दबी हुई चीज कहीं से निकलने की कोशिश करती है।
उसने पूछा--उस भिक्षु ने पूछा--कि भंते, आप ठीक कहते हैं। मगर कभी ऐसी
भी स्थिति आ सकती है कि स्त्री को देखना ही पड़े।
ऐसी दुर्घटना घट सकती है। सच तो यह है कि स्त्री को मत देखना, यह तुम
तय ही कैसे करोगे जब तक स्त्री को देखोगे नहीं? यह सीधी सी बात है कि स्त्री है कि पुरुष है, पहले तो देखना ही पड़ेगा! या फिर आंख पर पट्टी ही बांधे रखो, फिर चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, चाहे गधा हो, घोड़ा हो, कोई भी हो। मगर पुरुषों को देखने के लिए कोई इनकार नहीं कर रहे हैं बुद्ध, तो फिर आंख तो खुली रखनी ही पड़ेगी--कि यह पुरुष है, कोई बात नहीं, देखो; और यह स्त्री है, नहीं देखेंगे! मगर देख तो लिया। अब क्या होता है? चिड़िया चुग गई खेत, अब पछताए होत का! अब लाख नीची नजरें करो, मगर जो दिख गई है दिख गई। और भीतर तो झंकार पैदा कर ही गई। और भीतर तो पुकार उठ ही गई।
तो पहले तो सूत्र ही बुनियादी गलत है कि देखना मत, स्त्री को मत देखना। और फिर उस आदमी ने पूछा, मगर कोई ऐसी हालत हो सकती है कि देखना ही पड़े। समझ लो कि मैं रास्ते से जा रहा हूं, कोई स्त्री गड्ढे में गिर जाए। तो इतना तो मुझे करना ही चाहिए कि चार आदमियों को पुकार दूं कि भई, यह स्त्री गिर गई, इसको निकालो।
बुद्ध ने कहा, ऐसी विशेष अवस्थाओं में देखने में कोई हर्ज नहीं।
अब ये विशेष अवस्थाएं कौन तय करेगा? यह तो यह आदमी ही तय करेगा कि कौन
सी विशेष अवस्था है।

तो बुद्ध ने कहा, अगर देखना भी पड़े तो कोई बात नहीं, देख लेना, मगर छूना मत।
अब छूने में क्या अड़चन आ रही है? चमड़ी चमड़ी को छुए, इसमें कौन सी अड़चन हुई जा रही है? छूना मत! अब यह उन्होंने दूसरा दरवाजा बंद करने की कोशिश की कि चलो देख ली, कोई बात नहीं, मगर छूना मत। क्योंकि देख ली तो फिर छूने की इच्छा पैदा होगी।
और भारतीयों में बहुत छूने की इच्छा पैदा होती है! स्त्री देखी कि छूने की इच्छा पैदा हुई। फिर कोई न कोई मौका देख कर धक्का मार देंगे। हालांकि इस ढंग से मारेंगे कि धक्का धार्मिक मालूम पड़े। यूं मारेंगे कि जैसे अनायास लग गया। भीड़-भड़क्का में घुस जाएंगे, जहां कि धक्का मारना आसान हो। च्यूंटी ले देंगे। क्या-क्या, धार्मिक लोगों ने भी क्या-क्या चीजें खोजी हैं! अब यह भी धार्मिक आविष्कार समझो कि स्त्री चली जा रही है, उसको च्यूंटी लेना। अगर पास से न छू सकेंगे तो कंकड़ ही मार देंगे। अरे लोग चुंबन तक फेंक कर मारते हैं, कंकड़ का क्या है! दूर से ही सीटी मार देते हैं, उतने में ही प्रसन्न हो जाते हैं।
यह तुम्हारे तथाकथित पवित्र संन्यास का परिणाम है!
बुद्ध ने कहा, छूना मत।
मगर वह आदमी भी पक्का था। उसने कहा कि भंते, आप कहते हैं तो ठीक ही कहते हैं। मगर कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है कि छूना पड़े, फिर? जैसे कि सामने ही स्त्री गिर पड़ जाए और कोई आस-पास हो ही न, उठाना पड़े। आप ही ने समझाया है--दया-भाव, करुणा, सेवा। स्त्री सामने पड़ी हो, घुटना टूट गया हो, तो क्या बच कर निकल जाना चाहिए? यह तो करुणा के विपरीत होगा।
तुम देखते हो, आदमी को कैसी तरकीबें खोजने की... हर कानून से तरकीब तो निकाल लेनी ही पड़ती है। क्योंकि कानून आंतरिक तो है नहीं, ऊपर से कोई थोप रहा है। यह बुद्ध थोप रहे हैं। वह बेचारा अपना बचाव कर रहा है, रास्ता निकाल रहा है कि ठीक है, आप कहते हैं तो ठीक है, मगर छूना पड़े किसी मजबूरी में।
बुद्ध ने कहा कि चलो, कोई बात नहीं। अगर छूना भी पड़े तो छू लेना, मगर होश रखना।
उस आदमी ने कहा, यह बात बिल्कुल ठीक है। क्योंकि होश की तो कोई बाहर से पहचान हो नहीं सकती। इसमें से उसने फिर और सवाल नहीं उठाया। यह जरा सोचने की बात है। उसने यह नहीं कहा कि ऐसा भी हो सकता है कि कभी होश खो जाए। अब क्या चिंता है? अब अदृश्य मामला हो गया। अब जी भर कर छुओ। च्यूंटी लो! रही होश की बात सो वह भीतरी बात है, उसका किसी और से क्या लेना-देना! होशपूर्वक च्यूंटी लो। होशपूर्वक धक्का मारो! होशपूर्वक घूर-घूर कर देखो! फिर उसने सवाल नहीं उठाया। उसने कहा, भंते, अब मैं जाता हूं।
तुम जिसको पवित्रता कहते हो उसमें क्या पवित्रता है? पाखंड है। आदमियों को मिथ्या होना सिखाया गया है।
और तुम यह भी कहते हो कि सदियों से इस महान देश भारत में... ।
क्या खाक महान है! सभी देशों को यह भ्रांति है जो तुमको है। तुम सोचते
हो चीन सोचता है कि तुम महान हो और चीन महान नहीं है? चीन महान देश है। तुम सोचते हो कि कोई और दूसरे देश, इंग्लैंड या जर्मनी या जापान सोचते हैं कि तुम महान हो और वे महान नहीं हैं?
हर देश को यह भ्रांति है। यह मूढ़ता, यह अहंकार सभी देशों को है। यह कोई नयी तो बात नहीं। यह हर जाति को अहंकार है, हर राष्ट्र को अहंकार है, हर समाज को, हर सभ्यता को, हर संस्कृति को, सभी को यह दंभ है कि हम महान! जरा गौर से देखो, जब हम कहते हैं हम महान, तो वस्तुतः तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो कि मैं जिस देश में पैदा हुआ हूं, गरीबदास झोलीवाले जहां पैदा हुए, वह देश महान होना ही चाहिए! अरे नहीं तो वे और कहीं पैदा न होते। जार्ज बर्नार्ड शा कहा करता था कि मैं इस सिद्धांत को नहीं मानता कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। मैं गैलीलियो से राजी नहीं, कोपरनिकस से राजी नहीं। मैं तो बाइबिल के इस सिद्धांत से राजी हूं कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है।

लोगों ने कहा कि आप हद कर रहे हैं। अब तो यह सिद्ध हो चुका है। अब तो खुद पोप भी हिम्मत नहीं कर सकता कहने की यह कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। अब तो यह सब तरह से प्रमाणित हो चुका है कि पृथ्वी चक्कर लगाती है। बर्नार्ड शा ने कहा कि मुझे प्रमाण से क्या लेना-देना? सवाल यह है कि मैं पृथ्वी पर पैदा हुआ हूं! मेरी पृथ्वी सूरज का चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज को ही पृथ्वी का चक्कर लगाना होगा। बर्नार्ड शा जहां पैदा हुआ है! यह वह मजाक कर रहा है। वह मजाक कर रहा है गरीबदास झोलीवाले से। जहां तुम पैदा हुए हो... अब यही गरीबदास झोलीवाले अगर मुसलमान होते तो इसलाम धर्म महान धर्म! अभी हिंदू धर्म महान धर्म। तब अरब महान देश।
कल रात मैं एक गीत सुन रहा था। गीत में एक कड़ी आती है जिसमें गायक परमात्मा से कह रहा है कि अभी मुझे बहिश्त देखने की कोई आकांक्षा नहीं। अभी तो मेरी आंखें मदीने की तरफ लगी हैं। अभी स्वर्ग के तमाशे देखने की मुझे कोई इच्छा नहीं। अभी तो मेरी आंखें मदीने की तरफ लगी हैं। मदीना! दूसरी पंक्ति उस गीत में आती है कि इस पृथ्वी पर केवल वही भूमि पवित्र है जहां परमात्मा के प्यारे मोहम्मद का घर है। स्वभावतः मुसलमान को यही ख्याल है--मक्का और मदीना। यही मोहम्मद के निवास स्थान रहे। तो जहां परमात्मा के प्यारे का घर है, उस मिट्टी का जर्रा-जर्रा भी बहिश्त से बेहतर है, स्वर्ग से बेहतर है।
यह अहंकार! अब समय आ गया कि हम समझें--पृथ्वी एक है। यह भारत महान देश, जहां देवता पैदा होने को तरसते हैं! यह मक्का-मदीना, जहां परमात्मा के प्यारे का घर है! और यह जेरुसलम, जहां जीसस चले, उठे-बैठे, शिक्षा दी। यह बोधगया, जहां बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ। और यह काशी, त्रिलोक से न्यारी! है भी निराली। ऐसी गंदी कोई जगह खोजना मुश्किल। और जिस तरह का तमाशा काशी में इकट्ठा है, कहीं और है भी नहीं। रांड, भांड और सांड इकट्ठे हैं। और तो वहां क्या है? है त्रिलोक से न्यारी। सड़कों से गुजरना मुश्किल! सांड विश्राम करते हैं बीच सड़कों पर। एक तो सड़कें काशी की कोई सड़कें नहीं, गलियों से गई-बीती। और फिर सांड विराजमान हैं! सांड यानी नंदी बाबा। उनको हटा भी नहीं सकते। हटाओ, झगड़ा हो जाए। गौमाता विराजमान हैं बीच रास्ते पर। मैं तो एक बार काशी गया और मैंने कहा अब दुबारा नहीं आना है। यह क्या बेहूदगी है? गौमाता बैठी है, हार्न बजाते रहो, वह हट ही नहीं रही। और काशी की गौएं, वे कोई साधारण गौएं हैं! और सांडों को क्या फिक्र पड़ी कि तुम्हारी कार को निकलना चाहिए।
लेकिन ये भ्रांतियां कहां टिकी हैं? सबकी भ्रांतियां। इनका टिकाव अहंकार पर है। कोई देश महान नहीं है और कोई देश हीन नहीं है। कोई जाति महान नहीं है, कोई जाति हीन नहीं है।
महंत गरीबदास पूछते हैंः "पर न जाने क्यों आप और आपके संन्यासी संन्यास की पवित्रता को नष्ट करने में लगे हैं।"
संन्यास के पाखंड को नष्ट करने में लगे हैं, पवित्रता को नहीं। संन्यास को पवित्रता दे रहे हैं। मुर्दा सड़ी लाश को जीवन दे रहे हैं।
दुर्गंध उठती लाश को रूपांतरित कर रहे हैं। क्योंकि मेरे संन्यास का अर्थ हैः जीवन को जीने की कला। जीवन का त्याग नहीं, बल्कि जीवन में अहोभाव। परमात्मा की यह जो अदभुत अनुकंपा तुम पर हुई है कि जीवन दिया, इस अनुकंपा के लिए धन्यवाद।
जीवन पाठशाला है। पाठशाला में कठिनाइयां हैं, सवाल हैं, समस्याएं हैं। मगर वे इसलिए हैं, ताकि तुम उन समस्याओं को पार करना सीख सको; ताकि तुम उन समस्याओं की सीढ़ियां बना सको और उनका अतिक्रमण कर सको। जीवन को ठीक से जीकर ही कोई मुक्त हो सकता है। जीवन को परिपूर्णता से जीने वाला ही केवल मुक्त होता है। भगोड़े कभी मुक्त नहीं होते। भगोड़े बंधे ही रह जाते हैं। फिर तुम्हारी मर्जी, चाहो भगोड़ों को रणछोड़दास जी कहो।
क्या-क्या मजा है! मेरे गांव में एक मंदिर है, जिसका नाम रणछोड़दास जी
का मंदिर है। मैंने उसके महंत को कहा कि कम से कम यह नाम तो बदल दो। रणछोड़दास जी का मतलब क्या होता है? कि जो रण को छोड़ भागे!
उसने कहा, आपके दिमाग में भी न मालूम कहां-कहां की बातें आ जाती हैं।
मुझे जिंदगी हो गई यह रणछोड़दास जी की सेवा करते-करते, मुझे कभी यह सवाल ही

नहीं आया। अब आपने एक अड़चन कर दी खड़ी। अब जब भी मैं रणछोड़दास जी शब्द को सुनूंगा--और वह मंदिर की प्रतिमा भी कृष्ण की है, मगर रणछोड़दास जी की प्रतिमा कही जाती है; क्योंकि कृष्ण एक दफा भाग खड़े हुए थे रण छोड़ कर--तो अब मुझे अड़चन खड़ी कर दी।
उसने कहा कि तुम भैया यहां आया ही मत करो। तुम जब आते हो, कोई झंझट खड़ी
कर जाते हो। अब मैं पूजा भी करूंगा तो मुझे लगेगा, यह मैं क्या कर रहा हूं-- रणछोड़दास जी!
अच्छे-अच्छे नाम देकर हम थोथी-थोथी बातों को छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। मैं नहीं मानता हूं यह बात कि महावीर और बुद्ध ने और शंकराचार्य ने और नागार्जुन ने जीवन को छोड़ कर अच्छा किया। काश, बुद्ध-महावीर, शंकराचार्य, नागार्जुन जैसे लोग जीवन में समग्रता से जीते, तो इस देश के जीवन में आज गरिमा होती, गौरव होता! इस जीवन में ज्यादा सुगंध होती, ज्यादा संगीत होता! स्वभावतः अगर हमने बुद्ध को जीवन जीते देखा होता तो हम कला सीखते जीवन की। मगर ये सब भाग गए।
भगोड़ेपन में मैं कोई पवित्रता नहीं देखता हूं। एक तरह की कमजोरी और
एक तरह की भीरुता जरूर देखता हूं। इसलिए, गरीबदास, यह मत कहो कि मेरे संन्यासी संन्यास की पवित्रता नष्ट कर रहे हैं। मेरे संन्यासी संन्यास को पहली दफा पवित्रता दे रहे हैं, क्योंकि जीवन दे रहे हैं। और जीवन से ज्यादा पवित्र क्या है? मौत को तुम समझते हो पवित्रता?
त्याग नहीं है पवित्रता। जीवन को आनंद से, रस से जीना पवित्रता है। यही हमारी असली परिभाषा हैः रसो वै सः! परमात्मा रस-रूप है। तो जीवन को जो रसिक भाव से जीता है, उसके सारे सौंदर्य को संवेदना से जीता है, वही संन्यासी है।
पूछ रहे हैं गरीबदासः "इससे आप लोगों को क्या मिल जाएगा?"
सब कुछ मिल जाएगा--परमात्मा, सत्य, आनंद, मोक्ष। खोएगा तो पाखंड खोएगा,
जो कि खोना चाहिए। खोएगा तो भगोड़ापन खोएगा, जो कि खोना ही चाहिए। काफी समय हो गया। बहुत हो चुकी यह बकवास संन्यास के नाम पर। यह बंद होनी चाहिए। खोने को कुछ भी नहीं है, पाने को सब कुछ है।
धर्म को मैं नयी परिभाषा देना चाहता हूं। क्योंकि पुराने धर्म की परिभाषा ने दस हजार साल में किया क्या? आखिर हिसाब तो लगा कर देखो। आदमी अब भी विक्षिप्त है। आदमी अब भी हिंसक है। आदमी अब भी उन्हीं उपद्रवों में जड़ा हुआ है जिनमें पहले जड़ा हुआ था। कोई फर्क नहीं हुआ।
बुद्ध और महावीर लोगों को समझाते हैंः चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ न बोलो, व्यभिचार न करो। जाहिर है कि लोग व्यभिचार कर रहे थे, झूठ बोल रहे थे, बेईमानी कर रहे थे। नहीं तो शिक्षा देने की क्या जरूरत? पुराने से पुराने शास्त्र यही कहते हैं। और वही आज भी जारी है। जिसको तुम सतयुग समझते हो, उस सतयुग के शास्त्र भी लोगों को यही समझाते हैं जो आज समझाने की जरूरत है। अगर तब भी दवा यही बांटी जा रही थी जो अभी बांटी जा रही है, तो एक बात साफ है कि बीमारी तब भी यही थी, बीमारी अब भी वही है। यह सतयुग में और कलियुग में कोई खास फर्क नहीं पड़ गया है।
कुछ करने का वक्त आ गया, काफी हो गया। प्रयोग तुमने करके देख लिया तुम्हारे संन्यास का। मेरे संन्यास का प्रयोग भी होने दो। मेरे संन्यास से इतनी घबड़ाहट क्यों पैदा हो रही है? अगर तुम सत्य हो तो तुम जीतोगे। इतनी घबड़ाहट क्या है? इतनी बेचैनी क्या है? सारा मुल्क इतना परेशान क्यों हुआ जा रहा है? सारे संत-महंत-महात्मा इतने क्यों डांवाडोल हुए जा रहे हैं? अगर मैं गलत हूं तो गलत तो हार ही जाएगा। तुम्हारे शास्त्र कहते हैंः सत्यमेव जयते।
लेकिन तुम्हें डर पैदा हो रहा है कि सत्य तुम्हारे साथ नहीं है। मुझे कोई डर नहीं है। तुम्हारे संतों-महंतों की तो भीड़ बड़ी है, पुरानी है। परंपरा का सहारा है, शास्त्रों का सहारा है। मेरे संन्यासी तो नये हैं, अभी-अभी खिले हुए फूल जैसे हैं, कोमल हैं। भय होना चाहिए मुझे। उनकी तो कोई सुरक्षा नहीं है। लेकिन मुझे कोई भय नहीं है, क्योंकि मैं मानता हूं कि सत्य को भय का कोई कारण नहीं। असत्य हारने ही वाला है।

और तुम अंततः पूछते होः "क्या इस पवित्र संन्यास का कुछ भी योगदान नहीं रहा, ऐसा आप लोग समझते हैं?"
नहीं, योगदान तो बहुत रहा। नहीं तो इस देश की इतनी दरिद्रता, भुखमरी, गुलामी, मूढ़ता, अंधविश्वास, ये कहां से आते? योगदान तो बड़ा रहा! गजब का रहा! क्या-क्या नहीं दिया तुम्हारे संन्यास ने और तुम्हारे धर्म ने! इस देश को सब तरह की सड़ांध दी, गंदगी दी। तुमने समझाया लोगों को कि यह भाग्य है अगर तुम गरीब हो। तुमने समझाया लोगों को कि अगर तुम गुलाम हो तो यह तुम्हारी नियति है, कुछ भी किया नहीं जा सकता; भोग लो, संतोष से भोग लो जो कुछ भी हो रहा है। जब कि यह बात बिल्कुल गलत है।
अमरीका तीन सौ वर्षों में--केवल तीन सौ वर्षों में--समृद्धि के शिखर
पर पहुंच गया। और तुम दस हजार वर्षों में रोज-रोज गरीबी के गर्त में गिरते चले गए। जरूर तुम्हारे तथाकथित पवित्र संन्यास ने और तुम्हारे तथाकथित धर्म ने बड़ा दान दिया। गड्ढा खोदते ही गए तुम, कि भैया, और नीचे उतरो! कब्र खोदते ही गए तुम इस देश की। आदमियों को तुम गड़ाते ही गए। दस हजार साल में भारत विज्ञान के शिखरों को छू सकता था। हम पहले आदमी हो सकते थे जो चांद पर पहुंचते। हम पहले व्यक्ति होते दुनिया में जिन्होंने अणु का और उदजन बम का राज खोजा होता। क्योंकि दस हजार साल की प्रतिभा! लेकिन तीन सौ साल की केवल छोटी सी परंपरा, अमरीका ने चांद पर आदमी को खड़ा कर दिया, समृद्धि के शिखर छू लिए।
और फिर भी तुम पूछते हो कि तुम्हारा योगदान नहीं रहा?
जरूर रहा। विज्ञान को तुमने पैदा नहीं होने दिया। क्योंकि जब संसार माया है तो विज्ञान खड़ा कैसे हो सकता है? कोई संसार में यथार्थ ही नहीं है, सब झूठ ही झूठ है, तो विज्ञान का प्रयोजन ही क्या है? विज्ञान तब ही खड़ा हो सकता है, जब संसार सत्य हो। लेकिन तुम्हारे शंकराचार्य समझाते हैंः ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या। ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। ये आधारशिलाएं बन गईं अवैज्ञानिकता की। अब जब मिथ्या ही है तो इसमें खोजना क्या है? जब है ही नहीं, मृग-मरीचिका है, तो खोज कर भी क्या पाओगे?
संसार सत्य है, ब्रह्म भी सत्य है--यह मेरी उदघोषणा है। और संसार और ब्रह्म पृथक नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ब्रह्म संसार की ही गहराई है। ब्रह्म संसार की ही अंतरात्मा है। जैसे तुम्हारी देह में आत्मा छिपी है, ऐसे ही इस विराट विश्व के अंतरतम में ब्रह्म छिपा है। यह विराट ब्रह्म उसका ही विस्तार है। यह ब्रह्मांड ब्रह्म का ही विस्तार है।
कौन है जिम्मेवार इस देश में विज्ञान की हत्या के लिए?
शंकराचार्य जैसे लोग जिम्मेवार हैं। ये सब अदालत में खड़े किए जाने वाले लोग हैं, जिनको अदालत के सामने जवाब देना चाहिए। बहुत हो चुकी पूजा। अगर हमें इस देश को रूपांतरित करना हो तो हमें सारे आधार बदलने होंगे। जितने भी प्रतिभाशाली लोग इस देश में पैदा हुए उन सारे प्रतिभाशाली लोगों को हमने भगोड़ापन सिखाया। तो प्रतिभा तो भाग गई। प्रतिभा तो जंगलों में चली गई। प्रतिभा तो बांझ रह गई। और बुद्धुओं के हाथ में देश पड़ गया। बुद्ध जंगल चले गए। महावीर जंगल चले गए। शंकराचार्य भाग गए। माया है तो भागना ही पड़ेगा, करना क्या माया में रह कर! ये ही प्रतिभा थे। ये नवनीत थे। इनकी ही प्रतिभा से आइंस्टीन और रदरफोर्ड और एडीसन और न्यूटन पैदा हो सकते थे। लेकिन यह नहीं हो सका। और जब तुम गरीबी में सड़ते हो और भुखमरी में दबे हो, तब भी होश नहीं आ रहा है। तब भी वही बकवास जारी है। गरीबों को वही अफीम पिलाए जा रहे हो कि यह तुम्हारा भाग्य है, झेल लो, शांति से झेल लो, संतोष से झेल लो। यह मनुष्य को दीन बनाने की प्रक्रिया है।
नहीं, यह मैं नहीं कहता, गरीबदास, कि योगदान नहीं रहा तुम्हारे तथाकथित पवित्र संन्यास का। बड़ा योगदान रहा। दस हजार साल में तुमने इस देश की हत्या कर डाली। और अब भी बैठे हो, अपनी-अपनी छुरी पर धार रख रहे हो और गर्दन काट रहे हो। मगर गर्दन इस तरकीब से काटी जा रही है कि जिसकी गर्दन काटी जाती है वह भी सोच रहा है कि बड़ा पवित्र कार्य हो रहा है! क्योंकि हजारों साल से उसने यही सुना है कि यह पवित्र कार्य है।

बोध से दीक्षा, आनंद किरण, दीक्षा से संन्यास। संन्यास का अर्थ हैः जीवन जीने की कला--समग्रता में, पूर्णता में। संन्यास से श्रद्धा। नहीं यजुर्वेद के इस सूत्र के अनुसार। यह सूत्र तो बड़ा चालबाजी का है। किसी बेईमान ने गढ़ा होगा।
"दक्षिणा श्रद्धाम आप्नोति। दक्षिणा से श्रद्धा पैदा होती है।"
क्या गजब की बात! दक्षिणा से अश्रद्धा भला पैदा हो जाए, श्रद्धा पैदा नहीं हो सकती। लेकिन लोगों को समझाना पड़ेगा कि दक्षिणा से श्रद्धा पैदा होगी, तभी तो लोग देंगे, तभी तो दान करेंगे। नहीं तो ब्राह्मण को देगा कौन? पुरोहित को देगा कौन? उसको लोभ देना पड़ेगा कि देख, अगर तूने दक्षिणा दी तो श्रद्धा पैदा होगी। और फिर श्रद्धा से सत्य मिलता है। तो अगर सत्य पाना हो तो दक्षिणा तो बिल्कुल जरूरी है। यह दक्षिणा इसका केंद्र है इस पूरे सूत्र का, क्योंकि दक्षिणा से श्रद्धा।
लाख उपाय करो, दक्षिणा से श्रद्धा को जोड़ न सकोगे। श्रद्धा संन्यास
से पैदा होती है। संन्यास का अर्थ हैः जीओ! कलात्मक ढंग से जीओ! ताकि जीवन तुम्हारा आनंद बन जाए, ताकि जीवन तुम्हारा उल्लास बन जाए। और जब तुम्हारा जीवन आनंद होगा, उल्लास होगा, तो श्रद्धा पैदा होगी, कि निश्चित ही परमात्मा है। उत्सव और आनंद के अतिरिक्त कोई और प्रमाण नहीं है परमात्मा का। जब तुम्हारे भीतर रसधार बहेगी, तभी तुम राजी हो सकोगे--रसो वै सः! तुम्हारे तथाकथित साधु-संत सूखे-साखे हैं। न कोई रस, न कोई काव्य, न कोई संगीत, न कोई उल्लास, न कोई आनंद। मुर्दों की तरह सिकोड़ कर अपने को बैठे हैं। बस उनकी कुल कला इतनी है कि अपने को ही रस्सियों में बांध लिया और जंजीरों में बांध लिया है। अपनी आंखें फोड़ ली हैं कि कहीं स्त्री न दिखाई पड़ जाए; कान फोड़ लिए हैं कि कहीं संगीत न सुनाई पड़ जाए; हाथ काट लिए हैं कि कहीं किसी स्त्री को छूने की इच्छा पैदा न हो जाए। सब तरह अपंग होकर बैठे हैं। इन अपंगों को श्रद्धा पैदा होगी?
लेकिन पुरोहित समझा रहा है कि दान करो, दक्षिणा करो--और मुझे करो--तो श्रद्धा पैदा होगी! और ध्यान रखना, अगर श्रद्धा पैदा नहीं हुई, सत्य से चूक जाओगे।
मैं नहीं राजी हो सकता इस बात से। यही तो सारा का सारा जाल है--सारे पुरोहितों का। हिंदुओं का ही नहीं, जैन हों पुरोहित कि बौद्ध हों कि ईसाई हों कि मुसलमान हों, कोई फर्क नहीं पड़ता। सारे धर्मों का मौलिक शोषण एक जैसा है। तरकीब वही है।
मैं कहूंगाः संन्यास से श्रद्धा। जब तुम्हारे जीवन में आनंद की किरण उतरेगी, तब स्वभावतः इस अस्तित्व के प्रति तुम्हारे मन में कृतज्ञता का बोध पैदा होगा। तुम अनुग्रह अनुभव करोगे कि मेरी कोई पात्रता न थी और मुझे इतना अपूर्व जीवन मिला! मैंने कुछ कमाया न था, फिर भी अस्तित्व ने मुझे कितना दिया! मेरी कोई पात्रता न थी, फिर भी मुझ पर स्वर्ण की वर्षा हुई! हीरे-जवाहरात गिरे! मैं ना-कुछ था, लेकिन अस्तित्व ने मुझे सब कुछ दिया! इस अनुभव से ही श्रद्धा पैदा होती है--अस्तित्व के प्रति श्रद्धा।
और निश्चित ही श्रद्धा से सत्य उपलब्ध होता है। उस आखिरी वचन से मैं राजी हूं। लेकिन वे तीन वचन उस आखिरी वचन तक नहीं ले जाते।
"श्रद्धया सत्यम आप्यते।"
यह बात सत्य है। मगर वे तीन चरण इस मंदिर तक नहीं आते हैं। वे तीन सीढ़ियां इस द्वार तक नहीं पहुंचती हैं। ये सीढ़ियां चाहिए--बोध से दीक्षा, दीक्षा से संन्यास, संन्यास से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति।

दूसरा प्रश्नः ओशो, हमारे सामने ही आपने बुद्ध, महावीर और कृष्ण की प्रतिमाओं में मनोहारी रंग भरे थे। उनके प्रति अहोभाव से हमें भर दिया था। और अभी-अभी आप उन्हीं प्रतिमाओं का बड़ी बेरहमी से खंडन कर रहे हैं। मूर्तियां बनाने एवं तोड़ने के दोनों कृत्य आप क्यों कर रहे हैं? क्या इन मूर्तियों द्वारा अमूर्त की यात्रा अब असंभव हो गई है या कि आप हमें अपने आप के प्रति लौटने पर मजबूर कर रहे हैं?

आनंद वीतराग, यह सत्य है कि मैंने बुद्ध, महावीर और कृष्ण की प्रतिमाओं में मनोहारी रंग भरे थे। इस आशा में कि तुम्हारे भीतर अहोभाव पैदा होगा।
तुम भी कहते होः "उनके प्रति अहोभाव से हमें भर दिया था।"
मगर मेरी आकांक्षा कुछ और थी। मेरी आकांक्षा थीः तुम्हें अपनी संभावनाओं के प्रति अहोभाव पैदा होगा। हुआ उलटा। तुम्हारे मन में अहोभाव पैदा हुआ बुद्ध, महावीर और कृष्ण के प्रति। और जब मैंने देखा यह कि मैं कुछ कर रहा हूं, तुम कुछ समझ रहे हो; मैं कुछ कह रहा हूं, तुम कुछ और अर्थ ले रहे हो--तो जरूरी हो गया कि मैं किसी और आयाम से काम शुरू करूं।
चाहा था मैंने कि तुम अपनी संभावनाओं के प्रति सजग हो जाओ। क्योंकि चाहा था मैंने तुम्हारे भीतर बुद्धत्व की संभावना है, इसलिए बुद्ध का बहाना लिया था और बुद्ध में मनोहारी रंग भरे थे। इसलिए कृष्ण को निमित्त बनाया था। इसलिए महावीर को बहाना... । ये खूंटियां थीं। मुझे कुछ इन खूंटियों से प्रयोजन न था। चाहा था मैंने यह कि तुम यह देख सको कि जो बुद्ध हो सके हैं, महावीर हो सके हैं, कृष्ण हो सके हैं, वह तुम भी हो सकते हो। तुम्हारे भीतर तुम्हारी साधारणता में असाधारणता छिपी है। कोई बुद्ध की विशिष्टता नहीं है। बुद्ध होना तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यह मेरी आकांक्षा थी।
लेकिन तुम्हारे भीतर उलटा हुआ। जब मैंने कृष्ण में रंग भरे तो हिंदू
मन ने दो काम लिए। एक काम तो यह किया कि उसने कहा, अहा! हमारे कृष्ण कैसे अदभुत! नहीं कोई इनका मुकाबला! अद्वितीय! तो हम ठीक ही मानते थे सदियों से कि वे पूर्ण अवतार हैं।
मैंने देखा कि तुम्हारी नजर अपने पर नहीं गई; तुम्हारी नजर परंपरा पर गई, अतीत पर गई। और मैंने यह भी देखा कि बजाय तुम अपने भीतर झांकते, तुम्हारा अहंकार मजबूत हुआ कि मैं हिंदू हूं, कि मैं जैन हूं, कि मैं बौद्ध हूं, कि मैं सिक्ख हूं--और देखो हमारे गुरु महावीर ऐसे महान, हमारे गुरु नानक ऐसे महान, हमारे गुरु कृष्ण ऐसे महान। तुम्हारा अहंकार बढ़ा और मुर्दा अतीत के प्रति तुम्हारा सम्मान बढ़ा। जब मैंने देखा कि तुम्हारी तंद्रा में, तुम्हारी निद्रा में तुम कुछ का कुछ सुन रहे हो, तो मुझे अपनी प्रक्रिया बदल देनी पड़ी।
मुझे न कृष्ण से कुछ लेना है, न बुद्ध से कुछ लेना है, न महावीर से। और
यह भी मैं तुमसे कह दूं कि वे जो रंग मैंने कृष्ण में भरे थे, वे जरूरी नहीं है कि कृष्ण का अंग रहे हों। वे रंग मैंने भरे थे। रंग भरने का प्रयोजन और था, कृष्ण से कुछ संबंध न था। कृष्ण तो केवल कैनवास थे, रंग मेरे थे। इसलिए जब चाहूं अपने रंग विदा कर सकता हूं। वे जो रंग मैंने बुद्ध में भरे थे, मैंने भरे थे। बुद्ध का उससे कुछ लेना-देना नहीं है। रंग भरने का प्रयोजन था--बुद्ध की महानता सिद्ध करना नहीं, वरन तुम्हारी संभावना के प्रति तुम्हें सचेत करना। जब देखा कि वह तो नहीं हो रहा है, तुम उलटा ही कर रहे हो। लोग ऐसे ही उलटे हैं। अजीब-अजीब तरह का आदमी का मन है।
मुल्ला नसरुद्दीन घर आया डाक्टर के घर से दवा लेकर। दिन में छह दफे दवा लेनी थी। सांझ होते-होते उसे चक्कर आने लगा। सिर घूमता मालूम पड़े। दुनिया घूमती हुई मालूम पड़े। वह डाक्टर के पास गया कि यह हद हो गई, मेरी बीमारी तो वैसी की वैसी है और एक नयी बीमारी मुझ पर आ गई कि दुनिया घूमती मालूम पड़ती है, सिर चकरा रहा है, खड़ा नहीं हो सकता।
डाक्टर ने कहा, यह कभी मैंने सुना ही नहीं कि इस दवा से इस तरह की कोई संभावना है। मैंने जैसा कहा था, उस ढंग से लिया या नहीं?
नसरुद्दीन ने कहा कि जिस ढंग से कहा था, बिल्कुल अक्षर-अक्षर वैसा ही अनुगमन किया है।
डाक्टर ने कहा, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। फिर सिर क्यों घूम रहा है? दुनिया क्यों घूमती मालूम हो रही है? इस दवा में ऐसा कोई गुण ही नहीं है। नसरुद्दीन ने कहा, गुण क्यों नहीं है! इस दवा की बोतल पर साफ लिखा है
कि दवा लेने के पहले हिलाओ।
डाक्टर ने कहा, इससे इसका क्या संबंध है?

उसने कहा, इसका संबंध है। दवा लेने के पहले मैं अपने शरीर को ऐसा हिलाता हूं कि बिल्कुल चक्कर आने लगते हैं। और दिन में छह दफे हिलाना, कभी आधा घंटा, कभी घंटा भर हिलाता हूं, हिलाता ही चला जाता हूं। उलटी करने का मन होता है। यह दवा तो एक झंझट है।
दिन में छह घंटे अपने को हिलाओ, हलाकान करो, तो स्वभावतः दुनिया घूमती हुई मालूम पड़ेगी। दवा लेने के पहले हिलाना--अब इसका मतलब मुल्ला नसरुद्दीन ने क्या लिया!
मतलब तो तुम लोगे। और तुम्हारे मतलबों ने मुझे बदलाहट के लिए मजबूर
कर दिया। इसलिए अब मैंने रंग खींचने शुरू कर दिए, क्योंकि मैं चाहता हूं कि तुम्हें साफ हो जाए कि बुद्ध पर नजर नहीं गड़ानी, अपने पर नजर लानी है। कृष्ण पर बहुत चढ़ चुके पूजा के फूल और महावीर के चरणों में बहुत सिर झुकाए जा चुके। मगर ये सब मुर्दा अतीत हैं। तुम्हें अपने भीतर के जीवन-तत्व को पहचानना है।
इसलिए जैसे मैंने रंग भरे थे, वापस निकालने शुरू कर दिए। रंग भरने में
भी यही प्रयोजन था। मेरा प्रयोजन नहीं बदला है। मेरा लक्ष्य वही का वही है। लेकिन प्रक्रिया बदल गई। रंग भी इसलिए भरे थे कि तुम अपने को देखो। नहीं तुम देख सके तो अब रंग निकाल रहा हूं, ताकि कैनवास खाली हो जाए और तुम्हें मजबूरी में अपने को देखना ही पड़े। कुछ और देखने को बचने ही नहीं दूंगा। कहीं और तुम्हारी पूजा के फूल चढ़ें, इसका उपाय नहीं छोडूंगा; ताकि तुम्हें कोई भी अपने से भाग निकलने का रास्ता न मिले। अपने में ही बिठा देना है तुम्हें।
इसलिए मूर्तियां मैंने बनाईं और मूर्तियां तोड़ रहा हूं। जिस प्रयोजन
से बनाई थीं उसी प्रयोजन से तोड़ रहा हूं। निश्चित ही अमूर्त की यात्रा करनी है। मूर्तियां यूं थीं जैसे अंगुलियां चांद की तरफ इशारा करती हों। लेकिन जब मैंने देखा तुम अंगुलियां ही पकड़ लिए, और कुछ जो बहुत नासमझ थे वे अंगुलियों को चूसने भी लगे, तो मुझे अंगुलियां वापस लेनी पड़ीं।
चांद दिखाना है, अंगुलियों से कुछ प्रयोजन नहीं। बुद्ध भी अंगुली हैं, महावीर भी अंगुली हैं, कृष्ण भी अंगुली हैं। गीता भी, कुरान भी, बाइबिल भी। मैंने चाहा था कि ये सब अंगुलियां तुम्हें चांद दिखाने के काम में आ जाएं। लेकिन तुम अंगुलियों को पकड़ते हो।
ईसाई प्रसन्न होता है, अगर मैं बाइबिल के किसी सूत्र का समर्थन कर देता हूं, आह्लादित हो जाता है। मैं कुछ इसके ईसाई अहंकार को आह्लादित करने के लिए यहां नहीं बैठा हूं। अगर मैंने देखा कि इसका ईसाई अहंकार आह्लादित हो रहा है तो मैं जीसस पर चोट करूंगा। क्योंकि उसके सिवाय इसका गुब्बारा फूटेगा नहीं। असल में मैं इसकी ही पिटाई कर रहा हूं। मगर इसकी पिटाई का एक ही उपाय है कि किसी तरह, इसके मन में जो जीसस की प्रतिमा बन गई है, वह खंडित कर दी जाए। मैं कोई जीसस का दुश्मन नहीं।
न मेरी किसी से मैत्री है और न मेरी किसी से दुश्मनी है। प्रयोजन साफ हैः तुम जागो। जिस भांति भी होगा तुम्हें जगाऊंगा। अगर मूर्तियों से जग सकते हो तो ठीक, मुझे कुछ एतराज नहीं। और अगर मूर्तियों से नहीं जग सकते तो मूर्तियों को हथौड़ी से लेकर तोड़ ही देना पड़ेगा, खंड-खंड बिखेर देना होगा। शायद मूर्ति के टूटने से तुम जागो। मगर मेरा प्रयोजन सुनिश्चित एक है। मेरी विधियां कितनी ही बदल जाएं, मंडन करूं कि खंडन, समर्थन करूं कि विरोध, मगर लक्ष्य सुनिश्चित रूप से एक हैः तुम्हारे भीतर जो सोई हुई आत्मा है, वह जागनी चाहिए। तुम्हारे भीतर जो प्रसुप्त अग्नि है, प्रज्वलित होनी चाहिए। तुम्हारे भीतर जो परमात्मा छिपा है, अभी आच्छादित है, उसे अनाच्छादित करना है।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
सातवां प्रवचन

धर्म-अधर्म के पारः कोरा आकाश

पहला प्रश्नः ओशो, आपने अपने संन्यासियों के लिए हजारों-हजार नाम चुने हैं--एक से एक सुंदर नाम। लेकिन पिछले दिन मैं एक नाम देख कर चकित रह गया, वह नाम हैः स्वामी वीत धर्म। अब तक तो यही समझा जाता था कि धर्म को उपलब्ध होना है। अब क्या धर्म का भी अतिक्रमण करना है? यदि हां, तो कृपया बताएं कि उसके पार क्या है?

आनंद मैत्रेय, धर्म औषधि है। औषधि का उपयोग तब तक है जब तक रोग है। रोग गया, औषधि व्यर्थ हुई। लेकिन यह खतरा है कि रोग तो छूट जाए और औषधि से हमारा बंधन हो जाए; औषधि को हम पकड़ लें; औषधि की ही पूजा करने लगें। और तर्कयुक्त भी मालूम होगा, क्योंकि जिस औषधि के कारण रोग गया उस औषधि के प्रति स्वभावतः कृतज्ञता का बोध पैदा होता है। इसलिए औषधि को पकड़ रखने का खतरा सदा है और उससे सचेत होना आवश्यक है। रोग तो छोड़ना ही है, औषधि भी छोड़नी है।
धर्म है मार्ग। मंजिल मिल गई, फिर मार्ग का क्या प्रयोजन? मंजिल को पा लेने के बाद भी क्या मार्ग को सिर पर ढोना है?
गौतम बुद्ध एक प्रीतिपूर्ण कथा कहते थे। वे कहते थेः पांच मूढ़ों ने नाव में सवार होकर नदी पार की। खतरा था अगर उस पार रह जाते तो। रात उतर रही थी। जंगली जानवरों का भय था। जीवन-मृत्यु का सवाल था। नाव बड़े काम आई। नाव ने जीवन बचाया। मूढ़ों ने सोचा, जिस नाव ने जीवन बचाया, क्या अब उस नाव को यूं ही छोड़ कर चल पड़ें? यह बात उचित न लगी। उन पांचों मूढ़ों ने नाव को अपने कंधों पर उठाया। लोगों ने देखा तो पूछा, यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, जिस नाव ने हमारे जीवन को बचाया, उस नाव को हम कभी नहीं छोड़ सकते। अब तो इस नाव को हम सदा ढोएंगे। अब तो यह नाव हमारे सिर पर रहेगी।
माना कि नाव से नदी पार हुई और यह भी माना कि धन्यवाद दे दो नाव को, मगर नाव को कंधों पर ढोते रहोगे तो बात मूढ़तापूर्ण हो जाएगी।
और बुद्ध की कथा करीब-करीब पूरी मनुष्य-जाति के संबंध में सत्य है। लोग नाव को ढो रहे हैं। और मजा तो ऐसा है, उन नावों को भी ढो रहे हैं जिन्होंने तुम्हें पार भी नहीं किया। वे मूढ़ तो फिर भी तुमसे कम मूढ़ थे, कम से कम नाव ने पार तो किया था। लेकिन तुम हिंदू हो या मुसलमान हो या ईसाई हो या जैन हो, इन नावों ने तुम्हें पार किया है? सिर्फ पार करने का आश्वासन दिया है। और ये नावें तुम्हें पार कर सकेंगी? क्योंकि ये कागज की नावें हैं, शास्त्रों की नावें हैं, सिद्धांतों और शब्दों की नावें हैं। इनसे कोई कभी पार हुआ है?
क्या तुम सोचते हो महावीर जैन धर्म के कारण पार हुए? क्या तुम सोचते
हो जीसस ईसाई धर्म के कारण पार हुए? जीसस को तो ईसाई धर्म का पता भी नहीं था, नाम भी नहीं सुना था। क्या तुम सोचते हो कि बुद्ध बौद्ध धर्म के कारण पार हुए? लेकिन जो धर्म बुद्ध के पीछे बना, जो धर्म जीसस के पीछे बना, ये बुद्ध और जीसस ने नहीं बनाए धर्म, ये पंडित और पुरोहितों ने बनाए।
जीसस का धर्म-संस्थापक था पीटर--जीसस का एक शिष्य। मगर यह पीटर जब जीसस को सूली लगी तो भाग गया था। सिंहासन मिलता तो साथ होता, सूली लगी तो भाग गया, छिप रहा। और इसी पीटर ने--यह पहला पोप था--इसी पीटर ने जीसस धर्म की आधारशिला रखी।
महावीर ने जैन धर्म की आधारशिला नहीं रखी, महावीर के ग्यारह गणधरों ने। और जान कर तुम चकित होओगे कि महावीर क्षत्रिय थे और जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। जैन धर्म वस्तुतः ब्राह्मण धर्म और ब्राह्मण धर्म से हो रहे शोषण के विद्रोह में एक बगावत थी, उनके खिलाफ एक क्रांति थी। लेकिन महावीर के ग्यारह ही गणधर ब्राह्मण पंडित थे। उन्होंने बगावत पर पानी फेर दिया। उन्होंने क्रांति की आग बुझा दी। जहां अंगारे थे वहां राख रह गई। उसी राख से जैन धर्म बना।

ऐसे ही बुद्ध धर्म बना। ऐसे ही सारे धर्म बने। जिन्होंने जाना उन्होंने इन्हें नहीं बनाया। इन्हें बनाने वाले और ही लोग थे--जिन्होंने अवसर न चूका; जिन्होंने देखा कि बुद्ध की साख के आधार पर करोड़ों लोगों को चूसा जा सकता है; जिन्होंने देखा कि महावीर के नाम की आड़ में बड़ा मौका है, बड़ा अवसर है पांडित्य का, पौरोहित्य का; जिन्होंने देखा कि जीसस के कंधे पर बंदूक रख कर खूब शिकार की जा सकती है--इन लोगों ने धर्म निर्मित किए। अंधों ने धर्म निर्मित किए हैं।
निश्चित ही इन धर्मों के पार जाना है। ये कागजी नावें हैं। तुम्हें पार भी नहीं ले जा सकतीं। ये तुम्हें पार ले भी नहीं गई हैं। सच तो यह है, इन्होंने तुम्हारी जंजीरें ढाली हैं। इन्होंने तुम्हारे कारागृह निर्मित किए हैं। हिंदू होना कोई गौरव की बात नहीं, न मुसलमान होना कोई गौरव की बात है। यह तो सिर्फ इस बात की घोषणा है कि तुम परतंत्र हो, कि तुम एक मानसिक गुलामी में हो, कि तुम्हें इतना भी आत्म-गौरव नहीं है कि कह सको कि मैं सत्य को स्वयं खोजूंगा। सत्य भी तुम्हारा उधार है, बासा है, सदियों पुराना है। कब का सड़ गया है, कब का मर गया है। तुम मुर्दों के पूजक हो। तुम मुर्दों के ढेर हो। तुम कब्रों पर दीये जला रहे हो। तुम मजारों पर फूल चढ़ा रहे हो।
तो पहला तो धर्म का जो सामान्य अर्थ है, मजहब, उसके पार जाना है। निश्चित ही सत्य के खोजी को जब तक सत्य न मिल जाए तब तक किसी भी धर्म में अपने को बांधना सत्य के मार्ग में अवरोध खड़ा करना है। सत्य को खोजने की पहली शर्त हैः पक्षपातरहित होना। और जब तुमने पहले से ही किसी धारणा, किसी सिद्धांत, किसी शास्त्र, किसी धर्म को अंगीकार कर लिया तो तुम पक्षपात से मुक्त कैसे रहोगे? तुमने विश्वास कर लिया तो तुम सत्य को खोजोगे कैसे? खोजने के पहले ही मान लिया, तब खोजने को बचा क्या?
जिसे सत्य को खोजना है उसके लिए किसी धर्म को मानने का कोई उपाय नहीं है। उसे समस्त धर्मों का त्याग करना पड़ेगा। उसे तो कोरे कागज की तरह शुरुआत करनी पड़ेगी। तुम्हारे चित्त के कागज पर कुछ भी लिखा हो, उस सबको पोंछ डालना पड़ेगा। क्योंकि लिखा औरों ने है, जिन्होंने लिखा है उन्हें भी पता नहीं है। तुम्हारे मां-बाप ने लिखा होगा। तुम्हारे शिक्षकों ने लिखा होगा। तुम्हारे राजनेताओं ने लिखा होगा। तुम्हारे धर्मगुरुओं ने लिखा होगा। उनके अपने न्यस्त स्वार्थ हैं।
बच्चा पैदा नहीं हुआ कि धर्मगुरु उसकी गर्दन दबाने को तैयार हो जाते हैं। इधर बच्चा पैदा हुआ कि उधर धार्मिक क्रियाकांड शुरू हुए। पैदा होने से लेकर मरने तक! तुम तो चकित होओगे यह जान कर कि कुछ धर्मों ने तो इतनी भी देर नहीं की, पैदा होने तक का भी मौका नहीं आने दिया, उसके पहले ही धर्म की शुरुआत हो जाती है।
वैदिक धर्म गर्भाधारण से शुरू होता है। दयानंद ने उसकी बड़ी प्रशस्ति
की है। बात बिल्कुल बेहूदी है, अश्लील है, अभद्र है। मगर धर्म के नाम पर सब चलता है। वैदिक धर्म की पुरानी इस प्रथा को दयानंद ने बहुत समर्थन दिया है, कि जब पति और पत्नी संभोग कर रहे हों और गर्भाधारण हो रहा हो, उसी समय धर्म का बीजारोपण हो जाना चाहिए। यह बीजारोपण कैसे होगा? पति-पत्नी संभोग कर रहे होंगे और चार पंडित चारों दिशाओं में खड़े होकर वेदोच्चार करेंगे। बेहूदगी की भी कोई सीमा होती है! यह वेदोच्चार के साथ ही गर्भाधारण होगा। कैसी जालसाजी है!
गर्भाधारण से लेकर मर जाने के बाद तक, बाप-दादे तुम्हारे मर चुके कब के, लेकिन पितृपक्ष में पंडित अभी भी तुम्हें चूस रहा है। मरों के नाम से भी चूस रहा है। पैदा जो नहीं हुए हैं उनके नाम से भी चूस रहा है। पैदा होने के पहले से मर जाने के बाद तक उसने सब तरफ से जंजीरें खड़ी कर रखी हैं। इन जंजीरों में बंधा हुआ आदमी सत्य को खोज सकता है?
सत्य की खोज की प्राथमिक शर्त एक है कि तुम्हारा कोई पक्षपात न हो, तुम्हारी कोई धारणा न हो। धारणा-शून्य होकर ही कोई सत्य की खोज में जा सकता है। सारे पक्षपातों को जला कर राख कर देना है। सारे शास्त्रों से मुक्त हो जाना है। तभी तुम अपने भीतर के शास्त्र को खोज पाओगे। तभी--केवल तभी--तुम्हारे निर्दोष चित्त में, तुम्हारे पक्षपात-शून्य चेतना के आकाश

में सत्य का सूर्य उदय होगा। अगर तुम पहले से ही किसी धारणा में बंधे हो तो तुम वही देखोगे जो तुम्हारी धारणा तुम्हें दिखा सकती है। तुम वह नहीं देखोगे जो है; तुम वह देखोगे जैसा तुम चाहते हो कि होता। तुम्हारी आंखें सत्य के दर्शन करने में असमर्थ हो जाएंगी। तुम्हारी आंखें प्रक्षेपण करेंगी। तुम्हारी धारणा को ही तुम हर जगह खोजने निकल पड़ोगे।
और ख्याल रखना कि अगर तुम्हारी कोई धारणा है तो तुम निश्चय ही अपनी धारणा का समर्थन पा लोगे। जीवन विराट है। जो यहां कांटे खोजने निकलता है उसे कांटे भी मिल जाते हैं। और जो यहां फूल खोजने निकलता है उसे फूल भी मिल जाते हैं। जो यहां झूठ खोजने निकलता है उसे झूठ भी मिल जाता है। मान कर भर चलो। मान कर भर चलना जरूरी है। जो भी तुम मानोगे वही मिल जाएगा। मनुष्य का मन स्वप्नों को भी सत्य का आभास दे सकता है।
मेरे एक शिक्षक थे। पहले ही दिन वे कक्षा में आए। मैं मैट्रिक की कक्षा का विद्यार्थी था। और उन्होंने जो प्रस्तावना दी--पहले ही दिन, नये- नये शिक्षक नियुक्त हुए थे--उसमें उन्होंने बार-बार यह दोहराया कि मैं बहुत अभय, निर्भय, भय-मुक्त व्यक्ति हूं। उन्होंने इतनी बार दोहराया कि मुझे खड़े होकर उनसे कहना पड़ा कि आपका इतनी बार दोहराना कि आप बड़े निर्भीक हैं, भय-मुक्त हैं, अभय को उपलब्ध हो गए हैं, सिर्फ एक बात की खबर देता है कि आपके भीतर गहरा भय छिपा हुआ है। अन्यथा इस बात को बार-बार दोहराने की क्या जरूरत है? जैसे कि कोई आदमी बाजार में खड़े होकर कहे कि मैं मर्द हूं, मैं नपुंसक नहीं हूं--इसका क्या मतलब होगा?
वे बहुत नाराज हो गए। नाराज इतने हो गए कि गुस्से में कंपने लगे। मैंने कहा, देखिए, इतनी सी बात से आप कंप रहे हैं। आप जरूर डरते होंगे। आप भूत-प्रेत से डरते हैं?
उन्होंने कहा, कभी नहीं! भूत-प्रेत को मैं मानता ही नहीं।
तो मैंने कहा, फिर एक छोटा सा प्रयोग कर लेना जरूरी है। मैं वह जगह जानता हूं जहां भूत-प्रेत हैं। आप राजी हैं रात भर वहां टिकने को?
उनका चेहरा फक्क हो गया, एकदम पीला पड़ गया। मगर इनकार भी न कर सके। खुद
ही अपने मुंह से कह कर फंस गए थे। बोले कि हां, मैं राजी हूं।
देखता था उनके हाथ कंप रहे हैं, चेहरा पीला पड़ गया है। तो मैंने कहा, कोई बात नहीं। देर की कोई जरूरत नहीं। आज ही रात परीक्षण हो जाए।
मेरे पड़ोस में ही एक सज्जन मिट्टी का तेल बेचने का धंधा करते थे। उनके सामने ही उनकी गोडाउन थी। एक दो-मंजिला मकान था, जिसमें खाली पीपे इकट्ठे कर रखे थे। गर्मी के दिनों में टीन के खाली पीपे गर्मी के कारण दिन भर में फैल जाते हैं और रात में सिकुड़ते हैं ठंड के कारण। सो उस घर में बड़ी आवाज होती थी। पीपों पर पीपे रखे हुए थे। तो जब पीपे सिकुड़ते तो एक पीपा सिकुड़ता, दूसरा सिकुड़ता, तीसरा सिकुड़ता--यूं आवाज सरकती चली जाती।
तो मैंने उनको कहा कि आपको पूरी व्यवस्था समझा दूं। इस घर में भूत हैं
और भूत एक पीपे में से दूसरे पीपे में जाते हैं। रात भर यह क्रम चलता है। आप इसमें दूसरे मंजिल पर सो जाएं। अगर आप रात भर इसमें बच गए तो हम मान लेंगे कि आप निर्भीक हैं।
प्राण तो उनके कंप रहे थे। मैंने मोहल्ले वालों को भी समझा दिया था कि
ये पूछताछ करें तो बताना कि भैया, बात तो सच है, भूत-प्रेत हैं। वैसे तुम्हारी मर्जी। आज तक किसी ने हिम्मत नहीं की है इस घर में सोने की। एक बार एक आदमी सोया था, फिर लौटा ही नहीं, फिर उसका पता ही नहीं चला। सुबह बहुत खोजा। कहते हैं कि वह भी भूत हो गया। वैसे आपकी मर्जी।
गांव में उन्होंने इधर-उधर भी तलाश की। जहां-जहां वे तलाश कर सकते थे, जहां-जहां उनकी पहचान थी थोड़ी-बहुत, वहां-वहां मैं पहले ही जाकर प्रचार कर आया था। जिससे भी पूछा उसी ने कहा, क्यों झंझट में पड़ते हो? अरे अपनी जान प्यारी नहीं? अपने पत्नी-बच्चों का कुछ विचार करो! बच्चे अनाथ हो जाएंगे, पत्नी विधवा हो जाएगी। कह दो कि मैं नहीं सोता। अरे ज्यादा से ज्यादा इतना सा होगा न कि बदनामी होगी कि इतने निर्भीक नहीं जितना तुम समझते हो, और क्या बिगड़ जाएगा? और इस छोकरे को समझा लो। अपनी जान इतने सस्ते में गंवानी ठीक नहीं है।

मगर वे जिद्दी आदमी थे और स्वीकार नहीं कर सकते थे। फंस गए थे। रात उन्हें मैं ले गया। उन्हें दूसरी मंजिल पर बिस्तर लगा कर सुला दिया।
और वही हुआ जो होना था। बारह बजे रात उन्होंने चिल्लाना शुरू किया, घिग्घी बंध गई, अल्ल-बल्ल बकने लगे। जीने पर आकर... किसी की समझ में ही न आए वे क्या कह रहे हैं, कौन सी भाषा बोल रहे हैं! घिग्घी जो बंध गई थी। भीड़ इकट्ठी हो गई।
मैंने उन्हें बहुत समझाया कि आप जीने से उतर कर आ जाएं! भीतर से आपने
ही तो सांकल चढ़ाई है, खोल कर बाहर निकल आएं। मगर जीने से उतरने की उनकी हिम्मत नहीं, क्योंकि जीने से उतरने के लिए उस कमरे से गुजरना जरूरी था जिसमें कि भूत-प्रेत एक कनस्तर से दूसरे कनस्तर में आ-जा रहे थे। वे हाथ जोड़ें कि यहीं से उतार लो।
सारा गांव इकट्ठा हो गया। लोग ताली पीटें, हो-हल्ला मचाएं। एक सीढ़ी लगानी पड़ी और जीने से उनको उतारना पड़ा। उतरते-उतरते ही सीढ़ी से वे गिर पड़े, बेहोश हो गए, अस्पताल ले जाना पड़ा। बामुश्किल होश में आए। मैंने कहा, देखा! भूत-प्रेत देखे? मैंने उनसे कहा कि मैं तुमसे सच कहूं, वहां कोई भूत-प्रेत नहीं है।
वे कहने लगे, मैं मान ही नहीं सकता। हैं! मुझे कभी भरोसा नहीं था, लेकिन अब मुझे पक्का भरोसा है कि भूत-प्रेत होते हैं। मेरी जो गति बनाई उन्होंने! तुम तो कहते थे कि पीपों में सरकते हैं, वे मेरी छाती पर कूदते थे, मेरी गर्दन दबाते थे। इसीलिए तो मेरी घिग्घी बंध गई थी। मैं नहीं बोल रहा था, मेरे भीतर से भूत-प्रेत अल्ल-बल्ल बोल रहे थे। मैं कुछ कहना चाहता था और कुछ निकल जाता था। अब मैं कैसे मानूं कि भूत-प्रेत नहीं हैं! भूत-प्रेत होते हैं। और मैं क्षमा मांगता हूं कि अब मैं कोई और प्रयोग करने को राजी नहीं हूं।
मजा तो यह हुआ कि सारा पड़ोस जानता था कि वहां कोई भूत-प्रेत नहीं हैं,
यह सब मैंने प्रचार किया था, जिसका मकान था, जिसके वे कनस्तर थे, उस तक ने रात उस मकान में जाना बंद कर दिया। मैंने पूछा कि तुम्हें तो लालाजी अच्छी तरह पता है!
उन्होंने कहा, अब पता का क्या करना जब प्रत्यक्ष देख लिया! अब मैं कभी
इस मकान में रात में तो नहीं जा सकता। और दिन में भी जाता हूं तो मुनीम, नौकर-चाकरों को लेकर जाता हूं। अरे भूत-प्रेतों का क्या!
जिनको मैं पड़ोस में समझा आया था कि तुम कह देना कि भूत-प्रेत हैं, वे मुझसे पूछने लगे, तुम्हें पता कैसे चला? क्योंकि हमें यहां जिंदगी हो गई रहते, हमें कभी भूत-प्रेतों का पता नहीं चला, तुमने ही बताया। मैंने कहा, कोई भूत-प्रेत नहीं। अरे, वे कहने लगे, छोड़ो। अपनी आंख से देखा। कोई कान से नहीं सुना है। कान की सुनी बात झूठ हो सकती है, आंख की देखी बात तो झूठ नहीं हो सकती। उस बेचारे गरीब आदमी पर जो गुजरी, सारे गांव ने देख लिया।
उस मकान का नाम भूत-बंगला हो गया। उस मकान का बिकना मुश्किल हो गया। उसका कोई खरीदने वाला न रहा। उस मकान के मालिक लालाजी मुझसे कहने लगे, अब तुम ही इस मकान को ले लो। मुफ्त ले लो। और कुछ पैसा चाहिए हो तो ऊपर से वह ले लो। मगर मैं इस मकान से अब कोई संबंध नहीं रखना चाहता।
वह भुतहा मकान अब भी खाली है। अब उसमें कनस्तर भी नहीं हैं। उसमें कनस्तर रखने कौन जाए! निकालने कौन जाए!
आदमी के मन की यह संभावना है कि वह जो मान ले, चाहे ऊपर-ऊपर से इनकार करे, अगर भीतर से भी मान ले, तो सच हो जाएगा। यूं ही तुम्हें कृष्ण के दर्शन होते हैं और यूं ही तुम्हें क्राइस्ट के दर्शन होते हैं। और यूं ही तुम्हारे सामने काली मां प्रकट होती हैं और गणेश जी प्रकट होते हैं। सब तुम्हारी मन की धारणाएं हैं। सब तुम्हारा आत्म-सम्मोहन है।
सत्य की खोज के लिए पहली बुनियादी शर्त है कि तुम मन के प्रक्षेपण की सारी संभावना को बंद कर दो। मन में कोई धारणा नहीं होनी चाहिए, कोई मान्यता नहीं होनी चाहिए।
इसलिए वीत धर्म का पहला तो अर्थ है, आनंद मैत्रेयः हिंदू न रहो, ईसाई न रहो, जैन न रहो, बौद्ध न रहो। तो संभावना है कि एक दिन तुम महावीर हो सको और एक दिन तुम बुद्ध हो सको और एक दिन तुम जीसस की चेतना को उपलब्ध हो सको।

ईसाई कभी भी जीसस की चेतना को उपलब्ध नहीं हो सकता और जैन कभी महावीर की वीतरागता को उपलब्ध नहीं हो सकता। असंभव है। महावीर ने किसी धारणा से शुरुआत नहीं की। महावीर ने मौन से यात्रा शुरू की।
मौन का क्या अर्थ होता है? मौन का अर्थ होता हैः इतना ही नहीं कि बोलो मत। मौन का, बोलो मत, यह तो बाहरी सिक्का है। मौन का भीतरी अंग हैः सोचो मत। क्योंकि सोचोगे तो भीतर तो बोलोगे ही; और से नहीं तो अपने से बोलोगे। और से बोले कि अपने से बोले, क्या फर्क पड़ता है? मन ही मन बोलोगे। खुद ही जवाब दोगे, खुद ही प्रश्न उठाओगे। विचार तो जारी रहेगा।
बाह्य अंग है मौन काः दूसरे से न बोलना; आंतरिक आत्मा है मौन कीः अपने
से भी न बोलना। जब निःशब्द कोई हो जाए तो मौन। महावीर को बारह वर्ष तक निःशब्द होने में लगे। निःशब्द होने का अर्थ क्या? सब शास्त्रों को विदा किया। सब शब्दों और सिद्धांतों को तिलांजलि दी। जैसे पतझड़ में वृक्ष से पत्ते गिर जाते हैं, ऐसे ही मौन में शब्द गिर जाने चाहिए--सब शब्द, निरपेक्ष भाव से। जब तुम भीतर बिल्कुल शून्य हो जाते हो, उसी शून्य में, उसी शून्य के दर्पण में सत्य की प्रतिछवि बनती है।
एक तो होती है लहर से भरी हुई झील--लहरें और लहरें, तरंगें और तरंगें, सारी झील की छाती कंपती हुई। चांद का प्रतिबिंब उसमें भी बनता है। लेकिन बन नहीं पाता, बिखर-बिखर जाता है। पूर्णिमा का चांद हो और झील में लहरें हों, तो चांद का प्रतिबिंब नहीं बनता। हां, लहरों पर चांदी बिखर जाती है चांद की, छिन्न-भिन्न, खंड-खंड। लेकिन अगर झील शांत हो, अगर झील मौन हो, अगर झील में कोई तरंगें न हों, कोई लहरें न हों, तो फिर चांद वैसा का वैसा उतर आता है झील में, जैसा है।
चेतना जब मौन को उपलब्ध होती है, निस्तरंग होती है। उस अवस्था को तुम चाहे मौन कहो, चाहे ध्यान कहो, लेकिन एक बात सुनिश्चित हैः विचार वहां नहीं होने चाहिए। और जहां विचार नहीं हैं वहां तुम कैसे हिंदू हो सकते हो? हिंदू होने का अर्थ हैः किन्हीं विचारों का चुनाव, किन्हीं विचारों को पकड़ रखना। जैन कैसे हो सकते हो? ईसाई कैसे हो सकते हो? कम्युनिस्ट कैसे हो सकते हो? आस्तिक कैसे हो सकते हो? नास्तिक कैसे हो सकते हो?
ध्यानी तो इतना ही कह सकता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, मैं शून्य हूं।
यह शून्यता ही वीत धर्म है। यह पहला अंग है, पहला चरण है वीत धर्मता का। दूसरा चरण और भी गहरा है। क्योंकि यह ऊपरी बात है; मजहब धर्म का ऊपरी अर्थ है। धर्म का एक गहरा अर्थ हैः स्वभाव, जैसे अग्नि का धर्मः उत्ताप। जैसे बर्फ का धर्मः शीतलता। वैसा स्वधर्म, स्वभाव, वह धर्म का गहरा अर्थ है। पहली बात तो जल्दी समझ में आ सकती है, दूसरी बात थोड़ी कठिन होगी, क्योंकि यह सूक्ष्म होगी।
स्वभाव से भी मुक्त होना है, क्योंकि स्व से भी मुक्त होना है। जब तक स्व है तब तक अहंकार की कोई न कोई रूप-रेखा मौजूद है। स्व का अर्थ ही हैः मैं किसी न किसी सूक्ष्म तल पर अभी जिंदा है। न रहा होगा स्थूल रूप में, नहीं होगी धन की अकड़, नहीं होगी ज्ञान की अकड़, नहीं होगी त्याग की अकड़, ऊपरी अकड़ें चली गई होंगी; मगर मैं भिन्न हूं, मैं व्यक्ति हूं, मेरी निजता है, मैं पृथक हूं अस्तित्व से--कहीं न कहीं बारीक तल पर यह भाव अभी भी मौजूद होगा। मुझे मुक्त होना है, मुझे आनंद को उपलब्ध होना है, मुझे मोक्ष पाना है--लेकिन यह मैं अभी मौजूद है। और जहां मैं है वहां कैसा मोक्ष? मैं ही तो नरक है।
इस स्व का भी विसर्जन करना है। इस स्व को भी यूं उड़ जाने देना है, जैसे पानी भाप बन कर उड़ जाता है। इस स्व को भी यूं बुझा देना है, जैसा बुद्ध ने कहा कि कोई दीये को बुझा दे। बुद्ध ने उस अवस्था का नाम निर्वाण दिया है। प्यारा नाम दिया है। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीये का बुझा देना। फूंक मार दी, दीया बुझ गया। अभी था, अभी नहीं है। कहां गई ज्योति? खो गई विराट में!
सूफी फकीर हसन के जीवन में यह उल्लेख है, और प्यारा उल्लेख है, पुनः- पुनः स्मरणीय उल्लेख है। हसन एक गांव में आया। दिन भर से कोई उसे मिला न था। और हसन के मन में गुरु होने का भाव था। कोई न मिला, किसी को उपदेश न दे सका। कोई न मिला, किसी को सलाह न दे सका।

हर आदमी के मन में सलाह देने की इच्छा होती है। कहावत है कि दुनिया में सबसे ज्यादा जो चीज दी जाती है वह सलाह है और सबसे कम जो ली जाती है वह भी सलाह है। लेने को कोई राजी नहीं है, देने को सब राजी हैं। मुक्त हाथों से बांटते हैं लोग सलाह। सलाह में कोई कंजूसी नहीं करता। और मजा यह है कि लोग ऐसी सलाहें भी बांटते हैं जिनको खुद भी नहीं मानते; जिनकी जिंदगी में उन सलाहों के लिए कोई समर्थन नहीं होता। लेकिन अगर मौका मिल जाए किसी को सलाह देने का, तो चूकते नहीं। सलाह देने का बड़ा मजा है। क्योंकि जब तुम सलाह देते हो तब तुम गुरु हो जाते हो। जब तुम सलाह देते हो, तुम ऊपर हो जाते हो। सलाह लेने वाला भिखमंगे की तरह हो जाता है। और किसी को भी नीचा दिखाने का मजा बहुत गहरा है--किसी भी भांति। और यह बड़ा सस्ता नुस्खा है किसी को नीचा दिखाने का।
हसन को दिन भर कोई न मिला था। बोलने का मौका ही न आया था, समझाने का अवसर न मिला था, सलाह न दे सका था। एक गांव में प्रविष्ट हुआ। सांझ थी, सूरज ढल रहा था, रात उतरने को थी, और एक छोटा सा बच्चा एक दीये को अपने हाथ की ओट दिए मजार पर चढ़ाने ले जा रहा था। हसन को कोई तो मिला न था, यही मौका, उसने सोचा, चूकने जैसा नहीं है। उस बच्चे से पूछा कि प्यारे बेटे, क्या एक बात का तू उत्तर दे सकता है? दीया तूने ही जलाया?
उस बच्चे ने कहा, हां, मैंने ही जलाया।
तो हसन ने पूछा, फिर एक सवाल। जब तूने दीया जलाया तो ज्योति कहां से आई? तूने ही जलाया, तो जरूर तू बता सकता है, ज्योति कहां से आई?
हसन सोचता था, यह क्या जवाब देगा! तो फिर मैं कुछ सलाह दूंगा, तो फिर मैं जवाब दूंगा। मगर कभी-कभी बच्चे बूढ़ों को बुरी तरह हरा देते हैं।
बच्चों के पास एक सूझ-बूझ होती है जो बूढ़ों के पास कभी की मर चुकी होती है। समय की धूल इतनी जम जाती है कि बूढ़ों का दर्पण दर्पण ही नहीं रह जाता। बच्चे सीधा-सीधा देख पाते हैं। बच्चों का अपना गणित होता है, अपना तर्क होता है।
उसने कहा, आपने सवाल तो बड़ा गहरा पूछा। अब एक काम करें, गौर से देखें!
और उसने फूंक मार कर दीया बुझा दिया। और हसन से पूछा कि तुम्हारे सामने दीया बुझा है, तुम बताओ कि ज्योति कहां चली गई? मुझसे पूछते हो कि तुमने दीया जलाया, ज्योति कहां से आई! अभी तुम्हारे सामने ज्योति थी, फूंक कर बुझा दी, अब ज्योति कहां चली गई, तुम ही बता दो।

हसन हक्का-बक्का रह गया। अपनी मृत्यु के क्षण में, जब उसके शिष्यों ने उससे पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन था? तो उसने कहा, मेरे बहुत गुरु थे। उनमें उसने उस एक बच्चे का नाम भी गिनाया कि एक बच्चा भी मेरा गुरु था, जिसने मुझे खूब झकझोरा था; जिसने मुझे मेरी नींद से चौंका दिया था। उस छोटे से बच्चे ने मुझे चारों खाने चित्त कर दिया था। मुझसे कुछ कहते न बन पड़ा था। मेरे सामने ज्योति खो गई थी और मैं बता न सका था कहां चली गई। बुद्ध ने ऐसे ही अहंकार को दीये की तरह फूंक मार कर बुझा देने का नाम निर्वाण कहा है। निर्वाण शब्द का अर्थ होता हैः दीये का बुझा देना।
स्व बुझ जाए तो फिर कैसा स्वभाव? जब तक स्व है तब तक पर है। जब तक स्व
है तब तक अस्तित्व से भेद है। और जब तक भेद है तब तक द्वैत है। और जब तक द्वैत है तब तक संघर्ष है। इसलिए बुद्ध ने एक अपूर्व घोषणा की है, जो दुनिया के किसी सदगुरु ने नहीं की। इस संबंध में बुद्ध अद्वितीय हैं। उन्होंने आत्मा को स्वीकारा नहीं। बुद्ध आत्मवादी नहीं हैं। यही नाराजगी रही हिंदुओं की उनसे। यही नाराजगी रही जैनों की उनसे। यही नाराजगी रही पूरे भारत की उनसे। क्योंकि बुद्ध ने आत्मा को स्वीकारा नहीं। बुद्ध ने कहा, आत्मा अहंकार का ही दूसरा नाम है। अच्छा नाम रख लेने से कुछ भी नहीं होता। जहर को तुम अमृत भी कहो तो क्या फर्क पड़ता है?
और बात सत्य है, कितनी ही कड़वी लगती हो। आत्मा का अर्थ क्या होता है? मैं अलग हूं। जो आत्मा को मानते हैं, वे किसी न किसी रूप में अहंकार को बचा ही रहे हैं। वे चाहते हैं कि हमारी आत्माएं मुक्त हो जाएं। मेरी आत्मा मुक्त हो। मेरी आत्मा मोक्ष को उपलब्ध हो! और बुद्ध कहते हैं, जब तक यह मेरे का भाव है, तब तक कैसा मोक्ष?

बुद्ध ने मोक्ष की नयी परिभाषा दी। बुद्ध के पहले और बुद्ध के बाद भी दूसरे धर्मों ने जो परिभाषा दी है, वह हैः आत्मा का मोक्ष, आत्मा की मुक्ति। और बुद्ध ने कहा, मोक्ष का अर्थ हैः आत्मा से मुक्ति। आत्मा की मुक्ति नहीं; आत्मा से मुक्ति। जिस दिन आत्मा विसर्जित हो जाती है, आत्म-भाव चला जाता है, जैसे बूंद सागर में गिर जाए, सागर हो जाए, फिर कहां बूंद? फिर क्या बूंद की आत्मा? लेकिन शंकराचार्य जैसे लोग भी, जो ब्रह्म की बातें करते हैं, वे भी आत्मा को स्वीकार करते हैं, मानते हैं। वे भी, आत्मा विलीन हो जाएगी परिपूर्णतः, इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाते। कहीं न कहीं ब्रह्म में भी आत्मा को बचा लेते हैं। बुद्ध ने धर्म को उसकी आत्यंतिक पराकाष्ठा पर पहुंचाया--आत्मा को भी जाने दो। मैं भी नहीं हूं।
तब वीत धर्म का दूसरा गहरा अर्थ प्रकट होगा। न रहा स्व, न रहा स्वभाव। आनंद मैत्रेय, तुम पूछते होः "अब तक तो यही समझा जाता था कि धर्म को उपलब्ध होना है।"
धर्म को उपलब्ध होना है, लेकिन वह पहला कदम है। और जब धर्म को उपलब्ध
हो जाओ तो धर्म का अतिक्रमण करना है, वह दूसरा कदम है। और यह पूरी यात्रा दो कदमों में समाहित है। धर्म को इसीलिए उपलब्ध होना है कि धर्म के पार हुआ जा सके। धर्म की उपलब्धि अधर्म के पार ले जाएगी। अधर्म बीमारी है, धर्म उसकी औषधि है। जब अधर्म के पार चले गए तो अब औषधि को मत ढोते फिरना। अब नाव को कंधे पर लेकर मत चलना। अब औषधि से भी मुक्त हो जाना।
और तुम पूछते हो कि "अब क्या धर्म का भी अतिक्रमण करना है? यदि हां, तो कृपया बताएं कि उसके पार क्या है?"
उसके पार जो है, बताया नहीं जा सकता। क्योंकि उसके पार जो है उसे बताया कि वह पार न रहा, फिर शब्द में आ जाएगा। उसके पार तो अनुभव है। उसके पार तो अनुभूति है। उसकी कोई अभिव्यक्ति नहीं। उसे कहने का कोई उपाय नहीं। उसे कभी नहीं कहा गया और कभी नहीं कहा जाएगा।
लाओत्सु से जीवन भर कहा गया कि तुमने जो जाना है उसे लिख दो, ताकि आने वाली सदियों में, आने वाले वंशजों को तुम्हारी अनुभूति का लाभ मिलता रहे, ज्योति मिलती रहे। लेकिन लाओत्सु जीवन भर टालता रहा। हंसता और टाल देता। उसने न लिखा सो न लिखा। और अंतिम समय में उसने अपने शिष्यों से विदा ली और कहा कि अब मैं जाता हूं हिमालय की तरफ, क्योंकि हिमालय से ज्यादा सुरम्य, शांत और मौन मरने के लिए और क्या सुंदर स्थान हो सकता है! और ऐसी जगह मरना चाहता हूं जहां किसी को पता भी न चले, मजार भी न बने, कोई मंदिर न उठे; ऐसी जगह मिट जाना चाहता हूं कि मेरे कोई पद-चिह्न भी न छूट जाएं, ताकि किसी को मेरे पद-चिह्नों पर चलने का ख्याल न उठे। क्योंकि लोग दूसरों के पद-चिह्नों पर चल कर ही भटक गए हैं। मैं कोई पद-चिह्न नहीं छोड़ना चाहता। मैंने कुछ लिखा नहीं, शब्द मैंने छोड़े नहीं। मैं मरना भी ऐसी जगह चाहता हूं जहां कोई देखने वाला भी न हो। मेरी लाश भी कहीं पूजा का आधार न बन जाए। कहीं मेरी मजार ही एक धर्म की शुरुआत न हो जाए। कहीं पंडित-पुजारी इकट्ठे न हो जाएं।
और निश्चित वे इकट्ठे हो जाते। लाओत्सु हिमालय की तरफ चला। लेकिन चीन
के सम्राट को खबर लग गई और उसने सारी सीमाओं पर तैनात पहरेदारों को खबर कर दी कि लाओत्सु को देश के बाहर निकलने मत देना। और जहां से भी वह निकलने की कोशिश करे, उसे रोकना और कहना कि जब तक तुम अपना अनुभव लिख न दोगे तब तक हम देश के बाहर न जाने देंगे। क्योंकि एक महान संपदा अलिखित छूट जाए, यह उचित नहीं है।
लाओत्सु को सीमा पर रोक लिया गया। और इसी शर्त पर, उससे कहा गया कि तुम बाहर जा सकते हो, अगर तुम अपने अनुभव को लिख दो। मजबूरी में तीन दिन तक पहरेदार की कोठरी में बैठ कर उसने अपने अनुभव लिखे। वही अनुभव की किताब हैः ताओ-तेह-किंग। लेकिन उसने पहला ही वचन जो लिखा वह स्मरणीय है। पहले ही वचन में उसने कहाः सत्य को कहा नहीं जा सकता, न लिखा जा सकता है। इसलिए जो भी मैं लिख रहा हूं, जो भी मैं कह रहा हूं, स्मरण रखना, लिखने के कारण ही, कहने के कारण ही वह असत्य हो गया है। सत्य को कहा कि असत्य हुआ। इसलिए उस संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। हां, द्वार बता सकता हूं, जिस द्वार से तुम भी उस अनुभव को उपलब्ध हो जाओ।

पंडित, सत्य क्या है, यह समझाते हैं। सदगुरु, सत्य किस दिशा में है, इशारा करते हैं। सिर्फ अंगुली बताते हैं। जाना तो तुम्हें होगा। पाना तो तुम्हें होगा। जीना तो तुम्हें होगा।
सत्य तो स्वाद है। जिसने मिठास कभी चखी नहीं, उसे कैसे कहो? सत्य तो संगीत है। जो बहरा है, उसे कैसे समझाओ? सत्य तो प्रकाश है। जो अंधा है--या अंधा नहीं है, आंख बंद किए बैठा है--उसे कैसे बताओ? आंख खोलने की कला बताई जा सकती है। वही मैं यहां कर रहा हूं। उस कला का नाम ही ध्यान है।
ध्यान से तुम्हारी संवेदनशीलता अपने शिखर पर पहुंच जाती है। और जैसे- जैसे तुम्हारी संवेदनशीलता प्रखर होती है, प्रज्वलित होती है, वैसे-वैसे पहले थोथे धर्म जल जाते हैं और फिर अंततः जिसको तुम स्वभाव कहते हो, स्वधर्म, वह भी जल जाता है। फिर कुछ भी नहीं बचता। तुम्हारे भीतर एक कोरा आकाश रह जाता है। लेकिन वही कोरा आकाश चांद-तारों से भरा है। वही कोरा आकाश हजार-हजार फूलों से भरा है। वही कोरा आकाश सुवासित है, सुगंधित है। वही कोरा आकाश निर्वाण है, मोक्ष है। उस कोरे आकाश को पा लेना अधर्म के तो पार है ही, धर्म के भी पार है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप कहते हैं कि जगत सत्य है, जीवन सत्य है; उन्हें स्वीकार कर अहोभाव के साथ जीओ। आप यह भी कहते हैं कि जगत और जीवन को अस्वीकार करने के कारण ही पूर्व की इतनी दुर्दशा हुई। और यह सच है। लेकिन भौतिकवादी तो यही मान कर जी रहे हैं, लेकिन उनके जीवन में भी उत्सव कहां है?

दिव्यानंद, अति सर्वत्र वर्जयेत्। अति सभी जगह वर्जित है। अध्यात्मवाद एक अति है और भौतिकवाद दूसरी अति है। दोनों अतियां गलत हैं। अति मात्र गलत है। अति पर गए कि तुमने संतुलन खोया। संतुलन खोया कि संगीत खोया। अति पर गए कि तुम लड़खड़ाए।
जीवन यूं है जैसे तुमने किसी नट को रस्सी पर चलते देखा हो। न तो बाएं झुकता है, न दाएं झुकता है, अपने को बीच में सम्हालता है। हालांकि सम्हालने के लिए कभी-कभी बाएं झुकना पड़ता है, मगर सम्हालने के लिए। और यह ख्याल रखना, नट जब बाएं झुकता है तो वह इसलिए झुकता है, क्योंकि दाएं गिरने का डर पैदा हो रहा था। दाएं न गिर जाए, इसलिए बाएं झुकता है। फिर जब बाएं गिरने का डर पैदा होने लगता है तो दाएं झुकता है। लेकिन दोनों झुकने के बीच अपने को साधने की चेष्टा कर रहा है। दाएं और बाएं को संतुलन साधने के लिए उपयोग में लाता है।
जीवन मध्य में है--परम मध्य में है।
एक अति हुई अध्यात्मवाद की; मैं उसका विरोधी हूं। क्योंकि पूरब उसका दुष्परिणाम भोग रहा है। अध्यात्मवाद का मौलिक सूत्र दिया है आदि शंकराचार्य नेः ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या। ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। यह एक अति हुई। इस अति के कारण पूरब बुरी तरह गिरा। गिरना अनिवार्य था। एक तरफ झुक गया। जगत की तरफ झुकना ही भूल गया, ब्रह्म की तरफ ही झुक गया। पूरा-पूरा झुक गया। तो गरीबी पैदा हुई, गुलामी पैदा हुई, दीनता पैदा हुई। पूरा पूरब इस अति के कारण अपने को गंवा बैठा, लुटा बैठा।
और ध्यान रहे कि जब इतनी दरिद्रता होगी, इतनी दीनता होगी, इतनी दासता होगी, तो अध्यात्म क्या खाक साधोगे! जब पेट भूखा होगा तो क्या तुम ध्यान साधोगे! भूखे भजन न होहिं गोपाला। जब हाथों में जंजीरें होंगी, पैरों में बेड़ियां होंगी, तो क्या तुम आशा करते हो मोक्ष की! तुम साधारण जीवन की स्वतंत्रता भी नहीं बचा पा रहे हो, तुम उस असाधारण स्वतंत्रता को पाने के सपने मत देखो। वे सिर्फ सपने हैं।
हां, यह हो सकता है कि उन सपनों के कारण तुम्हें सांत्वना मिले कि कोई बात नहीं, अगर यहां जंजीरें हैं तो दो दिन के लिए हैं; यह चार दिन की तो जिंदगी ही है; दो दिन तो कट ही गए, दो दिन और कट जाएंगे; फिर मोक्ष है और मोक्ष की परम स्वतंत्रता है; गुजार लो ये दो दिन।
मगर यह मोक्ष सिर्फ अफीम है। यह मोक्ष वास्तविक मोक्ष नहीं है। यह सिर्फ गुलामी को काट लेने के लिए एक सांत्वना है। दरिद्रता है, तो लोग

कल्पवृक्ष निर्मित कर रहे हैं स्वर्ग में। यह दरिद्र आदमी की खबर दे रहे हैं ये कल्पवृक्ष। यह दरिद्र आदमी सोच रहा है कि यहां भूख है, बीमारी है, सिर पर छप्पर नहीं है, कोई बात नहीं, जल्दी ही वह परम क्षण आएगा... मृत्यु के बाद आएगा वह परम क्षण। और आएगा अगर तुमने इस दासता को, गुलामी को, गरीबी को संतोषपूर्वक झेला। अगर बगावत न की तो आएगा। अगर जूझे नहीं तो आएगा। अगर लड़े नहीं तो आएगा। अगर क्रांति नहीं की तो आएगा। अगर शांत रहे तो आएगा। इसलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो सकी। पूरब क्रांति-शून्य रहा। सदियां बीत गईं, लेकिन हमने सांत्वना सिखाई। सांत्वना में क्रांति हो कैसे? हमने धैर्य सिखाया कि धीरज रखो। हमने लोगों को समझाया कि परमात्मा के राज्य में देर है, मगर अंधेर नहीं। तो थोड़ी देर सही, धीरज रखो, अंधेर नहीं है, भरपूर पाओगे। और फिर हमने कल्पवृक्ष निर्मित किए; उनके नीचे बैठ कर तुम जो भी इच्छा करोगे वह पूरी हो जाएगी। इच्छा करते ही पूरी हो जाएगी। यहां इच्छाओं से मरे जा रहे हो, कोई इच्छा पूरी नहीं होती; और वहां सारी इच्छाएं पूरी हो जाएंगी! यह गरीब आदमी का सपना है। यह भूखे आदमी का सपना है। यह दरिद्रता का ही प्रक्षेपण है। यह भूखा आदमी रात सपना देख रहा है कि इसे राजा के घर भोजन का निमंत्रण मिला है और वहां छत्तीसों व्यंजन सोने की थालियों में सजे हुए हैं! भूखे आदमी ऐसे सपने देखेंगे ही। ये सारे स्वर्ग, ये सारे स्वर्ग में मिलने वाले सुखों की आकांक्षाएं इस बात के सबूत हैं सिर्फ कि जो तुम यहां पूरा नहीं कर पाए हो, उसकी आशा को तुमने आगे के लिए स्थगित कर दिया। आशा तो चाहिए ही चाहिए, नहीं तो जीना मुश्किल हो जाएगा।
शंकराचार्य एक अति हैं और दूसरी अति है भौतिकवाद की। भौतिकवाद कहेगाः जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या। कार्ल मार्क्स यही कहता है कि सिर्फ पदार्थ सत्य है और चेतना मिथ्या है; चेतना केवल एक आभास है पदार्थ के जोड़ से पैदा हुआ। चार्वाकों ने जो बहुत प्राचीन काल में कहा था, उसको ही पुनरुक्त किया है कार्ल मार्क्स ने और आधुनिक भौतिकवादियों ने।
चार्वाक का पुराना उदाहरण उपयोगी है। चार्वाक कहता है, तुम पान चबाते हो, ओंठ लाल हो जाते हैं। पान जिन-जिन चीजों से बनता है... पान का पत्ता अलग से चबाओ, ओंठ लाल नहीं होंगे। सुपारी अलग से चबाओ, ओंठ लाल नहीं होंगे। चूना अलग से चबाओ, लाल होना तो दूर और ओंठ फट जाएंगे। कत्था अलग से चबाओ, लाल होना तो दूर और मुंह कड़वा हो जाएगा। सब चीजें अलग-अलग चबाओ, लेकिन ओंठ लाल नहीं होंगे। इन सबको मिला कर पान बनाओ, और ओंठ लाल हो जाते हैं। लाली कहां से आती है? चार्वाक कहता है, पान की सब चीजों के मिलने से लाली उत्पन्न होती है। लेकिन लाली कुछ अलग अस्तित्व नहीं रखती; वह उप-उत्पत्ति है।
ठीक यही बात सारे दुनिया के भौतिकवादी कहते हैं, कि चेतना तुम्हारे शरीर में जुड़े हुए भौतिक और रासायनिक परमाणुओं की उप-उत्पत्ति है; लाली है पान की बस, और कुछ भी नहीं। यह मत सोचना कि कत्था निकाल लिया, चूना निकाल लिया, पान निकाल लिया, सुपारी निकाल ली और सब चीजें निकाल लीं, और लाली फिर पीछे बच रहेगी। कुछ भी नहीं बचेगा। लाली तो केवल जोड़ थी।
इसलिए भौतिकवादी कहता है कि शरीर से अगर सारी चीजें निकाल लो तो कोई आत्मा नहीं बचेगी, कोई चेतना नहीं बचेगी, कोई ब्रह्म नहीं बचेगा।
यह दूसरी अति है; यह जगत के सत्य की घोषणा कर रही है और ब्रह्म के सत्य
को इंकार कर रही है। इस अति का भी दुष्परिणाम हुआ। पश्चिम विक्षिप्त हो गया है। धन है, सुविधा है, वैभव है, सुंदर मकान हैं, सुंदर रास्ते हैं; विज्ञान ने सारी सुख की सुविधाएं इकट्ठी कर दी हैं, अंबार लगा दिया है; लेकिन आदमी जितना दुखी है, पश्चिम में जितना दुखी है उतना पूरब में भी नहीं। हालांकि पूरब में सब तरह के दुख हैं, मगर आदमी उतना दुखी नहीं। और पश्चिम में सब तरह के सुख हैं, लेकिन आदमी बहुत दुखी है। जीवन अर्थहीन है। लोग जी रहे हैं, लेकिन यूं जैसे कोई अपनी ही लाश को ढोता हो। पश्चिम के विचारक एक ही धारणा के आस-पास चक्कर काट रहे हैं कि जीवन का अर्थ क्या है? और उनमें से अधिकतम इस बात पर राजी हो गए हैं कि जीवन में कोई अर्थ नहीं है, जीवन एक दुर्घटना है। सौभाग्य का सवाल ही कहां? उत्सव कैसे पैदा होगा?

तुम पूछते हो, दिव्यानंद, कि भौतिकवादी भी तो यही मान कर जी रहे हैं, लेकिन उनके जीवन में उत्सव कहां है?
नहीं, मैं जो कह रहा हूं वह न तो भौतिकवादी मान कर जी रहे हैं और न अध्यात्मवादी मान कर जी रहे हैं। वे एक-दूसरे के दुश्मन हैं। उन्होंने जीवन के आधे सत्य को स्वीकार किया है। और जो भी आधे सत्य को स्वीकार करेगा, वह परम आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता। परम आनंद पूर्णता की छाया है, समग्रता का फूल है, समग्रता की सुगंध है, सुवास है। और आज तक पृथ्वी पर जीवन की समग्रता को अंगीकार नहीं किया गया। हमेशा आधे को अंगीकार किया गया। कारण साफ है। क्योंकि आधे को अंगीकार करने में तर्कयुक्त हुआ जा सकता है; पूरे को अंगीकार करने के लिए तर्कातीत होना जरूरी है। शंकराचार्य भी तर्कपूर्ण हैं, बहुत तर्कपूर्ण हैं। तर्कातीत नहीं, निपट तर्कशास्त्री हैं। इसीलिए तो झंडा लेकर भारत भर में घूमते रहे-- विवाद करते, लोगों को हराते। यह विवाद क्या था? यह सिर्फ तार्किकता थी और कुछ भी न था। इस विवाद में यह सिद्ध नहीं होता कि सत्य क्या है। इस विवाद में यही सिद्ध होता है कि किसके पास कितना प्रबल तर्क है। और तर्क कोई सत्य को पाने का साधन नहीं है; बाधा तो है, लेकिन साधन नहीं है।
कार्ल मार्क्स भी तर्कशास्त्री है। और अगर तर्क से ही तय करना हो तो
एक बात समझ लेना कि भौतिकवादी ज्यादा तार्किक है, क्योंकि उसने जिस बात को स्वीकार किया है वह प्रत्यक्ष है। ब्रह्म को सिद्ध करना आसान नहीं है; पदार्थ को असिद्ध करना आसान नहीं है।
पश्चिम में जो आदमी शंकराचार्य के करीब-करीब पहुंचता है, वह है बर्कले। बर्कले कहता है, संसार मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है। बर्कले का मित्र था डाक्टर जानसन। वे दोनों एक रास्ते पर घूमने सुबह गए थे और बर्कले अपनी बकवास लगाए हुए था कि संसार सिर्फ स्वप्नवत है। डाक्टर जानसन सुनता रहा, सुनता रहा। जब बहुत परेशान हो गया तो उसने उठाया एक पत्थर और बर्कले के पैर पर पटक दिया। चीख निकल गई, खून का फव्वारा छूट पड़ा। डाक्टर जानसन ने कहा कि जगत असत्य है तो ऐसी चीख-पुकार क्या मचा रहे हो? यह पत्थर केवल सपना है। आंखों में आंसू क्यों? पैर को पकड़ कर क्यों बैठे हो? एक असत्य कैसे तुम्हें चोट पहुंचा सकता है?
अगर तर्क से ही तय होना है, तो नास्तिक जीतेगा, आस्तिक नहीं जीत सकता। आस्तिक जिस चीज को सिद्ध करने चला है, वह तर्क से सिद्ध हो ही नहीं सकती। इसीलिए सदियां बीत गईं, नास्तिक को कोई आस्तिक हरा नहीं पाया है। नास्तिकता को कोई जवाब आस्तिक दे नहीं पाया है।
ये शंकराचार्य भी जिनको हराते हुए घूमते रहे, वे दूसरे तरह के आस्तिक
ही थे। इनमें से एक भी नास्तिक नहीं था। नहीं तो यह दिग्विजय कभी भी रुक जाती। जिनको उन्होंने हराया, उनमें कोई मंडन मिश्र थे, मगर वे भी आस्तिक थे। उनकी आस्तिकता की एक धारणा थी, शंकराचार्य की दूसरी धारणा थी, मगर दोनों आस्तिक थे। यह जो शंकर-दिग्विजय का बड़ा शोरगुल मचाया जाता है, इसमें एक भी नास्तिक होता तो शंकर को चारों खाने चित्त कर सकता था, इसमें कोई अड़चन न थी। यह बहुत आसान है, क्योंकि पदार्थ बिल्कुल प्रत्यक्ष है, परमात्मा अप्रत्यक्ष है। पदार्थ दृश्य है, परमात्मा अदृश्य है। भौतिकवादी तार्किक रूप से सिद्ध कर सकता है कि केवल मात्र अस्तित्व पदार्थ का है। लेकिन इसको सिद्ध कर लेने से कुछ हल नहीं होता। इसको सिद्ध करने से एक नयी कठिनाई खड़ी होती हैः अगर पदार्थ ही सत्य है तो फिर जीवन में जो भी महिमायुक्त है, वह सब असत्य हो जाता है। फिर फूल में सौंदर्य असत्य हो जाता है। फिर फूल केवल एक रासायनिक वस्तु रह जाती है। फिर सूर्यास्त में सौंदर्य असत्य हो जाता है। फिर संगीत में आनंद असत्य हो जाता है; संगीत केवल ध्वनियों का जोड़ रह जाता है। फिर जीवन में प्रेम असत्य हो जाता है। क्योंकि प्रेम क्या है? वही पान की लाली, और कुछ भी नहीं! जीवन में काव्य असत्य हो जाता है। और जब जीवन के सारे महिमायुक्त तत्व असत्य हो जाएं--न प्रेम हो, न काव्य हो, न सौंदर्य हो, न संगीत हो, न कोई अर्थ हो, क्योंकि पदार्थ में क्या अर्थ हो सकता है? पत्थरों में क्या अर्थ हो सकता है? अर्थ तो चेतना की अभिव्यक्ति में है--तो स्वभावतः जीवन अर्थहीन हो जाता है।

इसलिए पश्चिम के अधिकतम विचारक इस निष्पत्ति के करीब पहुंच गए हैं कि जीवन अर्थहीन है। मगर अर्थहीन जीवन को जीओगे कैसे? माना कि धन है, और माना कि सुंदर भवन है, संगमरमर का महल है, और सारे प्रसाधन विज्ञान के हैं, मगर जीवन अर्थहीन है। मशीनें सब हैं, लेकिन आदमी कहां? आदमी के प्राण ही खो गए। अर्थ खोया कि आदमी के प्राण खो गए। अर्थ खोया कि आदमी के जीवन की अर्थवत्ता शेष न रही। अर्थहीन कैसे जीओगे? अर्थहीनता विक्षिप्तता लाएगी। इसलिए पश्चिम में अधिकतम लोग पागल हुए जा रहे हैं। या तो आत्महत्या
कर लेते हैं या दूसरों की हत्या कर देते हैं। या शराब पीकर किसी तरह अपने जीवन की अर्थहीनता को भुलाते हैं। और अब नये-नये अपने को भुलाने के वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो रहे हैं, जो कि शराब से भी ज्यादा गहरे हैं, जैसे एल एस डी है, सिलो साइबिन है। अब विज्ञान ने और भी नयी खोजें की हैं, जिनसे कि तुम अपने जीवन की अर्थवत्ता को बिल्कुल भूल सकते हो, अर्थहीनता को भी भूल सकते हो। यह सवाल ही मिट जाए।
पश्चिम भौतिकवाद से पीड़ित है, पूरब अध्यात्मवाद से पीड़ित है। पूरब ने शरीर खो दिया, पश्चिम ने आत्मा खो दी। पूरब ने बाह्य खो दिया, पश्चिम ने आंतरिकता खो दी। दोनों गंवा बैठे। और अब एक नयी ऊर्जा की जरूरत है, एक नये उदघोष की, कि जगत भी सत्य है और ब्रह्म भी सत्य है। यही मेरा उदघोष है। दोनों सत्य हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि संन्यासी को भागना नहीं है संसार से, क्योंकि भागना, वह शंकराचार्य की प्रक्रिया होगी। और मैं यह भी कहता हूं कि मेरे संन्यासी को संसार में डूब ही नहीं जाना है, फिर वह कार्ल मार्क्स की प्रक्रिया होगी। मैं कहता हूं, संन्यासी को संसार में जीना है और ऐसे जीना है कि संसार चारों तरफ रहे, मगर छुए नहीं। कमलवत जीना है। पानी में हो, मगर पानी छुए न।
इसलिए दिव्यानंद, मैं जो कह रहा हूं उसे न तो अध्यात्मवादी ने पूरा किया है और न भौतिकवादी ने पूरा किया है। इसलिए तुम इस भ्रांति में मत रहो कि मैं जो कह रहा हूं वही भौतिकवादी कहता है। वह तो भौतिकवादी कैसे कह सकता है? मैं भौतिकवादी नहीं हूं। मैं अध्यात्मवादी नहीं हूं। मैं वादी ही नहीं हूं। मैं किसी वाद में भरोसा नहीं करता। मैं जीवन की सर्वांगीणता को स्वीकार करता हूं। इसलिए वाद का कोई सवाल नहीं, विवाद का कोई सवाल नहीं। मैं जीवन के सारे पहलुओं को स्वीकार करता हूं।
भौतिकवादी के जीवन में भी उत्सव नहीं हो सकता, अध्यात्मवादी के जीवन में भी उत्सव नहीं हो सकता। दोनों अपंग हैं। दोनों लंगड़े हैं। एक ने एक पैर चुन लिया है, दूसरे ने दूसरा पैर चुन लिया है। लंगड़े तो दोनों हैं। उत्सव कहां होगा? लंगड़े नाचेंगे कैसे? और जब नाच नहीं सकते तो वे कहते हैं--आंगन टेढ़ा है। भौतिकवादी सोचता है, और भौतिकवाद चाहिए, तब नाचेंगे, जरा आंगन को ठीक कर लें। अध्यात्मवादी कहता है, और अध्यात्मवाद चाहिए, तब नाच पाएंगे, आंगन को ठीक करना है। मगर बात कुछ और है। आंगन टेढ़ा भी हो, तो जिसे नाच आता है और जिसके दोनों पैर स्वस्थ हैं, बराबर नाच सकता है। आंगन के टेढ़े होने से नाचने में कोई बाधा नहीं पड़ती। नाचने से आंगन के टेढ़े होने का क्या संबंध? जिसे नाच आता है वह कहीं भी नाच सकता है। लेकिन नाच के लिए दोनों पैर स्वस्थ होने चाहिए। आकाश में उड़ने के लिए दोनों पंख होने चाहिए।
पूरब ने कोशिश की है एक पंख से उड़ने की, और बुरी तरह गिरा। और पश्चिम
ने कोशिश की है एक पंख से उड़ने की, बुरी तरह गिरा। दोनों यूं तो दिखाई पड़ते हैं बड़े विपरीत हैं, मगर एक बात में दोनों राजी हैं कि एक ही पंख से उड़ना है। इस जिद ने सारी मनुष्यता को दुख से भर दिया है।
दोनों पंख प्यारे हैं। पदार्थ में कुछ बुरा नहीं। पदार्थ भी परमात्मा
की अभिव्यक्ति है। पदार्थ असत्य नहीं है और परमात्मा भी असत्य नहीं है। परमात्मा पदार्थ में ही छुपा है। जैसे बीज में फूल छिपे होते हैं। बीज को तोड़ो तो फूलों को नहीं पा सकोगे। यह कोई ढंग न हुआ फूलों को पाने का। बीज को जमीन दो, भूमि दो, जल दो, तब ठीक समय पर, ठीक मौसम में आएगा वसंत और फूल खिलेंगे, झर-झर झरेंगे। बीज को काट कर फूल नहीं पाए जाते। बीज को उगाना होता है।

मेरे हिसाब में, ध्यान की पूरी कला तुम्हारे भीतर जो छिपी हुई संभावना है, उसको वास्तविक बनाने की कला है; तुम्हारी संभावनाओं को यथार्थ बनाने की कला है; तुम्हारे बीज को फूल तक ले जाने की कला है।
इसलिए न तो मैं आस्तिक हूं, न मैं नास्तिक हूं। न तो मैं अध्यात्मवादी हूं, न भौतिकवादी हूं। और स्वभावतः मुझे दोनों तरफ से गालियां पड़ेंगी। और दोनों तरफ से गालियां पड़ रही हैं। मगर मैं मानता हूं कि यह स्वाभाविक है। भौतिकवादी मुझसे नाराज हैं। वे नाराज हैं, क्योंकि मैं लोगों से कह रहा हूं, अध्यात्म की खोज करो। अध्यात्मवादी मुझसे नाराज हैं। क्योंकि मैं लोगों से कह रहा हूं कि भौतिकता को छोड़ना नहीं है। बीज को ही छोड़ दिया तो फूल कहां से पाओगे!
इसी संसार में छिपा है फूल। जैसे तुम्हारे इसी शरीर में तुम्हारी चेतना छिपी है, ऐसे ही इस ब्रह्मांड में ब्रह्म छिपा है। तुम एक छोटे से प्रतीक हो इस पूरे ब्रह्मांड के। शरीर ब्रह्मांड है तुम्हारा और भीतर ब्रह्म है। ऐसे ही इस पूरे ब्रह्मांड में, इसकी आंतरिकता में, इसके अंतरस्थ बिंदु पर ब्रह्म है। मेरे पास इनकार नहीं है, स्वीकार है--समग्र का स्वीकार है। और समग्र की स्वीकृति में ही उत्सव हो सकता है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि गरीब रहो, दरिद्र रहो। कोई आवश्यकता नहीं है। बाहर की समृद्धि भीतर की समृद्धि में बाधा नहीं है, सहयोगी है।
और तुम जरा गौर तो करो, तुम्हारे सारे अवतार राजपुत्र थे और तुम्हारे सारे तीर्थंकर जैनों के राजपुत्र थे और बुद्ध राजपुत्र थे। बाहर की समृद्धि ने कुछ इनके भीतर के आयाम को खंडित नहीं किया। सच तो यह है कि बाहर की समृद्धि ने ही इन्हें भीतर की समृद्धि की तरफ जाने का सूत्र दिया। जब बाहर भी समृद्धि हो तो सवाल उठना शुरू होता है कि जब बाहर समृद्धि इतनी सुविधा और सुखपूर्ण हो सकती है, तो भीतर की समृद्धि कितनी न होगी! इसलिए मैं गरीबी का पक्षपाती नहीं हूं। मैं महात्मा गांधी के दरिद्रनारायण के सिद्धांत को नहीं मानता। यह धोखेबाजी बहुत हो चुकी। गरीब को बहुत तरह से हमने समझाने की कोशिश की है कि तेरी गरीबी बड़ी सुंदर, तेरी गरीबी में बड़ा अध्यात्म है, तू तो दरिद्रनारायण है, तू तो स्वयं परमात्मा है! अच्छे-अच्छे शब्द खोजने में हम बड़े कुशल हो गए हैं। अछूत को हरिजन कह दिया, और समझे कि बस बात हो गई, काम खत्म हो गया। पहले अछूत जलाए जाते थे, अब हरिजन जलाए जाते हैं। पहले अछूतों के साथ बलात्कार होता था, अब हरिजनों के साथ बलात्कार होता है। पहले अछूतों के खिलाफ आंदोलन चलते थे, अब हरिजनों के खिलाफ आंदोलन चल रहे हैं। सब वही का वही। खुद गांधी के प्रदेश गुजरात में जो भयंकर उपद्रव मचा है कि हरिजनों को जो आरक्षित सुविधा मिलती है वह नहीं मिलनी चाहिए। गांधीवादियों का प्रदेश, गांधी की जन्मभूमि!
मगर ये सब शब्द धोखे के हैं। दरिद्र को दरिद्रनारायण कहने से कुछ हल नहीं होता और न अछूत को हरिजन कहने से कुछ हल होता है। हां, थोड़ी राहत मिलती है, मलहम-पट्टी होती है। मगर बीमारी अपनी जगह। बीमारी ढंक जाती है, मिटती नहीं।
मैं दरिद्रता का पक्षपाती नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति समृद्ध होना चाहिए। और आज विज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को समृद्ध करने में कुशल है। इसलिए कोई जरूरत नहीं है कि हम चरखे लिए बैठे रहें। अब यह मूढ़ता की हद है, यह जड़ता की आखिरी सीमा है कि लोग चरखे चला रहे हैं। जैसे दरिद्र होने की हमने कसम खा ली है। किसी को दरिद्र होने की अब कोई जरूरत नहीं। दरिद्रता इस पृथ्वी से यूं मिट सकती है जैसे कभी थी ही नहीं। आज इस बात की संभावना है, पहले इस बात की संभावना नहीं थी। संभावना नहीं थी, इसलिए न मालूम कैसे-कैसे झूठे सिद्धांत लोगों ने गढ़े। क्योंकि आखिर कुछ तो समझाना पड़ेगा। सवाल सामने था कि लोग गरीब क्यों हैं? तो सिद्धांत गढ़े कि पिछले जन्मों के पापों के कारण गरीब हैं। या सिद्धांत गढ़े कि भाग्य में ही इनके गरीबी लिखी है। परमात्मा ने, विधाता ने पहले ही इनको गरीबी दे दी। यह विधाता भी गजब का, कि किसी की खोपड़ी में गरीबी लिखता है और किसी की खोपड़ी में अमीरी लिखता है। यह नशे में है! होश में है? आखिर क्यों किसी की खोपड़ी में गरीबी लिखता है? किसी ने इसका क्या बिगाड़ा है?

और या फिर पिछले जन्म! पिछले जन्म का सिद्धांत और भी जहरीला है, क्योंकि उसका जाल लंबा है। अनंत जन्म! स्वभावतः न मालूम कितने पाप किए होंगे। अब न मालूम कितने अनंत जन्मों तक पापों का फल भोगना पड़ेगा! और मुश्किल यह है कि अब अनंत जन्मों तक तुम पुराने पापों का फल ही थोड़े भोगते रहोगे, कुछ और भी तो करोगे कि नहीं, कि बस सिर्फ पापों का फल ही भोगोगे? पापों के फल भोगने में फिर पाप हो जाएंगे। तो छुटकारे का कोई उपाय ही न रहा।
एक ऐसा दुष्टचक्र पैदा कर दिया कि उसमें गरीब को गरीब ही रहना पड़ेगा।
और अमीर को भी सुरक्षा दे दी इन सिद्धांतवादियों ने कि पिछले जन्मों में पुण्य-कर्म किए थे, उससे वे अमीर हुए हैं। इससे अमीरों को एक कवच मिल गया।
गरीब इशारा नहीं उठा सकता कि हमें चूसा गया है, कि हमें चूसा जा रहा है।
चूसने का सवाल ही नहीं; वे अपने पुण्यों का फल भोग रहे हैं, तुम अपने पापों का फल भोग रहे हो।
ये सब थोथी धारणाएं पैदा की गईं--सिर्फ इसलिए कि कोई और उपाय न था। लेकिन आज इन सब धारणाओं की कोई जरूरत नहीं है। न तो भाग्य में कुछ लिखा है, न कोई विधाता है कहीं जो लिख रहा है और न तुम्हारे पिछले जन्मों के कर्मों का कोई सवाल है। असल में तुम जब कर्म करते हो तब उसका फल भोग लेते हो। इतनी देर लगेगी क्या? पिछले जन्म में आग में हाथ डाला और इस जन्म में जलोगे? जरा मूढ़ता भी तो देखो! कुछ हिसाब भी तो सोचो! पिछले जन्म में आग में हाथ डाला होगा तो तभी जल गए होओगे। अब जलोगे? इतनी देर की जरूरत क्या है? कार्य-कारण इतनी देर तक नहीं ठहरते। अगर पिछले जन्म में क्रोध किया होगा तो क्रोध करने में ही तो आदमी जल-भुनता है, खूब भोग लेता है दुख। किसी की हत्या की होगी तो अपराध की पीड़ा, ग्लानि। अब और क्या चाहिए! उतनी लपटें काफी हैं, बहुत हैं। हर जन्म का निपटारा उसी जन्म में हो जाता है। तुम जब भी पैदा होते हो, कोरी स्लेट लेकर पैदा होते हो।
और आज इन सब बकवासों की कोई जरूरत नहीं है। विज्ञान इस पूरी पृथ्वी को समृद्ध कर सकता है। मगर चरखों को जलाना पड़ेगा। कुछ मूढ़ तो और भी आगे बढ़ गए हैं, वे तकलियां चला रहे हैं। इन्होंने तय ही कर लिया है कि बाबा आदम से आगे नहीं जाना है।
गरीबी का मैं पक्षपाती नहीं हूं--न बाहरी गरीबी का और न भीतरी गरीबी का। इसलिए पूरब को विज्ञान चाहिए और पश्चिम को धर्म चाहिए। दोनों को दोनों पंख मिल जाएं तो मनुष्य आनंद के आकाश में उड़ानें भर सकता है। वह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, आत्मा शरीर धारण करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है,
तो फिर अपंग, अंधे और लाचार बच्चों के पीड़ा से पूर्ण शरीर का चयन क्यों? अच्छा और सुख से भरा शरीर धारण कर सकती है, क्योंकि यह उसकी स्वतंत्रता है। ओशो, आशीर्वचन का पान कराएं।

गुणवंतराय पारिख, आत्मा निश्चय ही स्वतंत्र है, लेकिन तुम्हें अभी अपनी आत्मा का पता भी कहां! तुम्हें आत्मा का बोध भी कहां, होश भी कहां! आत्मा स्वतंत्र है, लेकिन आत्मा होनी भी तो चाहिए न। और जब पता ही नहीं है तो न होने के बराबर समझो।
जार्ज गुरजिएफ कहा करता था, सभी के पास आत्मा नहीं है। और उसकी बात में एक सचाई है, चोट है। वह यह कह रहा है कि जिसको अपनी आत्मा का जागरूकता से बोध नहीं हुआ है, जिसको अपनी चेतना का साक्षात्कार नहीं हुआ है, उसके भीतर आत्मा के होने न होने का कोई मतलब ही नहीं है।
तुम्हारी जेब में कोहिनूर हीरा पड़ा है, मगर तुम्हें पता ही नहीं है,
तो क्या तुम समृद्ध हो गए? तो क्या तुम धनी हो गए? पड़ा रहे कोहिनूर हीरा। कोहिनूर हीरे की कहानी यही है। कोहिनूर हीरा मिला था एक किसान को गोलकोंडा के--एक गरीब किसान को। उसके खेत से एक छोटा सा झरना बहता था, जिस झरने में उसे एक दिन यह चमकता हुआ पत्थर मिल गया। उसने सोचा बच्चों के खेलने के काम आएगा। उठा लाया।

तीन साल तक यह हीरा उसके आंगन में पड़ा रहा। बच्चे कभी खेलते, इधर फेंक देते, उधर फेंक देते। लेकिन किसान तो गरीब था सो गरीब ही रहा। कोहिनूर उसके आंगन में पड़ा था। और आज कोहिनूर संसार का सबसे बहुमूल्य हीरा है। तब भी था। सच तो यह है कि आज कोहिनूर केवल पुराने कोहिनूर का एक तिहाई हिस्सा बचा है। उस किसान के घर में यह तीन गुना बड़ा था। फिर इसको काटा गया है, इस पर पहलू रखे गए हैं, इसको निखारा गया है, साफ किया गया है। एक तिहाई वजन बचा है। तब भी दुनिया का सर्वाधिक बहुमूल्य हीरा है। तब तो तीन गुना था! मगर वह किसान तो गरीब था सो गरीब ही रहा।
वह तो संयोग की बात थी कि एक घुमक्कड़ साधु उसके घर रात मेहमान हो गया।
और उस साधु ने यह हीरा देखा। वह साधु साधु होने के पहले जौहरी था। उसने कहा कि मैंने जीवन में बहुत हीरे देखे, मगर इससे बड़ा हीरा नहीं देखा। इसको आंगन में डाल रखा है, पागल है तू? कोई चुरा ले जाएगा।
उसने कहा, यह तो तीन साल से पड़ा है, कोई चुरा नहीं ले गया। गांव के गरीब किसानों को किसी को भी पता नहीं था कि यह हीरा है, चुरा कर कोई ले जाता किसलिए? जब बोध हुआ कि हीरा है, उठा लाया जल्दी से। घबड़ाहट से बाहर गया कि कहीं कोई उठा न ले गया हो। रात थी। आधी रात को। फिर सुबह तक भी प्रतीक्षा नहीं की। रात भर सो भी न सका कि कहीं कोई चोर इत्यादि न आ जाए। तीन साल से पड़ा था, कोई चिंता न थी, कोई फिक्र न थी।
सुबह ही उठ कर हैदराबाद के नवाब निजाम के यहां पहुंच गया। बहुत धन मिला उसे पुरस्कार में। हालांकि वह धन कुछ भी न था हीरे के मुकाबले। मगर किसान तो समझा कि बहुत मिला, अपूर्व मिला, इससे ज्यादा क्या मिल सकता है! उसको क्या पता था कि हीरे की कितनी कीमत है।
तुम्हारी आत्मा भी यूं है कि तुम्हें उसका पता नहीं। और जब पता ही नहीं तो गुरजिएफ ठीक कहता है कि है या नहीं, इससे क्या फर्क पड़ता है? सिर्फ उन्हीं के पास है जिन्हें पता है। सिर्फ ध्यानी के पास आत्मा है, अगर ठीक से समझो। क्योंकि वही जौहरी है। गैर-ध्यानी के पास कोई आत्मा नहीं है! गैर-ध्यानी तो खोका समझो। आत्मा आंगन में पड़ी है माना, मगर उसको न उसकी कोई कीमत है, न कोई मूल्य है। और जब तुम्हें पता ही नहीं तो तुम क्या खाक आत्मा की स्वतंत्रता का उपयोग करोगे!
तुम पूछते हो, गुणवंतरायः "आत्मा शरीर धारण करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है... ।"
लेकिन तुम्हारी आत्मा नहीं, किसी प्रबुद्ध व्यक्ति की आत्मा। लेकिन
तब एक मुश्किल खड़ी होती है। प्रबुद्ध व्यक्ति की आत्मा किसी भी शरीर में प्रवेश करने को स्वतंत्र है, लेकिन वह प्रवेश ही क्यों करे? आखिर सभी शरीर छोटे-छोटे कारागृह हैं। तुम यह कह रहे हो कि आत्मा किसी भी कारागृह में प्रवेश करने के लिए स्वतंत्र है। मगर जब तुम स्वतंत्रता का बोध करोगे तो तुम किसी भी कारागृह में क्यों प्रवेश करोगे?
इसलिए जो जाग जाता है वह तो फिर किसी शरीर में प्रवेश नहीं करता। वह
तो विश्व-आत्मा में प्रवेश कर जाता है। वह तो अपनी आत्मा को विराट के साथ लीन कर देता है। वह तो एक हो जाता है अनंत के साथ। जो शरीरों में प्रवेश करते हैं, उनको आत्मा का कोई पता नहीं, वे तो मूर्च्छित लोग हैं। और मूर्च्छित व्यक्ति क्या चुनेगा? मूर्च्छित व्यक्ति अपनी मूर्च्छा के अनुसार ही चुनेगा न!
इसलिए तुम पूछ रहे होः "तो फिर अपंग, अंधे और लाचार बच्चों के पीड़ा से पूर्ण शरीर का चयन क्यों?"
मूर्च्छित व्यक्ति की धारणाएं हैं। अब समझ लो कि महात्मा गांधी, अब
ये समझते हैं कि दरिद्र नारायण हैं। अगर ईमानदारी से यह मानते हैं कि दरिद्र नारायण हैं, तो मर कर ये दरिद्र में ही प्रवेश करेंगे, स्वभावतः। अमीर में प्रवेश करके क्या नारायण से दूर जाना है? ये तो दरिद्र में ही प्रवेश करेंगे। इनकी धारणा इनको दरिद्र में ले जाएगी।
अगर अछूत हरिजन हैं... हरिजन की पहले कुछ और व्याख्या थी। हरिजन की बड़ी प्यारी व्याख्या थी। नरसी मेहता ने हरिजन की ठीक-ठीक व्याख्या की हैः हरिजन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाने रे। कहां तो हरिजन की यह व्याख्या और

कहां जगजीवनराम हरिजन! चमार हो गए कि हरिजन हो गए! भंगी हो गए कि हरिजन हो गए!
महात्मा गांधी खुद भी अपने आश्रम में पाखाना साफ करते थे, औरों से भी करवाते थे। अब तुम पूछ रहे हो गुणवंतराय पारिख कि अपंग, अंधे और लाचार बच्चों के पीड़ा से पूर्ण शरीर का चयन क्यों? अगर महात्मा गांधी को चुनना ही होगा कोई शरीर तो भंगी का चुनेंगे। पाखाना साफ करेंगे। सिर पर पाखाना ढोएंगे। तभी उनके चित्त को शांति मिलेगी, नहीं तो चित्त को शांति नहीं मिल सकती। धारणाएं तो दिक्कत देंगी न! आखिर तुम्हारी धारणाओं के अनुसार ही तो तुम चुनाव करोगे!
जीवन भर तुम अंधे की तरह जीते हो, आंख खोलते ही नहीं। आंख खोलने से डरते हो कि कहीं आंख खोलने से वह न दिखाई पड़ जाए जो तुम्हारी मान्यता के विपरीत है।
तुमने घंटाकर्ण की कहानी सुनी न, जो अपने कानों में घंटे अटकाए रखता था! घंटे बजते रहते, ताकि कोई ऐसी बात सुनाई न पड़ जाए जो उसके सिद्धांत के खिलाफ जाती है।
जापान में एक कहानी है। एक बौद्ध साध्वी अपने साथ माणिक की बनी हुई छोटी सी बुद्ध की प्रतिमा रखती थी। और मंदिरों में ठहरती, साध्वी थी, तो मंदिरों में बुद्धों की और भी बहुत प्रतिमाएं होती थीं। सब माना बुद्ध की प्रतिमाएं हैं, मगर अपनी प्रतिमा की बात ही और! अहंकार कैसे-कैसे रूप लेता है! वह रोज पूजा करती अपनी माणिक की प्रतिमा की। पूजा में धूप जलाती, दीप जलाती। मगर उसको यह डर भी लगा रहता कि धूप तो उड़ेगी! उड़ेगी, और दूसरे बुद्ध बैठे हैं न मालूम कितने! बुद्ध मंदिरों में बहुत बुद्ध होते हैं। और दूसरे बुद्धों की नाक तक पहुंच गई तो अपने बुद्ध वंचित हुए। सो उसने एक पोंगरी बना रखी थी, सो बुद्ध के नाक से जोड़ देती थी।
उसका कुल परिणाम इतना हुआ कि बुद्ध की नाक काली पड़ गई। खुद की नाक कटी, बुद्ध की भी कट गई! नासमझों के हाथ में बुद्ध भी पड़ जाएं तो उनकी भी दुर्गति हो जाएगी।
अब ये तुम्हारे जीवन के जो आधार हैं, अगर गलत हैं, तो तुम ऐसा ही चयन करोगे। स्वतंत्रता तो तुम्हें हो भी नहीं सकती। तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारी मान्यताएं, तुम्हारे विश्वास तुम्हें अटकाएंगे।
महंत गरीबदास झोलीवाले ने पूछा है... ।
अब देखते हो, इन्हें कोई और नाम न मिला--गरीबदास! और उतने से भी चित्त नहीं भरा--झोलीवाले! अब ये अगर मरें भी तो झोली तो साथ ले ही जाएंगे, पक्का समझना। ये झोली लटकाए ही पैदा होंगे। यह खोपड़ी देखते हो! मगर ऐसी खोपड़ियां इस देश में बहुत हैं।
अब उन्होंने पूछा है कि आप हम जैसे आचरणशील साधु-संतों की आलोचना में सदा संलग्न रहते हैं, जिससे सामान्य व्यक्ति में हमारे प्रति श्रद्धा खंडित होती है। और संतों में श्रद्धा ही जीवन का आधार है। और आप लोगों की श्रद्धा डगमगा कर उनके नरक का इंतजाम कर रहे हैं। क्या यह आपको शोभा देता है?
अब जरा सोचो, गरीबदास झोलीवाले स्वयं को सोचते हैं कि आप हम जैसे आचरणशील साधु-संतों की आलोचना में सदा संलग्न रहते हैं!
कौन सा आचरण और कैसे साधु-संत? और जो स्वयं को साधु-संत मानते हों, एक बात तो निश्चित है कि उन्हें साधुता का और संतत्व का कोई भी पता नहीं। गरीबदास, जरा उपनिषद पढ़ो। उपनिषद कहते हैंः जो सोचता है कि मैं जानता हूं, जानना कि नहीं जानता। उपनिषद यह भी कहते हैं कि अज्ञानी तो अंधकार में भटकते हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं।
अब क्या तुम यह कहोगे कि उपनिषद ज्ञानियों की आलोचना में लगे हुए हैं, लोगों की श्रद्धा ज्ञानियों में खंडित कर रहे हैं, और अज्ञानियों की प्रशंसा कर रहे हैं? क्योंकि उपनिषद कहता हैः अज्ञानी अंधकार में ही भटकते हैं, मगर ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। और जो कहता है मैं जानता हूं, वह निश्चित नहीं जानता। और जो कहता है कि मैं नहीं जानता हूं, वह जानता है।
यह तो अज्ञान की प्रशंसा हो गई और ज्ञान की आलोचना हो गई।

यहां भी उपनिषद घटित हो रहा है। और आलोचना साधु-संतों की नहीं हो रही। साधु-संतों के नाम से जो हजार तरह के ढोंग-धतूरे चल रहे हैं, उनकी आलोचना हो रही है। और उनकी आलोचना होनी चाहिए। गलत की तो आलोचना होनी चाहिए।
और इतनी घबड़ाहट क्या है? अगर मैं सत्य की आलोचना कर रहा हूं, तो इतने साधु-संत हैं, वे लोगों को समझाएं कि मैं सत्य की आलोचना कर रहा हूं और मेरी आलोचना गलत है। लेकिन मेरी आलोचना का एक भी उत्तर नहीं मिलता, सिर्फ गालियां देते हैं साधु-संत। उत्तर देने चाहिए। और मैं जब भी किसी चीज की आलोचना करता हूं तो अकारण नहीं करता। फिर मैं इसकी कोई चिंता नहीं करता कि वह शास्त्र में है, सिद्धांत में है। अगर गलत है तो गलत है।
ऋग्वेद में यह वचन हैः सत्योनत तभीता भूमिः। पृथ्वी सत्य से ठहरी हुई है।
अब इसकी कैसे आलोचना न की जाए? पृथ्वी ठहरी हुई ही नहीं है। पृथ्वी घूम रही है। अब ऋग्वेद कहे चाहे कोई कहे, मैं क्या कर सकता हूं? इसमें मेरा क्या कसूर? पृथ्वी घूम रही है। पृथ्वी दोहरे घुमाव में हैः अपनी कील पर घूम रही है--एक घुमाव; और फिर दूसरा घुमाव, पूरा परिभ्रमण कर रही है सूर्य का। और एक तीसरा भी घुमाव अभी-अभी वैज्ञानिक खोज पा रहे हैं, क्योंकि सूर्य भी पृथ्वी के साथ किसी महासूर्य का परिभ्रमण कर रहा है। तो तिहरा घुमाव हो गया। अपनी कील पर घूम रही है, फिर सूरज का चक्कर लगा रही है, फिर सूरज के साथ किसी महासूर्य का चक्कर लगा रही है। और कौन जाने वह महासूर्य भी किसी और महासूर्य का चक्कर लगा रहा हो! यहां चक्कर में चक्कर हैं, घनचक्कर! अब ऋग्वेद का वचन बिल्कुल गलत है। पृथ्वी ठहरी हुई ही नहीं है। और सत्य पर ठहरी हुई है, वे कह रहे हैं।
सत्य पर पृथ्वी नहीं ठहरती। वस्तुएं सत्य पर नहीं ठहरतीं। चैतन्य सत्य पर ठहरता है। वस्तुएं तथ्य पर ठहरती हैं, सत्य पर नहीं। विज्ञान तथ्य की खोज करता है, धर्म सत्य की खोज करता है।
लेकिन जवाब नहीं हैं!
अब गरीबदास झोलीवाले इसका जवाब दें। निकालें झोली में से कुछ जवाब! टटोलें झोली में, शायद कहीं जवाब हो।
और किन साधु-संतों की मैं आलोचना कर रहा हूं? तुम्हारे पुराणों को जरा पढ़ो और तुम्हारे साधु-संतों का आचरण जरा देखो। तुम तो दुर्वासा को भी ऋषि कहते हो! अगर दुर्वासा ऋषि है तो फिर इस दुनिया में किसी को भी ऋषि भूल कर नहीं होना चाहिए। जरा-जरा सी बात पर जो अभिशाप दे दे! ऋषि तो वह जिसका जीवन ही वरदान हो; जिसके पास भी बैठ जाओ तो वरदानों की वर्षा हो जाए। लेकिन यह दुर्वासा को भी ऋषि कहते हो--जो महाक्रोधी, अत्यंत दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति, जो छोटी-मोटी बात के लिए अगले जन्मों तक को बिगाड़ दे! और इनको तुम ऋषि कहोगे?
विनोबा भावे एक ऋषि की चर्चा करते हैं। उस ऋषि का नाम हैः गाड़ीवाले रैक्व। गरीबदास झोलीवाले जैसे कोई सज्जन रहे--गाड़ीवाले रैक्व। वे गाड़ी में ही चलते थे। गाड़ी में ही उनका अड्डा था। और विनोबा ने उनकी बड़ी प्रशंसा की है। लेकिन आधी कहानी कही है। इसको मैं बेईमानी कहता हूं।
देश का सम्राट अपने स्वर्ण-रथों में हीरे-जवाहरात भर कर गाड़ीवाले रैक्व के पास आया। हीरे-जवाहरात उनके चरणों में उसने ढेर लगा दिए और चरणों में झुक कर कहा कि मुझे ब्रह्मज्ञान दें! तो रैक्व ने कहा, अरे शूद्र! तू सोचता है कि धन से, हीरे-जवाहरातों से ज्ञान पाया जा सकता है!
बस विनोबा इतनी ही कहानी कहते हैं। यह कहानी पूरी नहीं है, यह कहानी अधूरी है, छांट कर निकाली गई है। पूरी कहानी मैं तुम्हें कहता हूं, तब तुम समझोगे कि क्या राज था गाड़ीवाले रैक्व का। क्योंकि इतनी कहानी तो बड़ी ऊंची लगती है, क्योंकि बात गहरी लगती है कि गाड़ीवाले रैक्व ने कहा कि तू शूद्र है। हालांकि सम्राट शूद्र नहीं था, मगर शूद्र उसे कहा, क्योंकि तेरी आस्था धन में है। तू सोचता है हीरे-जवाहरात से ज्ञान पाया जा सकता है, सत्य पाया जा सकता है। कोई भी इतनी कहानी पढ़ेगा तो लगेगा कि रैक्व ने बात तो पते की कही। कोई धन से सत्य तो नहीं खरीदा जा सकता। सत्य कोई वस्तु तो नहीं है कि खरीदी जा सके।

लेकिन पूरी कहानी यों है कि गाड़ीवाले रैक्व... । उन जमानों में बाजारों में गुलाम बिकते थे और अधिकतर सुंदर स्त्रियां बिकती थीं। जिनको तुम स्वर्ण-युग कहते हो, सतयुग कहते हो, बड़े गजब के स्वर्ण-युग थे, बड़े सतयुग थे! स्त्रियां बाजारों में वस्तुओं की तरह बिकती थीं। और एक बहुत सुंदर स्त्री बाजार में बिकने आई थी, तो गाड़ीवाले रैक्व भी उसको खरीदने गए थे। ऋषि-मुनि भी स्त्रियां खरीद कर रखते थे!
तुम जान कर यह चकित होओगे कि अब हम जो शब्द का उपयोग करते हैं, वह उचित नहीं है। हम शब्द का उपयोग करते हैंः वर-वधू। वधू का जो वैदिक अर्थ है, वह खरीदी हुई औरत, पत्नी नहीं। तो ऋषियों की पत्नियां होती थीं और अनेक वधुएं होती थीं। वधुएं यानी खरीदी गईं जो, उप-पत्नियां। तो हर ऋषि पत्नी भी रखता था और खरीदी हुई वधुएं भी रखता था। ये गजब के ऋषि थे! मगर कोई हैरानी की बात नहीं, जब अवतारी पुरुष कृष्ण सोलह हजार स्त्रियां रख सकते हैं, और बिना खरीदे, दूसरों की छीन कर ला सकते हैं, चुरा कर ला सकते हैं, झपट कर ला सकते हैं, जबरदस्ती ला सकते हैं, तो ये बेचारे कम से कम खरीद कर लाते थे!
मगर आदमी बिकें, स्त्रियां बिकें--यह बात अशोभन। और ऋषि खरीद कर लाएं!
ये ऋषि गए थे खरीदने और वह सम्राट भी गया था खरीदने, क्योंकि उस सुंदर स्त्री पर सबकी नजर थी। भाव बढ़ते गए। ऋषि के पास भी धन की कमी न थी। लेकिन सम्राट से कैसे जीतता? अंततः सम्राट बाजी मार ले गया, स्त्री को खरीद कर चला गया। रैक्व के अहंकार को चोट लगी।
यही सम्राट वर्षों बाद सत्य को सीखने के लिए रैक्व के चरणों में आया हीरे-जवाहरात लेकर। तो रैक्व ने कहा, अरे शूद्र! ले जा अपना धन! धन से कोई सत्य नहीं खरीदा जाता।
तब उस सम्राट के वजीरों ने कहा कि आपको याद है कि आपने उस स्त्री को खरीद लिया था जिस पर रैक्व की नजर थी? वह यह कह रहा है कि उस स्त्री को ला, अरे शूद्र! धन से सत्य नहीं खरीदा जाता।
तो सम्राट उस स्त्री को लेकर पहुंचा और तब रैक्व ने सम्राट को धर्म की शिक्षा दी।
यह कहानी पूरी है। धन से नहीं खरीदा जाता, लेकिन स्त्री ले आओ तो खरीदा जा सकता है! अब ये गजब के ऋषि-मुनि! और यह कोई एक ऋषि की बात नहीं है, तुम अपने सारे ऋषि-मुनियों को जरा गौर से देखो, तो तुम बहुत चकित होओगे। इनके जीवन में तुम कुछ ऐसा खास न देखोगे जिसको मूल्यवान कहा जा सके। तुम्हारे ऋषि-मुनि तो दूर, तुम्हारे देवी-देवता भी सब लंपट! स्वर्ग से उतर आते हैं, दूसरों की स्त्रियों को भ्रष्ट करते हैं। और देवी-देवता हैं! और तुमको शर्म भी नहीं आती इनको देवी-देवता कहने में! और ये तुम्हारे पुराण इनकी कहानियों से भरे हुए हैं।
अब तुम मुझसे कह रहे हो कि "आप हम जैसे आचरणशील साधु-संतों की आलोचना में सदा संलग्न रहते हैं।"
मैं साधु और संत की ठीक-ठीक व्याख्या निर्धारित करना चाहता हूं। इसलिए जो गलत हैं उनकी आलोचना करूंगा, ताकि सत्य की ठीक-ठीक व्याख्या हो सके।
और तुम यह भी कहते हो कि "जिससे सामान्य व्यक्ति में हमारे प्रति श्रद्धा खंडित होती है।"
जो श्रद्धा खंडित हो जाए वह श्रद्धा ही नहीं। जिनकी मुझमें श्रद्धा
है उनकी तुम खंडित करके तो दिखाओ! मैं तुम्हें निमंत्रण देता हूं, गरीबदास झोलीवाले, यहीं रहो! जिनकी मुझमें श्रद्धा है, किसी की खंडित करके दिखाओ। उसकी श्रद्धा खंडित करने में तुम्हारी झोली भी चली जाएगी, तुम्हारा आचरण भी चला जाएगा, तुम्हारी साधुता भी खो जाएगी।
श्रद्धा खंडित होती ही नहीं, उसी का नाम श्रद्धा है। जो खंडित हो जाए
वह झूठी श्रद्धा है। अगर श्रद्धा भी खंडित हो जाए तो इस जगत में फिर अखंड क्या बचेगा? श्रद्धा कभी खंडित नहीं होती। मगर हां, झूठी श्रद्धा तो खंडित होगी। इसीलिए तुम्हें डर पैदा होता है।
और तुम दूसरों को सामान्य व्यक्ति कह रहे हो, अपने को आचरणशील साधु- संत! तुम असामान्य और दूसरे सामान्य। दूसरे तुच्छ, तुम पवित्र! यह भाव ही

अधार्मिक है। यह धारणा ही हीन है। सच्ची साधुता सबके प्रति सम्मान से भरी होती है। सच्ची साधुता में कोई सामान्य नहीं होता।
मेरे लिए तो सभी के भीतर परमात्मा विराजमान है। परमात्मा सामान्य कैसे हो सकता है? सभी के भीतर भगवत्ता है। चाहे तुम्हें पता हो या न हो, मगर मुझे तो पता है। तुम्हें न भी पता हो तो कोई हर्ज नहीं। इससे क्या फर्क पड़ता है? मुझे पता है कि तुम्हारे भीतर भगवान उतना ही विराजमान है जितना मेरे भीतर विराजमान है। इसलिए मैं तुमसे कोई ऊंचा नहीं, तुम मुझसे कुछ नीचे नहीं। मैं कुछ विशिष्ट नहीं, तुम कुछ सामान्य नहीं।
यह कोटियों में बांटना अहंकार की भाषा है। और अहंकार से साधुता का क्या संबंध हो सकता है? निरहंकारिता साधुता का नाम है।
और गरीबदास कहते हैं कि "संतों में श्रद्धा ही जीवन का आधार है।"
यह किसने कहा? अपने में श्रद्धा जीवन का आधार है, संतों में श्रद्धा नहीं। संत कौन है? इन्होंने कोई ठेका लिया है? फिर जो एक के लिए संत है, दूसरे के लिए संत नहीं है। दिगंबर जैन के लिए दिगंबर मुनि ही केवल संत है। औरों की तो बात छोड़ दो, श्वेतांबर जो मुनि है, जो सफेद वस्त्र पहने होता है, वह भी संत नहीं। क्योंकि जब तक नग्न न हो, तब तक कैसे संत?
अब किसी जैन से पूछो कि झोलीवाला कोई संत हो सकता है? कभी नहीं हो सकता। अभी झोली भी रखे हुए है, तो अभी संत कैसा? संत को तो सबका त्याग करना होता है। झोली का तो मतलब ही है--इरादे कुछ खराब हैं, नीयत अच्छी नहीं है। किसी की जेब काटोगे, किसी के जूते झोली में रख लोगे, कुछ न कुछ करोगे। झोली किसलिए रखे हो? कोई यूं ही तो झोली टांगे नहीं फिरता। कुछ मतलब होता है, झोली भरना है। कोई जैन तुम्हें संत नहीं मानेगा।
जैनों के संत दूसरों को संत मालूम नहीं होते। किसी मुसलमान से पूछो, किसी ईसाई से पूछो कि नग्न हो जाने से संतत्व का क्या संबंध है? वह कहेगा, कोढ़ियों की सेवा करो, तब संत होते हो। और जैन मुनि कोढ़ी की सेवा करे, कभी नहीं! उसने कोई पाप थोड़े ही किए पिछले जन्म में जो कोढ़ी की सेवा करे! अरे कोढ़ी की सेवा वे करें जिन्होंने पिछले जन्म में पाप किए हों। जिन्होंने बहुत किए, वे कोढ़ी हुए; जिन्होंने कुछ कम किए, वे कोढ़ी की सेवा कर रहे हैं। सीधा गणित है। जैन मुनि क्यों किसी की सेवा करे? सेवा लेता है जैन मुनि, करता नहीं।
जैन श्रावक जब मुनि के दर्शन को जाते हैं, तो उनसे पूछो, कहां जा रहे हो? वे कहते हैं कि संत की सेवा को जा रहे हैं। संत की सेवा करनी होती है, संत सेवा नहीं करता।
मगर ईसाई की धारणा और है। वह कहता है, संत सेवा करता है, तो ही संत है।
संत कौन है? और तुम कहते हो, संतों में श्रद्धा ही जीवन का आधार है। किसकी परिभाषा को मानें? रामकृष्ण परमहंस हिंदुओं के लिए संत हैं, पर जैनियों से पूछो। फौरन कहेंगे, यह मछलीखाऊ संत कैसे हो सकता है? मछली तो खाते रहे वे। बंगाली और मछली-भात न खाए, यह असंभव है। यह तो परमहंस की कृपा है कि मछलियों को पचा गए, वे भी परमहंस हो गईं।
लेकिन कोई जैन यह मानने को राजी नहीं होगा। जैन संत तो आलू भी नहीं खा सकता। अब आलू बेचारा बिल्कुल गरीबदास! न कभी कोई पाप किया आलुओं ने, न किसी को कभी सताया। मगर आलू भी नहीं खा सकता, क्योंकि आलू जमीन में नीचे दबा हुआ पलता है अंधेरे में, अंधेरे की वजह से तमस पैदा हो जाता है। तामसी भोजन। मछली तो बात ही दूर की हो गई। टमाटर नहीं खाता, क्योंकि टमाटर देखने में मांस जैसा मालूम पड़ता है। सिर्फ देखने में। नहीं तो टमाटर बिल्कुल भोले- भाले लोग! और हमेशा पद्मासन में बैठे रहते हैं, हमेशा ध्यान-मग्न। और देखने में कैसे प्यारे लगते हैं--बिल्कुल साधु-संत! मगर जैन मुनि नहीं खाएगा।
कौन पर श्रद्धा करनी?
नहीं, मैं कहता हूं, किसी और पर श्रद्धा नहीं करनी है, स्वयं पर श्रद्धा करनी है। जीवन का आधार हैः स्वयं पर श्रद्धा।
और तुम पूछते हो गरीबदास कि "आप लोगों की श्रद्धा डगमगा कर उनके नरक
का इंतजाम कर रहे हैं।"

अरे नरक में तुम हो! और कहीं नरक है? अब यहां से और गिरने का कोई उपाय है? अब यहां से और कहीं नहीं गिर सकते। यही है नरक, और कहीं कोई नरक नहीं है। और इस नरक को बनाने में तुम्हारे तथाकथित साधु-संतों का हाथ है।
मैं इस नरक को स्वर्ग बनाने की कोशिश कर रहा हूं। मेरे संन्यासियों
को देखो। मेरे संन्यासी नरक भी पहुंच जाएंगे तो नरक को स्वर्ग बना लेंगे। क्या अंतर पड़ता है? वहां भी गीत, वहां भी संगीत, वहां भी नाच, वहां भी उत्सव शुरू हो जाएगा। और मुझे कोई अड़चन नहीं है, शैतान को भी संन्यास दे दूंगा! शैतान को कोई दूसरा आदमी संन्यास दे भी नहीं सकता। शैतान सिवाय मेरे और किसी से संन्यास ले भी नहीं सकता।
और गरीबदास झोलीवाले, तुम अगर स्वर्ग भी चले गए, वहां जो इकट्ठे हो गए हैं तुम जैसे लोग, मैंने तो सुना है कि परमात्मा अब वहां नहीं रहता। ये उदासीन सूरतें, ये मुर्दे चेहरे, ये सड़े-गले लोग, ये उलटे-सीधे काम वहां भी कर रहे होंगे--कोई शीर्षासन कर रहा होगा, कोई खड़ेश्री बाबा खड़े ही होंगे, कोई उपवास करके अपने को मार रहा होगा। पुरानी आदतें छूट तो नहीं जाएंगी। कोई नंग-धड़ंग खड़े होंगे। क्या-क्या सर्कस नहीं हो रहा होगा स्वर्ग में! मैंने तो सुना है कि परमात्मा ने बहुत पहले स्वर्ग छोड़ दिया। वह वहां नहीं रहता अब। उसने जगह बदल ली है।
तो कोई हर्जा नहीं, मुझे कोई चिंता नहीं। मैं नरक जाऊं, मेरे संन्यासी नरक जाएं, कोई चिंता नहीं। हमें स्वर्ग की कोई आकांक्षा भी नहीं। हम तो जहां जाएंगे वहां स्वर्ग बना लेंगे।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
आठवां प्रवचन

जीवन का शंखनाद

पहला प्रश्नः ओशो, परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति, प्रत्यक्ष द्विषः। देवता परोक्ष से प्रेम करते हैं, प्रत्यक्ष से द्वेष।
ओशो, गोपथ ब्राह्मण के इस सूत्र को खोलने की अनुकंपा करें।

प्रदीप भारती, द्वेष का दिव्यता से कोई भी संबंध नहीं हो सकता। जहां द्वेष है, वहां दिव्यता नहीं।
राबिया-अल-अदाबिया के जीवन में यह प्यारा उल्लेख है। उसके घर एक फकीर, हसन, मेहमान था। राबिया की कुरान को सुबह-सुबह उठ कर पढ़ रहा था। देख कर चकित हुआ कि राबिया ने कुरान में कुछ वचन काट डाले थे। यह बात कोई मुसलमान कल्पना भी नहीं कर सकता। कुरान में सुधार, कुरान में तरमीम मुसलमान के लिए कल्पनातीत है। क्योंकि कुरान तो अंतिम परमात्मा का संदेश है, अब उसमें कोई सुधार कभी नहीं होगा।
हसन तो बहुत चौंका। सोचा राबिया को शायद पता नहीं कि उसकी कुरान में किसी नासमझ ने, किसी काफिर ने, किसी पापी ने कुछ पंक्तियां काट दी हैं। उसने राबिया को कहा। राबिया कहने लगी, किसी काफिर ने नहीं, किसी पापी ने नहीं, वे पंक्तियां मैंने ही काट दी हैं।
तब तो हसन और चौंका। उसने कहा, यह तो और भी असंभव मालूम होता है। राबिया, तू जो कि ज्ञान को उपलब्ध है, कुरान में पंक्तियां काटने जैसा दुष्कृत्य करेगी! मजाक कर रही होगी मुझसे।
राबिया ने कहा, नहीं। जब से सत्य को जाना, जब से परमात्मा की प्रतीति हुई, तब से जीवन समग्ररूपेण प्रेम हो गया है। इसलिए मजबूरी में ये पंक्तियां काटनी पड़ीं, क्योंकि ये पंक्तियां कहती हैं--शैतान को घृणा करो। और अब घृणा मुझे असंभव हो गई है। अब शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो तो भी मैं प्रेम ही कर सकती हूं। प्रेम के अतिरिक्त मेरे पास कुछ बचा नहीं। अब सवाल यह नहीं है कि शैतान सामने है कि परमात्मा सामने है। अब सवाल यह है कि मेरे भीतर घृणा का कोई उपाय नहीं। मेरे भीतर घृणा का कोई बीज भी नहीं। किसी कोने-कातर में छिपा कोई अंधेरा भी नहीं। मैं घृणा करना भी चाहूं तो असंभव है। अब तो प्रेम अपरिहार्य है। मैं शैतान को भी उतना ही प्रेम करूंगी जितना परमात्मा को। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। अब मैं कुरान की सुनूं कि अपने अनुभव की सुनूं? मजबूरी में मुझे ये पंक्तियां काटनी पड़ी हैं। और ध्यान रहे, यह कुरान की प्रति मेरी है, यह मेरी प्रतीति के अनुकूल होनी चाहिए। और मेरी प्रतीति प्रेम की है। और यह भाषा घृणा की है--शैतान को घृणा करो।
लेकिन घृणा करने के लिए घृणा को बचाना तो होगा ही। घृणा देने के लिए घृणा भीतर तो सम्हाल कर रखनी ही होगी। और ध्यान रहे, घृणा और प्रेम एक साथ भीतर नहीं हो सकते। और जब तक घृणा है तब तक प्रेम नहीं। फिर चाहे घृणा को तुम कोई भी रंग दो, कोई भी रूप दो। और जब प्रेम आता है तो यूं आता है जैसे प्रकाश आता है। प्रकाश के आगमन पर अंधेरा नहीं। अंधेरा है तो प्रकाश का आगमन नहीं। यूं चाहो तो अंधेरे को ही प्रकाश कह लो, यह तुम्हारी मर्जी। मैं इस सूत्र का समर्थन नहीं कर सकता हूं। गोपथ ब्राह्मण का यह सूत्र बुनियादी रूप से गलत है।
यह सूत्र कहता हैः "देवता परोक्ष से प्रेम करते हैं और प्रत्यक्ष से द्वेष।"
द्वेष की भाषा दिव्यता की भाषा नहीं। देवता और द्वेष करे! फिर देवता कैसा? देवता भी द्वेष करे तो फिर द्वेष करने वाले साधारण मनुष्यों में और दिव्यता की अनुभूति में कोई भेद न रहा। द्वेष तो मनुष्यता से भी नीचे की बात है; वह तो पशुता का लक्षण है। और दिव्यता है मनुष्य का अतिक्रमण। वह तो है मनुष्य के भीतर परमात्मा के छिपे हुए रूप का अभिव्यक्त हो जाना।
फिर, यह भी समझना कि परोक्ष और प्रत्यक्ष में भेद क्या है?

जो परोक्ष है वह प्रत्यक्ष हो सकता है। और जो प्रत्यक्ष है वह कभी परोक्ष था। एक बीज है; हाथ में लो। अभी फूल अप्रत्यक्ष हैं, परोक्ष हैं, छुपे हैं, प्रच्छन्न हैं। अभी बीज प्रत्यक्ष है। लेकिन बीज को जमीन में बो दो। बीज मिट जाएगा। जो प्रत्यक्ष था वह खो जाएगा, लीन हो जाएगा। और फूल प्रकट हो जाएंगे। पौधा उगेगा, कलियां आएंगी, फूल खिलेंगे। जो परोक्ष था, अब प्रत्यक्ष हो गया। और फिर फूल बीजों में खो जाएंगे। फिर फूल झर जाएंगे और बीज रह जाएंगे। तो जो प्रत्यक्ष हो गया था वह फिर परोक्ष हो गया। प्रत्यक्ष और परोक्ष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बुद्धत्व तुम्हारे भीतर परोक्ष है, बुद्ध के भीतर प्रत्यक्ष है। क्या देवता बुद्ध के प्रति द्वेष करेंगे और तुमसे प्रीति करेंगे? परोक्ष से प्रेम और प्रत्यक्ष से द्वेष--यह कैसा गणित है?
लेकिन देवता, दिव्यता से इसका कोई संबंध नहीं। यह गोपथ ब्राह्मण पुरोहित की भाषा बोल रहा है। पुरोहित निश्चित रूप से प्रत्यक्ष से द्वेष सिखाता है। प्रत्यक्ष है जगत और परोक्ष है परमात्मा। सदियों-सदियों से पुरोहित के जीवन का यही आधार रहा है; उसके शोषण की यही प्रक्रिया है कि वह प्रत्यक्ष से, जो आंख के सामने है उससे द्वेष सिखाए, और जो आंख के सामने नहीं है उसके लिए तुमसे हाथ जुड़वाए। गौर से देखोगे तो पुरोहित के व्यवसाय का सूत्र है यह। क्योंकि जो प्रत्यक्ष है उसके लिए तो पुरोहित की कोई जरूरत नहीं, किसी मध्यस्थ की कोई जरूरत नहीं। जो परोक्ष है, जो दिखाई नहीं पड़ता तुम्हें, स्वभावतः तुम्हें किसी का सहारा लेना होगा, जो दावा करता है कि उसे दिखाई पड़ता है। तुम्हें बीच में कोई मध्यस्थ, कोई दलाल स्वीकार करना होगा।
और यही दलाली धर्म के नाम को, धर्म की सारी संभावना को विनष्ट करने का कारण बनी। धर्म की नाव को डुबाया इसी दलाली ने, इन्हीं दलालों ने। ये इस किनारे को नदी के घृणा करना सिखाते हैं, द्वेष करना सिखाते हैं। और नदी के उस किनारे को प्रेम करना सिखाते हैं। और वह दूसरा किनारा तुम्हें दिखाई पड़ता नहीं। स्वभावतः उस दूसरे किनारे के नक्शे ये पुरोहित तुम्हें देते हैं।
इनको भी दिखाई नहीं पड़ता। इनको भी कोई पता नहीं। लेकिन जो नहीं दिखाई पड़ता उसके नाम पर शोषण किया जा सकता है। जो नहीं दिखाई पड़ता उसके संबंध में कुछ भी कहा जा सकता है और मानना पड़ेगा। और नहीं मानोगे तो डर, भय पैदा किया जाएगा कि नर्क में पड़ोगे, नर्क की अग्नि में जलोगे। और मानोगे तो प्रलोभन, पुरस्कार, स्वर्ग के आनंद, इन सबका तुम्हारे भीतर लोभ पैदा किया जाता है, तृष्णा पैदा की जाती है। एक तरफ भय और एक तरफ लोभ, इन दो पाटों के बीच में आदमी को पीसा गया है।
मगर प्रत्यक्ष के संबंध में पुरोहित की कौन सुनेगा? प्रत्यक्ष की खोज
तो विज्ञान करता है। प्रत्यक्ष की खोज में तो वैज्ञानिक प्रामाणिक होगा।
लेकिन परोक्ष की दुनिया का धंधा धोखेबाज और बेईमान खूब कर सकते हैं।
यह सूत्र देवताओं के संबंध में कुछ भी नहीं कहता। यह सूत्र, पुरोहित
की जो आधारशिला है, उसकी घोषणा कर रहा है।
"परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति। देवता परोक्ष से प्रेम करते हैं। प्रत्यक्ष द्विषः। और प्रत्यक्ष से द्वेष।"
लेकिन क्यों देवता प्रत्यक्ष से द्वेष करेंगे? क्योंकि प्रत्यक्ष अंततः परमात्मा की ही तो अभिव्यक्ति है। प्रत्यक्ष भी तो उसी का साकार रूप है, उसी निर्गुण ने गुण लिया, उसी निराकार ने आकार लिया। क्यों घृणा करेंगे? क्यों द्वेष करेंगे?
लेकिन धर्म तुम्हें यही सिखाते रहेः संसार को छोड़ो। संसार प्रत्यक्ष है; इसे त्यागो और परोक्ष की खोज करो। यूं तुम्हें अंधेरे में भटकाया गया है। यूं तुम्हारे हाथ में जो था वह छीन लिया गया और तुम्हें ऐसी चीजें दे दी गईं, जिनको न तुम देख सकते हो, न पहचान सकते हो।
तुमसे कहा जाता हैः संसार माया है और ब्रह्म सत्य है। जो है उसे तो माया समझाया जाता है; और जिसका तुम्हें कोई भी पता नहीं, उसके सत्य होने के तर्क दिए जाते हैं। इन तर्कों का खूब फायदा पुरोहितों ने, पंडितों ने, इमामों ने, पोपों ने जी भर कर उठाया है। स्वभावतः जिनको पृथ्वी का नक्शा

भी पता नहीं था उन्होंने स्वर्ग के नक्शे बना कर दे दिए। उस पर विवाद भी नहीं हो सकता, विवाद का कोई आधार भी नहीं हो सकता, कोई परीक्षण का उपाय भी नहीं, कोई कसौटी भी नहीं।
इसलिए जैन स्वर्गों का एक नक्शा बनाते हैं, हिंदू दूसरा नक्शा बनाते हैं, मुसलमान तीसरा नक्शा बनाते हैं, ईसाई चौथा नक्शा बनाते हैं। पृथ्वी पर कोई तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ धर्मों के कोई तीन हजार उपसंप्रदाय हैं। और इन सबके अपने नक्शे हैं। और सबकी मान्यता है, इनके नक्शे सही हैं। और इनके नक्शों को कोई भी गलत सिद्ध नहीं कर सकता। परोक्ष को गलत सिद्ध करने का भी उपाय नहीं।
प्रत्यक्ष के संबंध में पुरोहित मुश्किल में पड़ जाता है। इसलिए वह प्रत्यक्ष से बचता है; जब कि प्रत्यक्ष ही परमात्मा तक पहुंचने की सीढ़ी है। प्रत्यक्ष को ही समझोगे तो प्रत्यक्ष के भीतर छिपे हुए परोक्ष को भी खोज पाओगे।
लेकिन यह भी ख्याल रखोः जब परोक्ष को जान लोगे तो वह भी प्रत्यक्ष हो गया। तब और भी मुश्किल खड़ी होगी। तब इस सूत्र को मानना और भी मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि जिन्होंने परमात्मा का साक्षात्कार किया है, उनके लिए परमात्मा प्रत्यक्ष हो गया। क्या देवता परमात्मा को भी द्वेष करेंगे? जिन्होंने आत्मा को जान लिया उनके लिए आत्मा प्रत्यक्ष हो गई। प्रत्यक्ष का मतलब आंख के सामने हो गई।
कबीर कहते हैंः लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।
मगर देखा-देखी बात अगर है, तो प्रत्यक्ष हो गई। जो भी जान लिया, वही देवताओं के लिए द्वेष का कारण हो जाएगा। यह तो बड़ी अजीब बात हुई। इसका तो अर्थ यह हुआ कि अज्ञान को प्रेम करते हैं देवता और ज्ञान को घृणा करते हैं। तो देवता मूढ़ता के समर्थन में हैं और बुद्धत्व के विरोध में।
नहीं, मैं इस सूत्र से राजी नहीं हो सकता हूं। मुझे तो सामवेद का यह सूत्र ज्यादा प्रीतिकर लगता हैः देवस्य पश्य काव्यम्। भगवान के मूर्त काव्य प्रकृति को देखो।
यह प्रकृति भगवान का मूर्त काव्य है। यहां अमूर्त मूर्त हुआ है। यहां, जो छिपा था, प्रकट हुआ है। जो गीत हृदय की किन्हीं गहराइयों में दबा था, वह झरना बन कर फूट पड़ा है। ये चांद-तारे, ये सूरज, ये फूल, ये जीवन की अनंत भंगिमाएं, यह विशाल महोत्सव--यह परमात्मा की अभिव्यक्ति है, यह परमात्मा का काव्य है। यह उसका गीत है। इसको द्वेष करो? इसके प्रेम में डूबो! इसे गले लगाओ! इसके साथ नाचो! इसके साथ प्रीति का संबंध जोड़ो!
अगर तुम फूलों को प्रेम कर पाओ, अगर तुम चांद-तारों की प्रीति में पड़ जाओ, तो परमात्मा बहुत दूर नहीं है। क्योंकि जब तुम वीणा से उठते हुए संगीत के प्रेम में पड़ जाते हो, तो संगीतज्ञ कितनी दूर है? ये वीणा के स्वर संगीतज्ञ तक पहुंचने के लिए मार्ग बन जाएंगे। जब तुम नृत्य में आनंदमग्न हो जाते हो, तो नर्तक कहीं दूर है? नृत्य में ही तो छिपा है।
इसीलिए तो हमने परमात्मा को नटराज कहा है। बहुत प्यारा प्रतीक दिया है। इससे कोई प्यारा प्रतीक नहीं हो सकता। इसके पीछे बहुत गहरा राज है-- परमात्मा को नटराज कहने में, नर्तक कहने में। राज यह है कि यूं तो हम चित्रकार भी कह सकते हैं उसे, जैसे कि सामवेद का यह वचन उसे कवि कह रहा है। यह प्रकृति उसका काव्य है। तो परमात्मा कवि हुआ। उसने गाया यह गीत, परमात्मा गायक हुआ। उसने भरे ये रंग, ये फूल-फूल पर, ये इंद्रधनुषों में, ये तितलियों के पंखों पर, ये सारे रंग उसने भरे--वह चित्रकार हुआ।
मगर चित्रकार, कवि, मूर्तिकार और नर्तक में एक बुनियादी भेद है। जब मूर्ति बन जाती है तो मूर्तिकार और मूर्ति अलग हो जाते हैं। जब गीत पूरा हो जाता है तो गायक और गीत अलग हो जाते हैं। जब काव्य निर्मित हो जाता है तो कवि मर भी जाए तो भी काव्य बना रहेगा। कालीदास को गए बहुत समय बीत गया, मगर कालीदास का काव्य तो अभी भी है। कवि और उसकी कविता दो हो जाते हैं। चित्रकार और उसका चित्र दो हो जाते हैं। यह खूबी केवल नर्तक की है कि उसका नृत्य उससे अलग नहीं होता। नर्तक और नृत्य अटूट रूप से जुड़े हैं, अखंड रूप से जुड़े हैं। उन्हें भिन्न नहीं किया जा सकता, वे अभिन्न हैं। और नर्तक

अपनी परिपूर्णता को तभी पहुंचता है जब इतना डूब जाता है अपने नृत्य में कि बचता ही नहीं। नृत्य ही बचता है, नर्तक उसमें लीन हो जाता है।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा नर्तक, संभवतः सबसे बड़ा नर्तक था--निजिंस्की। निजिंस्की के जीवन में एक अपूर्व घटना बहुत बार घटी। वह घटना अलौकिक कही जाएगी। नृत्य करते-करते कभी-कभी निजिंस्की ऐसी छलांग लेता था कि जो संभव नहीं है गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार। इतनी ऊंची छलांग लेता! और इतनी सरलता से लेता था और उसे देखने वालों को लगता था कि जैसे गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव उस पर काम नहीं कर रहा है। और जब छलांग लेकर वह वापस जमीन की तरफ आता था तो इतने आहिस्ता आता था, जैसा कि कभी नहीं देखा गया। जब भी तुम किसी चीज को ऊपर फेंकते हो, जमीन उसे जोर से नीचे की तरफ खींचती है। एक तो ऊपर जाने में बाधा डालती है। एक सीमा है, तुम छलांग ले सकते हो, उसके पार नहीं। निजिंस्की की छलांग उसके पार चली जाती थी। मगर उससे भी ज्यादा चमत्कार की बात यह थी, जब यह वापस लौटता था तो यूं लौटता था जैसे किसी पक्षी का पंख आहिस्ता-आहिस्ता हवा में डोलता-डोलता नीचे उतरता है। जैसे कोई जल्दी नहीं! जैसे गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रयोजन नहीं! जैसे निजिंस्की अपनी मौज से उतर रहा है! अपने ढंग, अपनी शैली से उतर रहा है!
निजिंस्की से बहुत बार पूछा गया, यह तुम कैसे करते हो?
निजिंस्की ने कहा, यह मत पूछो, क्योंकि कई बार मैंने करना चाहा है और
जब मैंने करना चाहा है तब नहीं कर पाया। जब भी मैंने करना चाहा है, अपरिहार्य रूप से मैं असफल रहा हूं। और जब भी मैंने करना चाहा है, मेरा नृत्य ही बिगड़ गया, बात ही नहीं बनी। यह तो कभी-कभी होता है। और यह तब होता है जब मैं कर्ता की तरह बिल्कुल ही अपने को भूल जाता हूं। जब नृत्य ही बचता है और निजिंस्की नहीं बचता, तब कभी-कभी यह होता है। मैं चाहूं तो कर नहीं सकता। यह मेरी चाह की बात नहीं। यह मेरी चाह की बिसात नहीं। यह तुम्हें ही चमत्कार नहीं है, मैं भी चमत्कृत होता हूं। जब यह हो जाता है, जब छलांग लग जाती है और जब मैं अपने को वापस जमीन की तरफ इतने आहिस्ता से लौटते देखता हूं, तो मुझे ही भरोसा नहीं होता कि क्या हो रहा है।
एक ऐसी घड़ी है नृत्य की जब नर्तक बिल्कुल लीन हो जाता है। और तभी नृत्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचता है। नर्तक और नृत्य एक अद्वय भावदशा है। इसलिए हमने परमात्मा को नटराज कहा है। मगर अलग-अलग आयामों में हम उसे अलग-अलग नाम दे सकते हैं।
सामवेद ठीक कहता हैः देवस्य पश्य काव्यम्। यह प्रकृति उसका काव्य है। अगर यह उसका काव्य है तो देवता इस प्रत्यक्ष प्रकृति को द्वेष करेंगे? और जो व्यक्ति चित्रों से द्वेष करता है, क्या वह उन चित्रों को बनाने वाले चित्रकार को प्रेम कर सकता है? जो नृत्य से घृणा करता है उसने नर्तक के प्रति अपनी निंदा की घोषणा कर दी।
इसलिए मैं कहता हूं तुमसे कि जिन लोगों ने भी संसार को छोड़ने-त्यागने
की बात कही और जिन्होंने भी संसार से द्वेष पैदा करने की बात कही, वे सभी लोग ईश्वर-विरोधी थे। लाख उन्होंने ईश्वर की पूजा की हो, यज्ञ-हवन किए हों, मंत्रोच्चार किए हों, जीवन भर वेदों को रटा हो, मगर वे ईश्वर-विरोधी थे। उन्होंने ईश्वर के प्रत्यक्ष काव्य को इनकार कर दिया, वे ईश्वर के अप्रत्यक्ष कवि को कैसे स्वीकार कर सकते हैं? इस काव्य का सम्मान ही तो कवि का सम्मान होगा। काव्य को दो गालियां और कवि का सम्मान कर रहे हो! यह कौन सा तर्क है? कौन सा गणित है?
योग प्रीतम का यह गीत ख्याल में लेना--
उसकी महफिल में मस्ती का जाम भरता हूं
उसकी मय पीने पिलाने का काम करता हूं
साज मेरे दिल का जो छेड़ दिया है उसने
बस उसके नग्मे गाने का काम करता हूं
गर किसी दिल में तस्वीर बसी हो उसकी कदमों पे उसी के अपने मुकाम करता हूं जो इस दीवाने का हाथ पकड़ में आए
थाम कर चूम लेने का काम करता हूं नूर आता हो नजर उसका आंखों में कहीं

उसके दीदार में उमर तमाम करता हूं
उसके रस में डूबा मिल जाए मस्त कोई जिंदगी
अरे खुद की उसके नाम करता हूं
जो नाचे गाए--भगवान वही है बंदा
सदके जाता हूं मैं उसे सलाम करता हूं
उसकी महफिल में मस्ती का जाम भरता हूं
उसकी मय पीने पिलाने का काम करता हूं
प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, जो सामने है और जो छिपा है, एक ही सत्य के दो पहलू हैं। प्रत्यक्ष को प्रेम करो, क्योंकि वही सीढ़ियां बनेगा अप्रत्यक्ष के मंदिर की। प्रत्यक्ष को चाहो, जी भर कर चाहो, क्योंकि पत्थर-पत्थर में वही छिपा है। पानी की लहर-लहर में सागर है। इस अस्तित्व के कण-कण में परमात्मा है।
एतरेय ब्राह्मण में एक प्रीतिकर सूत्र हैः यः सर्वः कृत्सनो मन्यते गायति वैव गीते वा रमते। जब कोई अपने को पूर्ण पाता है तब उससे गीत फूट पड़ते हैं। वह संगीतपूर्ण उत्सव बन जाता है।
"जब कोई अपने को पूर्ण पाता है... ।"
मगर कोई कैसे अपने को पूर्ण पाता है? यात्रा तो प्रत्यक्ष से करनी होगी। तुम तो शरीर हो, जहां तक तुम्हारी अभी जानकारी है। बहुत आगे बढ़े तो थोड़ी सी पहचान मन की है। थोड़े और आगे बढ़े तो शायद थोड़ी सी झलक हृदय की है। यह प्रत्यक्ष है। शरीर बहुत प्रत्यक्ष है। मन थोड़ा कम प्रत्यक्ष है। हृदय और भी कम प्रत्यक्ष। और इन तीनों के पार छिपा है परोक्ष--चौथा, तुरीय। लेकिन शरीर से ही यात्रा करनी होगी। तुम जहां हो वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है। यात्रा वहां से नहीं शुरू हो सकती जहां तुम नहीं हो।
तुम अभी शरीर में हो। शरीर से ही चलना होगा। शरीर की ही नाव बनानी होगी। शरीर को घृणा मत करना। नहीं तो नाव न बना सकोगे। और अगर शरीर ने साथ न दिया तो भीतर न जा सकोगे। शरीर तो निरपेक्ष है, तटस्थ है। बाहर की यात्रा करनी हो तो भी वही वाहन है। और भीतर की यात्रा करनी हो तो भी वही वाहन है। शरीर तुमसे कहता नहीं कहां चलो। शरीर तो कहता हैः जहां चलना हो, मैं तैयार हूं। शरीर तुम्हारा दुश्मन नहीं है, शरीर तो सदा मित्र है।
लेकिन तथाकथित धर्मगुरु तुम्हें उलटे पाठ पढ़ाते हैं--शरीर दुश्मन है। और जिसने यह पाठ पढ़ लिया, उसकी जिंदगी मुश्किल हो जाएगी। फिर वह शरीर से लड़ने लगेगा। जिसको सीढ़ी बनाना था उससे सिर टकराने लगेगा। इससे सीढ़ी नहीं मिटेगी, सिर्फ सिर टूटेगा। शरीर को गलाने में लग जाएगा, सड़ाने में लग जाएगा, शरीर को सताने में लग जाएगा।
शरीर का उपयोग कर लेना था। शरीर भी परमात्मा की भेंट है--अपूर्व भेंट है! अदभुत भेंट है! अद्वितीय है! कृतज्ञ होना चाहिए परमात्मा का। एक अपूर्व शरीर तुम्हें दिया है, जो सत्तर, अस्सी, नब्बे, सौ वर्षों तक तुम्हें साथ देता है--सब तरह से साथ देता है। यह और बात है कि तुम वेश्याघर जाना चाहते हो तो वहां ले जाता है। यह तुम्हारी मर्जी। जिम्मेवार तुम हो। और तुम मंदिर जाना चाहते हो तो मंदिर ले जाता है। यह तुम्हारी मर्जी। वही पैर जो वेश्या के घर ले जाते हैं, वही पैर मंदिर भी ले जाते हैं। वही शरीर जो तुम्हें पापों में ले जाता है, पुण्यों का भी आधार बन जाता है। वही शरीर जो तुम्हें धन की दौड़ में लगा देता है, वही ध्यान के मार्ग पर भी उतना ही साथी है, उतना ही संगी है। सब तुम्हारे निर्णय की बात है। शरीर तो हमेशा राजी है। शरीर तो तुम्हारी सेवा के लिए तत्पर है। अब यह और बात है कि तुम गलत जगह जाना चाहो, तो शरीर का उसमें कोई हाथ नहीं।
मगर लोगों की आदत हैः हमेशा उत्तरदायित्व किसी और पर छोड़ना।
यूं हुआ कि एक आदमी पर अदालत में मुकदमा था। उसने हत्या कर दी थी, कुल्हाड़ी उठा कर और एक आदमी की गर्दन काट दी थी। मजिस्ट्रेट ने उसे जीवन भर का कारावास दिया। उस आदमी ने कहा, यह अन्याय है! क्योंकि मेरे दाएं हाथ ने कुल्हाड़ी उठाई और उस आदमी की गर्दन काटी। अब हाथ के कसूर के लिए मेरे पूरे शरीर को, मुझको जीवन भर का कारावास, कैसा न्याय है!
मजिस्ट्रेट को भी मजाक सूझा। उसने कहा, फिर ठीक है, हम तुम्हारे दाएं हाथ को जीवन भर का कारावास देते हैं।

मजिस्ट्रेट ने सोचा कि जब दायां हाथ जेलखाने में रहेगा तो पूरा शरीर
भी तो उसके साथ ही रहेगा, जाएगा कहां। वहां जरा चूक हो गई। मजिस्ट्रेट के यह कहने पर उस आदमी ने अपना दायां हाथ निकाल कर और मजिस्ट्रेट की टेबल पर रख दिया। दायां हाथ उसका कृत्रिम था।
आदमी के बड़े चालबाजी के ढंग होते हैं। आदमी हमेशा दोष किसी पर थोप देना चाहता है। हाथ का कसूर है! तुमने सूरदास की कहानी सुनी है। सुंदर स्त्री के प्रति आंखें मोहित हो गईं तो आंखों को फोड़ दिया। अब आंखें कहीं मोहित होती हैं? मोहित मन होता है। मोहित तुम होते हो। आंखों का क्या कसूर है? लेकिन आदमी हमेशा किसी पर दोष को थोप देना चाहता है, अपने को बचा लेना चाहता है।
आंखें तो तुम जो दिखाओ वही देखने को राजी हैं। चाहे सूर्यास्त देखो, चाहे सूर्योदय देखो, चाहे स्त्रियों की नग्न तस्वीरें देखो, जो तुम्हारी मर्जी हो। आंख का कोई भी कसूर नहीं।
मैं तुम्हें यह बात बार-बार समझा देना चाहता हूं, क्योंकि सदियों से तुम्हें गलत ढंग से संस्कारित किया गया है--शरीर को सताओ, शरीर पाप का कारण है। शरीर पाप का कारण बिल्कुल भी नहीं है। शरीर सीढ़ी बन जाता है। थोड़े कलात्मक होना सीखो। थोड़े जीवन को जीने का ढंग, जीवन को जीने का विज्ञान समझो।
और यूं ही मन को भी उपयोग में लाया जा सकता है। यूं ही हृदय को भी उपयोग में लाया जा सकता है। ये तुम्हारे तीन चरण हैं, जिनके द्वारा तुम चौथे परोक्ष पर पहुंच सकते हो। ये प्रत्यक्ष हैं। शरीर तो तुम्हें भी दिखाई पड़ता है, दूसरों को भी दिखाई पड़ता है। मन केवल तुम्हीं को दिखाई पड़ेगा, मगर प्रत्यक्ष तो है। अगर आंख बंद करके तुम मन की प्रक्रिया को देखोगे तो देख सकते हो। हजारों-हजारों विचारों का सिलसिला, राह चलती ही रहती है मन की। कभी वासना, कभी विचार, कभी स्मृति, कभी कल्पना, कभी राग, कभी द्वेष, कभी धर्म, कभी अधर्म, सब चलता है। तुम इसे देख सकते हो। तुम इसके साक्षी हो सकते हो। और जैसे ही तुम साक्षी हुए, मन प्रत्यक्ष हो गया, आंख के सामने हो गया।
इसी आंख को हमने तीसरी आंख कहा है। साक्षी-भाव तीसरी आंख है। तीसरी आंख वस्तुतः कोई शरीर का अंग नहीं है, केवल प्रतीक है--देखने की आंतरिक क्षमता। फिर इसी तीसरी आंख को थोड़ा और निखारो तो भावनाओं को देख सकते हो। भावनाएं और भी सूक्ष्म हैं--सूक्ष्म हैं विचारों से। मन में उठी हुई जो विचारों की तरंगें हैं, इनसे भी ज्यादा सूक्ष्मतर तरंगें हृदय में उठती हैं। मगर एक बार देखने की कला आ जाए, साक्षी की प्रक्रिया समझ में आ जाए, तो तुम अपनी सूक्ष्मतम तरंगों को भी देख सकते हो। फिर वे प्रत्यक्ष हो जाएंगी।
और जिस क्षण ये तीनों प्रत्यक्ष हो जाएंगे, उस क्षण चौथी क्रांति घटेगी। तब तुम स्वयं को देख पाओगे। वहां देखने वाला और दिखाई पड़ने वाला दो नहीं होंगे। वहां द्रष्टा और दृश्य एक होगा। वही परमात्म-अनुभूति है। और जो व्यक्ति इस अनुभूति को उपलब्ध हो जाता है--यः सर्वः कृत्सनो मन्यते गायति वैव गीते वा रमते। उससे गीतों के झरने फूट पड़ते हैं।
तुम्हारे संत इतने रूखे-सूखे मालूम पड़ते हैं, इतने मुर्दा मालूम पड़ते हैं, कि यह माना नहीं जा सकता कि उन्होंने अपने को जाना होगा। क्योंकि जिसने अपने को जाना है, उससे गीतों के झरने फूटने ही चाहिए। उसके जीवन में उत्सव होना ही चाहिए। उसके पैरों में घुंघरू बंधेंगे ही। उसके ओंठों पर बांसुरी आएगी ही। उसके शब्द-शब्द में रस होगा। उसके उठने-बैठने में, उसके देखने में, उसके चलने में, उसके बोलने में, न बोलने में, उसके मौन में भी संगीत होगा। उसका सारा जीवन, जीवन के सारे रंग किसी अलौकिक आभा से मंडित होंगे।
तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी जैसे रूखे-सूखे मालूम पड़ते हैं, वह काफी प्रमाण है इस बात का कि उनके भीतर गीतों के झरने फूटे नहीं, उनके जीवन में उत्सव नहीं आया। वे किसी स्वर्ग की आकांक्षा कर रहे हैं जो मृत्यु के बाद घटेगा। वस्तुतः जो स्वर्ग है वह अभी घटता है, यहीं घटता है। कोई स्वर्ग मृत्यु के बाद की भौगोलिक चीज नहीं है। स्वर्ग वह अनुभव की दशा है

जब तुम्हारे भीतर प्राण नाच उठते हैं। यः सर्वः कृत्सनो मन्यते गायति वैव गीते वा रमते। न केवल गीतों के झरने फूट पड़ते हैं, बल्कि जीवन संगीतपूर्ण हो जाता है, एक उत्सव बन जाता है।
मैं संन्यास की इसी प्रक्रिया को तुम्हें समझा रहा हूं। प्रत्यक्ष को
भी उत्सव बनाना है, परोक्ष को भी पाना है। मगर परोक्ष को पाने का मतलब ही यही होता है कि वह भी प्रत्यक्ष हो जाना चाहिए। अप्रत्यक्ष कुछ भी न रह जाए। सब आंखों के सामने खुल जाए, सारा राज खुल जाए। जीवन का रहस्य जी लिया जाए, पहचान लिया जाए। उसकी प्रत्यभिज्ञा हो जाए।
इसलिए मैं गोपथ ब्राह्मण के सूत्र से कतई राजी नहीं हो सकता। वह सूत्र बुनियादी रूप से गलत है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपके आश्रम में कई देशों के, कई जातियों के लोग एक
ही रंग में रंगे हैं और तरह-तरह के कामों में लगे हैं। लेकिन क्या यह एक नये प्रकार की वर्ण-व्यवस्था, एक नये प्रकार की आश्रम-व्यवस्था नहीं है? महर्षि मनु ने हजारों वर्ष पूर्व जो वैज्ञानिक व्यवस्था दी थी, उसके रूप तो बदल सकते हैं, लेकिन आधार कभी नहीं मिट सकते। वर्ण और आश्रम नये-नये रूपों में सदा प्रकट होते रहे हैं। इन अर्थों में आपके संन्यासी नये नहीं हैं और न ही आपकी आश्रम-व्यवस्था नयी है। क्या आप महर्षि मनु की वैज्ञानिक व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था को गलत सिद्ध कर सकते हैं?

पंडित ज्ञानशंकर झा, उन्होंने प्रश्न के अंत में पुनश्च करके यह भी लिखा हैः पिछले माह मेरे भाई पंडित लज्जाशंकर झा यहां आए थे और उन्होंने आपके तर्क-सम्मत ज्ञान की चर्चा की थी।
पंडित लज्जाशंकर झा को घर लौट कर कहना कि वे मुझे समझे नहीं। मेरी बातें और तर्क का क्या लेना-देना? अगर यही वे समझ कर गए कि मेरी बातें तर्क-सम्मत हैं, तो यूं ही आए और यूं ही चले गए, व्यर्थ ही आए और व्यर्थ ही गए। हीरे-जवाहरात ले जा सकते थे, कंकड़-पत्थर लेकर चले गए।
मेरी बातें कितनी ही तर्क-सम्मत हों, लेकिन तर्क मेरा प्रयोजन नहीं है। तर्क तो मेरे लिए केवल खेल है। और कुछ बच्चे यहां आ जाते हैं, उनके लिए खिलौने देने पड़ते हैं। और पंडितों से ज्यादा बचकाने कोई भी नहीं होते। उनको झुनझुना दे दो, घुनघुना दे दो, वे अपना घुनघुना बजाते हुए लौट जाते हैं। उनका मन बहल जाता है।
यहां बातें रहस्य की हो रही हैं, तर्क की नहीं।
पंडित ज्ञानशंकर झा, तुम्हारा प्रश्न जरूर विचारणीय है। पहली तो बात
यह कि मनु को मैं महर्षि नहीं कह सकता हूं। मनु ने जितनी हानि इस देश की की है, उतनी किसी और व्यक्ति ने नहीं की। मनुस्मृति इस देश की छाती पर एक भयंकर चट्टान की तरह रखी हुई है। मनुस्मृति कोढ़ है भारत का, जिससे भयंकर दुर्गंध उठ रही है। पांच हजार सालों से मनुस्मृति भारत को सता रही है। अभी भी हरिजन जलाए जा रहे हैं जिंदा। अभी भी उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जा रहा है। सबके पीछे इसी कमबख्त मनु का हाथ है। मनु को मैं कभी भी महर्षि नहीं कह सकता हूं।
तुम कहते हो कि आपके आश्रम में कई देशों के, कई जातियों के लोग एक ही रंग में रंगे हैं और तरह-तरह के कामों में लगे हैं।
मनु तो इसको बरदाश्त ही नहीं कर सकते थे। यह तो मनु के हिसाब से भ्रष्टता होगी। कई जातियां, कई रंगों के लोग, यहां अपनी जातियां भी भूल गए हैं, अपने रंग भी भूल गए हैं। मनु के लिए तो वर्ण बड़ा महत्वपूर्ण था। वर्ण शब्द का अर्थ होता हैः रंग।
जब भारत में आर्य आए तो आर्य गोरे थे और भारत में जो लोग बसे थे वे सांवले थे। दक्षिण भारत में आज भी जो लोग हैं वे भारत के मूलवासियों के वंशज हैं। उन काले लोगों को आर्यों ने अनार्य कहा। आर्य शब्द का अर्थ होता हैः श्रेष्ठ। और अनार्य का अर्थ होता हैः अश्रेष्ठ। स्वयं को आर्य समझते थे देवताओं के पक्षपाती। और इन दक्षिण के काले लोगों को समझते थे राक्षस। यह पुराना रिवाज रहा। जिसको भी बुरा कहना हो उसको राक्षस कहो। जिसकी भी निंदा करनी हो उसको राक्षस कहो।

ऐसे गौर से देखा जाए तो रावण बहुत अर्थों में राम से कहीं ज्यादा सत्पुरुष मालूम होता है। सीता को बलात्कार तो नहीं किया। सीता को ससम्मान मेहमान की तरह रखा। सुंदर वाटिका में सुंदर व्यवस्था दी। चाहता तो बलात्कार कर सकता था। राक्षस नहीं है। जब कि आर्यों के देवता बलात्कार करने में बड़े कुशल हैं, इनको राक्षस नहीं कहा जाता। ऋषि-मुनि ब्रह्ममुहूर्त में गंगा-स्नान करने जाते हैं और देवतागण आकर उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार कर जाते हैं। ये देवता हैं!
और मजा यह है कि जब ऋषि-मुनि पाते हैं यह बात कि उनकी स्त्री के साथ देवता बलात्कार कर गए, जैसे अहिल्या के साथ देवता ने बलात्कार कर दिया और जब अहिल्या के पति ने पाया तो सजा देनी चाहिए थी देवता को, अभिशाप देना चाहिए था देवता को; लेकिन नहीं, अभिशाप दिया अहिल्या को कि तू पत्थर हो जा! यह कौन सा न्याय हुआ? अहिल्या तो बिल्कुल निर्दोष है। अब कोई देवता अगर पति का रंग-ढंग रख कर आ जाए, और देवता क्या नहीं कर सकते, चमत्कार कर सकते हैं! देवताओं का धंधा ही क्या है! वे बिल्कुल ऋषि बन कर आ गए। नाटक किया उन्होंने। पत्नी बेचारी समझी कि पतिदेव हैं। उसने तो पति के साथ ही संभोग किया। इसमें इस स्त्री का कोई कसूर ही न था। इस स्त्री को पत्थर हो जाने का अभिशाप देना एकदम अमानवीय है। देवता राक्षस था, यह ऋषि भी राक्षस था। न्याय जैसी कोई चीज नहीं। और फिर मजा यह है कि यह स्त्री भी तब तक पत्थर रहेगी जब तक राम के पैर इस पत्थर पर न पड़ें।
तुम देखते हो पुरुषवाद! एक पुरुष व्यभिचार कर गया, दूसरा पुरुष अभिशाप दे गया, तीसरा पुरुष मुक्ति देगा! कम से कम इतना ही करते कि सीता के पैर पड़ेंगे। लेकिन नहीं, इन दुष्टों को स्त्रियों से कुछ लेना-देना नहीं। स्त्रियों की कोई हैसियत ही नहीं। स्त्रियों का कोई मूल्य ही नहीं।
रावण ने कहीं ज्यादा सम्मान दिया सीता को बजाय राम के। वाल्मीकि रामायण में जब राम लंका को जीत कर और सीता को लेकर वापस लौटते हैं, जब वर्षों के बाद सीता से पहली बार मिलते हैं, तो जो वचन बोलते हैं, एकदम अभद्र हैं। जो वचन हैं वे ये हैं कि ऐ औरत! याद रखना कि मैंने कुछ तेरे लिए युद्ध नहीं किया है! मैं तो रघुकुल की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध किया हूं। हम कोई स्त्रियों के लिए लड़ने वाले लोग नहीं हैं।
यह अभद्र बात कहने की क्या जरूरत थी? मगर यह सूचक है। स्त्री की कोई कीमत नहीं है। स्त्री के लिए युद्ध किया भी नहीं गया है; यह तो रघुकुल की प्रतिष्ठा का सवाल है, अहंकार का सवाल है, कुल की मर्यादा का सवाल है, इसलिए युद्ध किया गया है।
वर्षों तक सीता प्रतीक्षा कर रही थी और यह स्वागत हुआ! और तत्क्षण पहला काम यह किया कि अग्नि-परीक्षा दो! भरोसा बिल्कुल नहीं है। और राम, जिनको तुम कहते हो वे अंतर्यामी हैं, इन सज्जन को इतना भी पता नहीं है कि स्त्री उनकी सीता निर्दोष है। अग्नि-परीक्षा की जरूरत है, और ये अंतर्यामी हैं! कम से कम सीता का तो हृदय जान लेते। ये सब का अंतर जानते हैं, ये सर्वज्ञ हैं, और सीता की परीक्षा लेनी है! गरीब सीता को अग्नि से गुजरना पड़ा।
अब मैं नहीं मानता हूं कि अग्नि कोई अपने नियम बदलेगी। अगर सच में सीता अग्नि से गुजरी होगी तो जल कर खाक हो गई होगी। और एक इतिहासज्ञ ने यह प्रश्न उठाया है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह सीता को खत्म कर देने का उपाय रहा हो! फिर राम किसको लेकर अयोध्या लौटे?
मेरे एक प्रोफेसर मित्र हैं--नावलेकर। उन्होंने राम पर बड़ी शोध की है, बड़ी हिम्मतपूर्ण शोध की है। उन्हें शक है कि सीता को अगर सच में ही अग्नि- परीक्षा देनी पड़ी, तो दो ही संभावनाएं हैं उनके हिसाब से और विचारणीय हैंः या तो सीता की जगह शबरी को अग्नि में से गुजारा गया और वह जल गई, और ये सीता को लेकर लौट गए; और या दूसरी संभावना है--जो मैंने उन्हें सुझाई कि यह है-- कि सीता जल गई और शबरी को लेकर भैया लौट गए, जो कि ज्यादा संभव है।
यह रामलीला वगैरह में जो शबरी दिखाई जाती है, बिल्कुल बूढ़ी स्त्री की तरह दिखाई जाती है, वह झूठी बकवास है। नावलेकर ने बहुत शोध करके सिद्ध किया है कि वह जवान सुंदर युवा स्त्री थी। और केवल प्रेमी ही एक-दूसरे के जूठे फल खा सकते हैं, और कोई नहीं खा सकता। प्रेम में ही आदमी ऐसी मूढ़ताएं

कर सकता है। हर कोई स्त्री तुम्हें जूठा बेर करके दे, तुम कहोगे, छीः-छीः फेंक! धत्त तेरे की! रख ले अपना बेर! लेकिन तुम्हारी प्रेयसी जब बेर को जूठा कर दे तो अमृत हो गया। यह बुद्धूपन, यह पागलपन प्रेम में ही होता है। तो दो में से कोई एक बात की संभावना है, क्योंकि दोनों स्त्रियों के साथ कलह खड़ी हो जाएगी, एक को समाप्त करना जरूरी है। अग्नि-परीक्षा ने वह काम किया होगा।
सीता के साथ यह दूसरी अभद्रता कि उसको अग्नि-परीक्षा में से गुजारते हो। और अगर यह मान लिया जाए कि सीता को किसी तरह बचा कर या शबरी को जला कर ले भी आए अयोध्या, तो सिर्फ एक धोबी के कह देने से और उस गर्भवती स्त्री को बिना बताए जंगल में छुड़वा दिया--यह अमानवीयता! मगर राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। स्त्री-जाति का कोई सम्मान नहीं। इससे ज्यादा सम्मान तो रावण ने प्रकट किया।
रावण की बहन शूर्पणखा ने लक्ष्मण से निवेदन किया प्रेम का, जो कि प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। कोई भी किसी से प्रेम का निवेदन कर सकता है। यह और बात है कि जिससे निवेदन किया जाए, वह धन्यवाद देकर क्षमा मांग ले, कि मैं भई पहले से ही विवाहित हूं, अब क्या कर सकता हूं, क्षमा करो। मगर नाक काटने की क्या जरूरत है? यह तो बात निपट राक्षसी है। और न केवल लक्ष्मण ने नाक काटी, राम का इसमें आदेश ग्रहण किया। राम ने कहा, काट ले रे, काट ले! क्या देख रहा है? क्या देर-दार कर रहा है? कर दे साफ!
इस स्त्री का कसूर क्या था? क्या किसी पर मोहित होना कसूर है? अगर किसी पर मोहित होना कसूर है तो ये राम-लक्ष्मण दोनों ही सीता पर मोहित हो गए थे। और उसका खूब रस ले-लेकर वर्णन किया जाता है कि जनक की बगिया में सीता फूल चुन रही सखियों के साथ और राम की लार टपकने लगी! टपकी तो लक्ष्मण की भी, मगर बड़े भैया की टपक रही थी तो छोटे भैया को जरा सम्हाल कर रखना पड़ा। और जब धनुष-बाण तोड़ने का समय आता है तो लक्ष्मण उठ-उठ कर खड़े हो जाते हैं। वे लंगोट बांध-बांध लेते हैं। वे कहते हैं कि मैं अभी तोड़ता हूं। उनको राम रोकते हैं कि तू रुक, शांति रख, धैर्य रख!
किसी के प्रेम में पड़ जाना कोई अस्वाभाविक तो नहीं। और अगर कोई स्त्री ने निवेदन किया था तो इनकार किया जा सकता था--सज्जनतापूर्वक। नाक काटना तो कुछ समझ के बाहर की बात है, एकदम अशोभन कृत्य।
लेकिन आर्यों ने काले लोगों को अनार्य घोषित किया, राक्षस घोषित किया, उनको मिटाने की हर तरह कोशिश की।
मनु महाराज ने जो वर्ण-व्यवस्था दी है, वह वर्ण-व्यवस्था क्या है? शोषण का एक जाल है। उसमें वैज्ञानिकता क्या है? पुरोहित को सबसे ऊपर रखा है, क्योंकि मनु महाराज खुद पुरोहित हैं। ब्राह्मण सबसे ऊपर, फिर नंबर दो है क्षत्रिय का। क्षत्रिय यानी राजनीति में जो हैं, जिनके हाथ में भौतिक सत्ता है, जिनके हाथ में तलवार है। पुरोहित का और राजनैतिक का पुराना शड्यंत्र है, पुरानी सांठ-गांठ है। दोनों ने बंटवारा किया हुआ है। बंटवारा यह है कि भौतिक अर्थों में तुम मालकियत करो--ब्राह्मण ने कहा हुआ है क्षत्रिय से--तुम चूसो लोगों को, और भीतरी अर्थों में हम चूसेंगे। इस लोक में तुम चूसो, परलोक में हम चूसेंगे। इस लोक के नाम पर तुम चूसो, परलोक के नाम पर हम चूसेंगे। प्रत्यक्ष में तुम, परोक्ष में हम। यह सांठ-गांठ है। फिर नंबर तीन पर वैश्यों को रखा, क्योंकि उनके पास धन है। धन की भी अपनी शक्ति है।
और जिनके पास न धन था और न जिनके पास तलवारों की ताकत थी और न जिनके पास पांडित्य का दंभ था, उन सबको शूद्रों में रख दिया। वे छूने योग्य भी न रहे, अछूत हो गए, अंत्यज हो गए। अंत्यज का अर्थ हैः उन्हें गांव के बाहर रहना पड़ेगा, गांव के अंत में रहना पड़ेगा, गांव के भीतर भी नहीं रह सकते। और मजे की बात यह है, वे ही सेवा करेंगे, वे ही तुम्हारी गंदगी ढोएंगे, वे ही तुम्हारे मरे जानवरों को घसीटेंगे, वे ही तुम्हारे पाखाने को, मल-मूत्र को उठा कर ले जाएंगे। मगर उनका कोई धन्यवाद नहीं। उनके प्रति सिवाय तिरस्कार के और कुछ भी नहीं।
इस वर्ण-व्यवस्था को, पंडित ज्ञानशंकर झा, तुम वैज्ञानिक कहते हो? और तुम सोचते हो कि यहां भी कोई वर्ण-व्यवस्था मैं निर्मित कर रहा हूं?

यहां वर्ण-व्यवस्था समाप्त की जा रही है। यहां न कोई ब्राह्मण है, न कोई क्षत्रिय है, न कोई वैश्य है, न कोई शूद्र है। यहां मनुष्य होना काफी है। यहां वस्तुतः पूछो तो कोई स्त्री भी नहीं है, कोई पुरुष भी नहीं है। इस सबकी कोई चिंता नहीं है। यहां सबका समान सम्मान है, सबका समान आदर है। इसमें भी तुम्हें वर्ण-व्यवस्था दिखाई पड़ रही है? यह तो हद हो गई।
यह तो यूं हुआ जैसे सावन के अंधे को हरा-हरा सूझता है। सावन में अंधा हुआ न, उस वक्त सब हरा-हरा था, वही उसकी याद में भरा हुआ है। अब तो अंधा हो गया, अब तो कुछ सूझता नहीं। मगर जब अंधा हुआ था तो सब हरा-हरा था। वही हरा- भरा उसके दिमाग में भरा हुआ है। वही हरा-हरा उसे याद आता है। वही उसकी नजर बन गई है। तुम्हारी आंखों पर चश्मा है। आश्चर्य हुआ मुझे तुम्हारे प्रश्न को देख कर।
तुम कहते होः "आपके आश्रम में कई देशों के, कई जातियों के लोग एक ही रंग में रंगे हैं।"
मनु महाराज के हिसाब से तो वर्ण-व्यवस्था केवल हिंदुओं के लिए है। इसलिए हिंदू किसी दूसरे धर्म के लोगों को अपने में समाहित करने के लिए कभी राजी नहीं थे। हिंदू धर्म दूसरे लोगों के अपने भीतर प्रवेश का हमेशा विरोधी रहा है। यह तो दयानंद ने ईसाइयों की नकल में आर्य-समाज को खड़ा किया। यह तो दयानंद की करतूत है, अन्यथा हिंदू कभी भी धर्म-परिवर्तन में विश्वास नहीं करते। हिंदुओं का तो हिसाब जन्म से बंधा है। जो हिंदू पैदा हुआ है वही हिंदू है, कोई दूसरा व्यक्ति हिंदू नहीं हो सकता। क्योंकि फिर झंझट खड़ी होगी।
समझो कि एक मुसलमान हिंदू हो जाए, उसको किस वर्ण में रखोगे? वर्ण-व्यवस्था के कारण बड़ी अड़चन है। मुसलमान अगर हिंदू हो जाए, उसको किस वर्ण में रखोगे? हिंदू अगर ईसाई हो जाए तो कोई झंझट नहीं आती, क्योंकि उनके पास कोई वर्ण-व्यवस्था नहीं है। वह सिर्फ ईसाई होगा। अगर हिंदू मुसलमान हो जाए, तो उनके पास कोई वर्ण-व्यवस्था नहीं है, वह सिर्फ मुसलमान होगा। हिंदुओं के सामने बड़ा सवाल था। किसी मुसलमान को हिंदू बना लोगे तो हिंदू ज्यादा से ज्यादा हिम्मत कर सकते हैं वह उसको शूद्र की व्यवस्था में रखने की। और कौन मुसलमान शूद्र बनने को राजी होगा? कौन ईसाई शूद्र बनने को राजी होगा? किसका दिमाग खराब हुआ है? हिंदू उसे ब्राह्मण तो नहीं बना सकते, कोई उपाय नहीं है। मुसलमान के ब्राह्मण होने की तो बात छोड़ो, क्षत्रिय भी ब्राह्मण होना चाहे तो नहीं हो सकता; वैश्य भी ब्राह्मण होना चाहे तो नहीं हो सकता।
महावीर परमज्ञान को उपलब्ध हो गए, लेकिन हिंदू उन्हें ब्राह्मण तो स्वीकार नहीं कर सकते। बुद्ध परमज्ञान को उपलब्ध हो गए, लेकिन उन्हें ब्राह्मण तो नहीं माना जा सकता। ब्रह्म को जान लिया, फिर भी ब्राह्मण नहीं! ब्राह्मण का संबंध जन्म से है। और बुद्ध और महावीर की क्रांति यही थी कि उन्होंने कहा, जन्म से क्या संबंध हो सकता है ब्राह्मण का? बुद्ध ने कहा, ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जाने। इससे जन्म का कोई संबंध नहीं। लेकिन हिंदुओं की सारी व्यवस्था जन्मतः है। कर्म से नहीं, बोध से नहीं। आदमी जन्म से ही या तो ब्राह्मण होता है या क्षत्रिय होता है या शूद्र होता है या वैश्य होता है। इसलिए हिंदू धर्म धर्म-परिवर्तन के लिए, किसी के धर्म-परिवर्तन के लिए राजी नहीं है। बड़ा सवाल यह उठेगा, उसको रखोगे कहां? उसको किस खांचे में बिठालोगे? वह जन्म से तो कोई भी नहीं है। इसलिए ये जो यहां लोग तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं, मनु महाराज यहां आ जाएं तो एकदम विक्षिप्त हो उठेंगे। यहां न तो हिंदू हैं, न मुसलमान हैं, न ईसाई हैं, न जैन हैं, न बौद्ध हैं; न कोई ब्राह्मण है, न कोई क्षत्रिय है, न कोई शूद्र है। मनुष्य होना काफी है। और तुम्हें इसमें भी वर्ण-व्यवस्था दिखाई पड़ रही है? हद हो गई!
और यहां सब वर्णों के लोग हैं, सब रंगों के लोग हैं--वर्ण का जो शाब्दिक अर्थ है। यहां गोरे हैं, यहां काले लोग हैं, यहां नीग्रो हैं, यहां अमरीकन हैं, यहां अंग्रेज हैं, यहां जर्मन हैं। यही नहीं, यहां पीले लोग भी हैं--जापानी हैं, चीनी हैं। यहां सब रंगों के लोग समाहित हो गए हैं, जैसे

नदियां सागर में समाहित हो जाती हैं। और सागर में समाहित होते ही सागर के रंग की हो जाती हैं। यहां कौन सी वर्ण-व्यवस्था है? तुमने मुझे चकित किया। तुम कह रहे होः "लेकिन क्या यह एक नये प्रकार की वर्ण-व्यवस्था... ।"
इसको कैसे वर्ण-व्यवस्था कहोगे? यह तो वर्ण-व्यवस्था से मुक्ति है।
और तुम कहते होः "एक नये प्रकार की आश्रम-व्यवस्था... ।"
आश्रम-व्यवस्था का अर्थ समझते हो? पंडित हो, इतनी तो मैं अपेक्षा कर सकता हूं कि तुम्हें आश्रम-व्यवस्था का कम से कम शाब्दिक अर्थ पता होगा। आश्रम-व्यवस्था हिंदुओं की यह है कि चार आश्रम हैं जीवन के। पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य, गुरुकुलवास, विद्यार्थी जीवन--वह पहला आश्रम, ब्रह्मचर्य आश्रम। दूसरा आश्रम पचास वर्ष तकः गृहस्थ आश्रम, विवाहित जीवन, दुकानदारी, धंधा, व्यवसाय--वर्ण के अनुसार। अगर शूद्र हो तो शूद्र, अगर वैश्य हो तो वैश्य, अगर ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय हो तो क्षत्रिय।
सच तो यह है कि वह जो पहला ब्रह्मचर्य आश्रम है, वह केवल ब्राह्मणों
और क्षत्रियों को उपलब्ध था, सबको उपलब्ध नहीं था। वही तो सांठ-गांठ है-- शस्त्र की और शास्त्र की सांठ-गांठ। क्षत्रिय को तो अपने वश में रखना ही होगा, नहीं तो वह कब तलवार उठा ले पता नहीं। और तलवार उठा ले तो तुम्हारे यज्ञ-हवन कुछ काम न आएंगे। इसलिए उसको तो बांध कर रखना ही होगा। उसको तो कुछ सुविधाएं देनी ही होंगी।
पचास वर्ष की उम्र तक गृहस्थ आश्रम। और फिर पचहत्तर वर्ष की उम्र तक वानप्रस्थ आश्रम। वानप्रस्थ आश्रम का मतलब हैः जंगल जाना मत, केवल जंगल की तरफ मुंह रखना। मतलब तैयारी करना, पच्चीस वर्ष जंगल जाने की तैयारी करना। बिस्तर बांधना, खोलना, फिर बांधना, फिर खोलना, सोच-विचार करना। और जो-जो जालसाजियां तुमने जिंदगी भर में सीख ली हों, वे बच्चों को सिखा दो। इसके पहले कि तुम जंगल जाओ, अपनी सब तरकीबें, अपने सब अनुभव, घर-गृहस्थी जमा दो बिल्कुल। कच्ची छोड़ कर मत चले जाना। पक्की कर दो, मजबूत कर दो।
जब आदमी पचास वर्ष का होगा, तब उसके बच्चे अपना पहला आश्रम पूरा कर रहे होंगे। वे घर आने के करीब होंगे। अभी उनको जीवन की सारी चालबाजियां सिखानी होंगी, जीवन की कूटनीति सिखानी होगी। इसलिए जंगल जाने की तैयारी करना, मगर अभी चले मत जाना। पच्चीस वर्ष तक इन बच्चों को तैयार कर देना। जब ये बच्चे पचास वर्ष के करीब हो जाएंगे, जब इनके बच्चे गुरुकुल से लौटने लगेंगे, अब तुम जा सकते हो। पचहत्तर वर्ष की उम्र के बाद संन्यास आश्रम शुरू होगा। ये चार आश्रम थे।
तुम यहां कैसा आश्रम देखते हो? यहां तो सब उम्र के संन्यासी तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। यहां बच्चे संन्यासी हैं, जवान संन्यासी हैं, वृद्ध संन्यासी हैं, पुरुष संन्यासी हैं, स्त्रियां संन्यासी हैं। यह भी ख्याल रखना कि वह सारी वर्ण-व्यवस्था पुरुषों के लिए थी, वह सारी आश्रम-व्यवस्था पुरुषों के लिए थी। स्त्रियों को तो कोई पच्चीस वर्ष तक गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का सवाल नहीं था। स्त्रियों के लिए तो वेद पढ़ने का ही अधिकार नहीं था। उनके लिए तो कथा-कहानियां पढ़ने का अधिकार है--रामायण पढ़ो; बाबा तुलसीदास की पोंगापंथी, उसको पढ़ो; कथाएं, पुराण, असली बात नहीं, फिजूल की बातें हैं, इनको पढ़ो। और इनको पढ़-पढ़ कर क्या सीखो?
बाबा तुलसीदास समझाते हैंः ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।
यह समझो! कि जब पति तुम्हें सताए तो समझो कि अच्छा कार्य कर रहा है, करना ही चाहिए। स्त्री तो ताड़न की अधिकारी है ही। अगर पति तुम्हें न ताड़े तो समझना कि कुछ गड़बड़ है। जब तक तुम्हें ढोल की तरह न बजाए तब तक समझना प्रेम में कुछ कमी है। मतलब यह कहीं ढोल और बजा रहा है! साफ है। यह ढोल तो बजाएगा ही! यह कहीं और ताड़ना दे रहा है। सो जब तुम्हें ताड़ना दे तो प्रसन्न होना कि अभी यह किसी और ढोल में उत्सुक नहीं है। अभी तुम्हारे ढोल के आस-पास ही कुटाई-पिटाई करने में लगा है। अभी तुमसे ही बंधा है, तुम्हारे ही खूंटे से बंधा है। और यह तुम्हें पैर की जूती समझे तो सौभाग्य समझना, क्योंकि तुम्हारी स्थिति पशुओं जैसी है। ढोल, गंवार, शूद्र! स्त्री तो सभी

शूद्र हैं। स्त्रियों में कोई ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय इत्यादि का सवाल नहीं, उनका तो एक ही वर्ण है--शूद्र।
क्या गजब की बात कही! इसीलिए मैं इस आदमी को कमबख्त कहता हूं। इसको मैं महर्षि नहीं कहता।
यहां तुम्हें कौन सी आश्रम-व्यवस्था दिखाई पड़ रही है? यहां तो आश्रम-व्यवस्था तोड़ी जा रही है। तुम सिर्फ धोखे में आ गए, वह जो दरवाजे पर आश्रम लिखा है उससे। वह बुद्धुओं के लिए लिखा है। वह तो जैसे मछलियों को फांसने के लिए कांटे में थोड़ा आटा लगाना पड़ता है न! कभी-कभी कोई मछली फंस कर आ जाती है। जैसे तुम्हारे भाई पंडित लज्जाशंकर झा आ गए थे। अब पंडित ज्ञानशंकर झा आ गए! अब और तुम्हारे भाई होंगे, वे भी आएंगे। वह आश्रम तो केवल आटा है कांटे पर, क्योंकि कुछ मछलियों को फंसाने का भी मजा है। उनको बंसी में फंसा कर मैं हिलाता हूं।
यह कोई आश्रम नहीं है। यह तो मधुशाला है। मगर यह मामला निजी है। मधुशाला उनको पता चलती है जो इसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। जो यहां सिर्फ दर्शक की तरह आते हैं, वे तो बेचारे आश्रम ही समझ कर आएंगे। आश्रम समझ कर भी आने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। मधुशाला लिखवा दूं दरवाजे पर, तब तो और मुश्किल हो जाएगी। मगर है यह मधुशाला। अब तुमसे क्या छिपाना, आ ही गए हो। तो जब तुम्हारे तीसरे भाई आने लगें तो उनको समझा देना।
शब्द में मत पड़ो। मेरे लिए तो आश्रम का कुल मतलब विश्राम होता है। यहां तो लोग विश्राम कर रहे हैं। यहां तो लोग, कैसे जीवन को विश्रामपूर्ण ढंग से जीया जाए, उसकी कीमिया सीख रहे हैं। यहां छोटे-छोटे बच्चे संन्यासी हैं। यहां कोई भी संन्यासी हो सकता है। यहां कोई उम्र का हिसाब नहीं है। यहां मैं आश्रम की व्यवस्था तोड़ रहा हूं। और तुम समझ रहे हो कि मैं आश्रम की व्यवस्था को पुनर्स्थापित कर रहा हूं।
तुम पूछते होः "लेकिन क्या यह एक नये प्रकार की वर्ण-व्यवस्था, एक नये प्रकार की आश्रम-व्यवस्था नहीं है?"
यहां कोई व्यवस्था नहीं है--न वर्ण की, न कोई आश्रम की।
तुम कहते होः "महर्षि मनु ने हजारों वर्ष पूर्व जो वैज्ञानिक व्यवस्था दी थी... ।"
क्या खाक वैज्ञानिक व्यवस्था है उसमें! उससे ज्यादा अवैज्ञानिक कोई बात इस भारत में घटी नहीं। अभी तक हम उसी से सड़े जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं। जितनी जल्दी मनु महाराज से छुटकारा हो जाए उतना अच्छा। मनुस्मृति की तो होलियां जलाई जानी चाहिए। वह हमारे सदियों पुराने पापों का भंडार है। और जो भी उसमें कहा गया है, एकदम अवैज्ञानिक ही नहीं, अमानुषिक भी है।
अगर मनुस्मृति को गौर से देखो तो तुम पाओगे ऐसी अमानवीय कोई व्यवस्था कभी नहीं थी। एडोल्फ हिटलर को मनुस्मृति बहुत पसंद थी। एडोल्फ हिटलर अपने को आर्य घोषित करता था, जर्मनों को शुद्ध आर्य मानता था और मनुस्मृति का बहुत समर्थक था। वह भी यही चाहता था कि इसी तरह व्यवस्था होनी चाहिए। क्योंकि यह गुलामी की बड़ी सुनियोजित व्यवस्था है। इसमें स्वतंत्रता का उपाय नहीं है; जन्म से ही सब निर्धारण हो जाता है। शूद्र को शिक्षा का उपाय नहीं; इसलिए कभी भूल कर भी वह ब्राह्मण तो हो ही नहीं सकता। और जिनको तुम बड़ा आदर देते हो, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, उन्होंने भी एक शूद्र के कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया, क्योंकि एक ब्राह्मण ने यह खबर दी... ।
अब तुम देखते हो, कैसा पाखंड हम जारी रखे हैं! और अब भी राम की पूजा हो रही है! राम की पूजा में ये सारी बातें सम्मिलित हैं। और यही नहीं, महात्मा गांधी जैसे भ्रांत लोग राम-राज्य को फिर से लाना चाहते हैं। राम-राज्य में ये अनिवार्य अंग होंगे, इनके बिना राम-राज्य नहीं हो सकता।
एक ब्राह्मण ने राम को आकर खबर दी कि मेरा जवान बेटा मर गया। और जवान बेटा नहीं मरना चाहिए। यह कैसा कलियुग कि मेरा जवान बेटा मर गया! पहले बूढ़े बाप को मरना चाहिए, फिर जवान बेटे को मरना चाहिए।
तो राम ने पूछा, इसका क्या कारण है?
तो उसने कहा, इसका कारण यह है कि एक शूद्र ने ब्राह्मण के द्वारा पढ़ा जाता हुआ वेद छुप कर सुन लिया है--शंबूक नाम के शूद्र ने।

अब यह भी मजे की बात है कि यह ब्राह्मण का जो बेटा मरा और शंबूक ने जहां छुप कर वेद-मंत्र सुना, उसके बीच एक हजार मील का फासला था। एक हजार मील तक अगर सभी के जवान बेटे मर गए होते तो भी कोई बात सोचने जैसी थी। इस एक बुद्धू का बेटा मरा, वह भी हजार मील दूर, उसका जिम्मा उस शूद्र पर पड़ा जिसने छिप कर वेद-मंत्र सुन लिए थे।
और राम, जिनकी तुम प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते हो, उन्होंने बुला कर
उस शूद्र के कानों में पिघला हुआ सीसा भरवा दिया।
बहरा हो गया होगा सदा को। जिंदा भी बचा हो, यह भी संभावना कम है। क्योंकि कानों में अगर पिघला हुआ सीसा भरा जाएगा, तो कान तो मस्तिष्क से जुड़े हैं, उसके मस्तिष्क को भी विकृत कर दिया होगा। कान तो आंखों से भी जुड़े हैं। उसकी आंखें भी अंधी हो गई होंगी। कान तो नाक से भी जुड़े हैं। वह आदमी जिंदा भी रहा होगा, इसकी भी संभावना कम है। लेकिन इसने महापाप किया था, वेद सुन लिया था!
तो शूद्र को तो तुमने गुलामी में बांध ही दिया पूरी तरह से! उसे तो कोई उपाय न रहा ऊपर उठने का, मुक्त होने का। तुमने उसके लिए सीढ़ी ही तोड़ दी। और वही तुमने वैश्यों के साथ किया। वैश्य शूद्रों से जरा ऊपर; ज्यादा ऊपर नहीं, बस जरा ऊपर; उनके लिए भी कोई उपाय नहीं। सत्ता का अधिकार तो क्षत्रिय का है और ब्राह्मण का है। वस्तुतः तो ब्राह्मण का है, क्षत्रिय का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि उसके हाथ में तलवार है। लेकिन वह दोयम है, नंबर दो है। बड़े से बड़े सम्राट को भी ब्राह्मण के चरण छूने चाहिए, चाहे ब्राह्मण आचरणहीन हो। चाहे शूद्र कितना ही आचरणवान हो तो भी सम्मान के योग्य नहीं है।
मनुस्मृति कहती हैः अगर कोई शूद्र किसी ब्राह्मण की स्त्री के प्रेम में पड़ जाए या किसी ब्राह्मण स्त्री से संबंध बना ले, तो उसका दंड हत्या है। और अगर कोई ब्राह्मण किसी शूद्र की स्त्री के साथ व्यभिचार करे, तो भी उसका दंड कुछ रुपया है।
तुम फर्क देखते हो, शूद्र की कीमत, उसके जीवन की कीमत बस कुछ रुपया है! ब्राह्मण चाहे तो किसी से भी विवाह कर सकता है। क्षत्रिय चाहे तो ब्राह्मण को छोड़ कर किसी से भी विवाह कर सकता है। वैश्य चाहे तो ब्राह्मण और क्षत्रिय को छोड़ कर किसी से भी विवाह कर सकता है। लेकिन शूद्र केवल शूद्र में ही विवाह कर सकता है। शूद्र के लिए तुमने कोई उपाय न छोड़ा। न ज्ञान पाकर ऊपर बढ़ सकता है, न किसी अच्छे कुल में विवाह करके ऊपर बढ़ सकता है। तुमने उसके सब आधार तोड़ दिए।
यह शोषण की व्यवस्था है, इसमें विज्ञान क्या है? यह वर्ग-व्यवस्था है।
और यह वर्ग-व्यवस्था एकदम अमानवीय है, हिंसक है।
और तुम कह रहे हो कि "महर्षि मनु ने हजारों वर्ष पूर्व जो वैज्ञानिक व्यवस्था दी थी, उसके रूप तो बदल सकते हैं, लेकिन आधार कभी नहीं मिट सकते।" किस आधार पर तुम यह कह रहे हो कि उसके आधार कभी नहीं मिट सकते? रूस में कोई वर्ण-व्यवस्था नहीं है; आधार कभी के मिट गए। हिंदुस्तान और हिंदुओं को छोड़ कर दुनिया में कहीं कोई वर्ण-व्यवस्था नहीं रही; उसके आधार कभी के मिट गए। और अगर कहीं कुछ भी रूप-रेखाएं रह गई हैं, तो मिटती जा रही हैं। जैसे- जैसे आदमी का बोध, जैसे-जैसे आदमी की समझ बढ़ रही है, मिटती जा रही हैं।
और यहां इस मधुशाला में अगर तुमको कहीं कोई वर्ण-व्यवस्था दिखाई पड़ती हो, तो तुम्हारी आंखों का कसूर है। यहां सुशिक्षित से सुशिक्षित व्यक्ति संडास सफाई करने का काम कर रहे हैं। पीएचड़ी. और डी.लिट. जो कहीं यूनिवर्सिटीज में बड़े प्रोफेसर थे, वे यहां सफाई का काम कर रहे हैं, शूद्र का काम कर रहे हैं। मगर वे शूद्र नहीं हैं। उनका सम्मान उतना ही है जितना किसी और का। यहां किसी के सम्मान में कोई कमी और ज्यादा नहीं है; चाहे कोई सफाई करता हो, पाखानों की सफाई करता हो और चाहे कोई ध्यान सिखाता हो, चाहे कोई सूफी नृत्य करवाता हो, चाहे कोई इस विश्वविद्यालय का कुलपति हो, कोई भेद नहीं है। यहां कोई हायरेरकी नहीं है, कोई ऊंचे-नीचे का सवाल नहीं है। और तुम्हें यहां वर्ण-व्यवस्था दिखाई पड़ती है तो हद हो गई! यहां तो कोई रूप-रेखा ही नहीं है वर्ण-व्यवस्था की। यहां कोई पूछता ही नहीं कि तुम हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि ईसाई हो, कि जैन हो, कि बौद्ध हो, कि ब्राह्मण

हो, कि शूद्र हो। यहां कोई पूछता ही नहीं। यह बात पूछने की है? यह अशोभन है। किसी से यह पूछना, उसका अपमान करना है।
पंडित ज्ञानशंकर झा, तुम यहां किसी से पूछना कि तुम ब्राह्मण हो, कि क्षत्रिय, कि वैश्य, कि शूद्र? और तब तुम्हें पता चलेगा। कुछ नहीं कहा जा सकता कि वह किस तरह का तुमसे व्यवहार करेगा। कुश्तमकुश्ती हो जाएगी। क्योंकि यह बात अमानवीय है। यह पूछना ही अमानवीय है।
मगर इस देश में तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यहां तो एक से एक अमानवीय बातें पूछी जाती हैं। किसी से किसी की जाति पूछना, किसी से किसी का वर्ण पूछना अभद्रता है, अशिष्टाचार है। लेकिन यही नहीं, लोग तो यहां तनख्वाहें तक पूछते हैं कि आपको तनख्वाह क्या मिलती है? यही नहीं, यह भी पूछते हैं कि ऊपर भी कुछ... ?
और मजा यह है कि जवाब देने वाले भी जवाब देते हैं कि हां, थोड़ा-बहुत ऊपर भी मिल जाता है, सब भगवान की कृपा है। किसी को न लाज है, न संकोच है। लांच-घूस भी भगवान की कृपा है। लोग यह भी कहते हैं कि तनख्वाह तो ज्यादा नहीं, मगर ऊपर काफी मिल जाता है, इसलिए चित्त प्रसन्न है, सब ठीक-ठाक चल रहा है, घर-गृहस्थी की गाड़ी बड़े मजे में चल रही है। किसी को कोई संकोच नहीं। न पूछने वाले को, न जवाब देने वाले को।
मगर इस आश्रम में जरा सोच-समझ कर किसी से कुछ पूछना। यहां कोई बेहूदी बात बरदाश्त नहीं की जाती।
यह तुम किस आधार पर कहते हो, पंडित ज्ञानशंकर झा, कि महर्षि मनु ने जो वैज्ञानिक व्यवस्था दी थी, उसके रूप तो बदल सकते हैं, लेकिन आधार कभी नहीं मिट सकते?
उसका कोई आधार ही नहीं है--निराधार है, जबरदस्ती ऊपर से थोपी गई है, कृत्रिम व्यवस्था है। मनुष्य सिर्फ मनुष्य है। उसे बांटना अवैज्ञानिक है।
तुम कहते होः "वर्ण और आश्रम नये-नये रूपों में सदा प्रकट होते रहे हैं।"
बिल्कुल गलत है। वर्ण और आश्रम रोज-रोज विदा होते रहे हैं, प्रकट नहीं होते रहे। और अब आखिरी वक्त आ गया है। मेरे संन्यासी के साथ उनकी अंत्येष्टि, अंतिम संस्कार किए दे रहे हैं।
तुम कहते होः "इन अर्थों में आपके संन्यासी नये नहीं हैं और न ही आपकी आश्रम-व्यवस्था नयी है।"
सिर्फ नाम पुराने हैं। नामों के धोखे में आ जाओ तो अलग बात है, अन्यथा
सब कुछ नया है। और नाम भी पुराने मैंने जान कर चुने हैं, नहीं तो नये नाम चुन सकता था, कोई अड़चन न थी। नये नाम नहीं चुने, पुराने नाम चुने हैं।
संन्यासियों को कुछ और कह सकता था।
आखिर महावीर ने अपने संन्यासियों को संन्यासी नहीं कहा, मुनि कहा।
बुद्ध ने अपने संन्यासियों को संन्यासी नहीं कहा, भिक्षु कहा।
मैं भी कोई नया नाम चुन सकता था। लेकिन जान कर मैंने पुराना नाम चुना।
क्योंकि संन्यास की जो पुरानी व्यवस्था है उसको भीतर से ही नष्ट करना है।
बाहर से चोट करने की बजाय भीतर ही बम रख देना बेहतर है।
इतने संन्यासी मैं मुल्क में पैदा कर दूंगा कि तुम्हारे अखंडानंद, पाखंडानंद दाल में नमक के बराबर हो जाएंगे। इनसे लोग पूछने लगेंगे, माला कहां है?
मेरा संन्यास बिल्कुल नया है, समग्रतया नया है। क्योंकि संन्यासी का पुराना जो रूप था, वह जीवन से भागने का था, जीवन जीने का नहीं। संन्यासी का अर्थ ही यह था कि जो जीवन को छोड़ दे, त्याग दे। और मेरे संन्यास का अर्थ हैः जो जीवन को उसकी समग्रता में भोगे। त्यागे क्यों? भागे क्यों? जीवन को जीए! और यूं जीए कि जीवन को जीने में ही परमात्मा को पा सके।
जीवन मेरे लिए पवित्र है। जीवन मेरे लिए धर्म है। जीवन मेरे लिए परमात्मा की अभिव्यक्ति है। इसलिए जीवन को जीना उसे पाने की एकमात्र विधि है।
तुम्हारे संन्यासी तो सब हिप्पी थे। हिप्पी शब्द का अर्थ समझ लेना।
हिप्पी शब्द का अर्थ होता हैः जिन्होंने अपना हिप, जिन्होंने अपनी पीठ

समाज को दिखा दी और भाग खड़े हुए। मेरे संन्यासी हिप्पी नहीं हैं। तुम्हारे संन्यासी सब भगोड़े थे, कायर थे, कमजोर थे, जिंदगी को जीने की क्षमता नहीं थी, बुद्धिमत्ता नहीं थी। जीवन की चुनौती को स्वीकार करने का बल नहीं था; नपुंसक थे। इसलिए भाग गए थे।
तुम कैसे कह सकते हो कि मेरा संन्यास पुराना संन्यास है?
नाम भर पुराना है। नाम जान कर पुराना रखा है। क्योंकि पुराने को बिल्कुल नष्ट कर देना है। पुराने में एकदम आग लगा देनी है। और आग लगाने का सुगमतम उपाय यह है।
पहले मैंने बाहर से लड़ने की कोशिश की, तब तक मैंने संन्यास की व्यवस्था नहीं रखी थी। लेकिन मैंने देखा कि बाहर से लड़ना बहुत मुश्किल है, बहुत असंभव है, क्योंकि यह गढ़ सदियों पुराना है। बेहतर यही है कि भीतर प्रवेश कर जाओ।
इसलिए मैंने संन्यास की व्यवस्था दी कि ठीक है, संन्यासी हो जाओ, गैरिक वस्त्र पहनो। और भूल कर भी पुराने संन्यासी जैसे मत जीना। जीना अपनी मौज से। जीना अपनी मस्ती में। लेकिन गैरिक वस्त्र और संन्यास के नाम से भीतर प्रवेश हो जाएगा। और भीतर प्रवेश होकर इस जराजीर्ण व्यवस्था को तोड़ देना ज्यादा आसान है।
और इसीलिए तो मुझसे सारा संन्यासियों का वर्ग नाराज है--सब तरह के संन्यासियों का; क्योंकि उसको भय पैदा हो गया है, घबड़ाहट पैदा हो गई है।
न तो यह कोई आश्रम-व्यवस्था पुरानी है, न यह कोई संन्यास पुराना है।
अब तुम पूछते होः "क्या आप महर्षि मनु की वैज्ञानिक व्यवस्था आश्रम-व्यवस्था को गलत सिद्ध कर सकते हैं?"
रोज वही कर रहा हूं।
योग प्रीतम ने यह गीत मुझे भेजा है--
हां, मेरे मनचीते प्रभु,
उठने दो ऐसी ही क्रांति का राग,
सुलगने दो और अधिक विद्रोह की आग।
हर हालत में हम तुम्हारे साथ हैं
हम ही तुम्हारे लक्ष-लक्ष बढ़े हुए हाथ हैं। शताब्दियां गुजर गईं--
किसी ने इतने ज्वलंत प्रखर-स्वर में कभी गाया नहीं, जर्जर परंपराएं पलती रहीं--
नये-नये वसंतों की आहुतियां लेकर,
लेकिन कोई ज्वालामुखी बन कर कभी आया नहीं। तुम्हारा आगमन--
जीवन का शंखनाद करता हुआ तुम्हारा आगमन!
एक लंबी कालरात्रि के बाद
नवयुग का खिलखिलाता स्वर्ण-विहान है, टूटने लगी हैं अंध तिमिर की काराएं तुम्हारा यह कलरव--मुक्ति का मधुर गान है। हां, मेरे क्रांतिकारी भगवान!
होने दो आरोहण चेतना के उच्च शिखरों पर, उठने दो रोज-रोज नये-नये अभियान।
इस अभियान में--
हमारा अज्ञान भी तिरोहित हो
हमारा अहंकार भी जल जाए,
गल जाएं हमारे मन के काठिन्य तुम्हारी दिव्यता की आंच में
हमारा रोम-रोम पिघल जाए,
ताकि हम भी ठीक से
तुम्हारे साथ स्वर मिला कर गा सकें,
यह जीवन
संगीत और नृत्य भरा उत्सव हो जाए,
नयी प्रतिमाओं के आलोक से सभी दिशाएं जगमगा सकें।

हां, प्रभु,
सब ओर मरघट बनी इस धरती पर सृजन की नयी पौध उगानी ही है, नयी कोंपलों--नये फूलों से भर देनी है धरा की गोद,
नये मनुष्य में फिर से
वासंती सुषमा जगानी ही है। आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
नौवां प्रवचन

अनुशासन नहीं--स्वतंत्रता

पहला प्रश्नः ओशो, हम सोए हुए लोगों के लिए आप प्रज्ञापुरुषों का शायद एक ही उदघोष हैः बहुत सो चुके, जागो। लेकिन सभी तो एक साथ नहीं जाग सकते। मुश्किल से लाखों लोगों में कोई एक जागता है। इसलिए अतीत के बुद्धों ने सोए हुए लोगों के लिए भी कुछ अनुशासन बताए, जो अब समय-बाह्य हो गए हैं। उनके लिए आप क्या अनुशासन देंगे?

वसंत लाहिरी, अनुशासन स्वयं ही समय-बाह्य हो गया है। अनुशासन की भाषा
ही सड़ी-गली भाषा हो गई है। अनुशासन का अर्थ ही हैः कोई दूसरा तुम्हें राह बताए, कोई दूसरा तुम्हारा हाथ थामे, कोई दूसरा तुम्हारा उत्तरदायित्व अपने कंधों पर ले। और यही तो कारण है कि लाखों में कोई एक जाग सका। जैसे ही कोई और तुम्हारी जवाबदारी ले लेता है, जैसे ही कोई और तुम्हारे हाथ को थाम लेता है, वैसे ही तुम्हें जागने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
जैसे कोई किसी छोटे बच्चे को सम्हाले ही रहे--इस डर से कि कहीं चलेगा
तो गिर न जाए, कहीं चोट न खा जाए--तो फिर वह छोटा बच्चा अपंग ही रह जाएगा।
चलने के लिए आवश्यक है गिरना भी। चलने के लिए जरूरी है भूल-चूक करना भी।
भूल-चूक में कोई भूल-चूक नहीं है। भूल-चूक ही सीखने का एकमात्र रास्ता है।
अनुशासन तुम्हें भूल-चूक नहीं करने देता। वह तुम्हें जबरदस्ती भूल-चूक करने से रोक लेता है--जबरदस्ती। मन तो होता है भीतर भूल-चूक करने का।
लेकिन जो आरोपित अनुशासन है, उसका जो भय है, उसका जो प्रलोभन है, वह तुम्हारे पैरों में जंजीर बन जाता है। वह तुम्हारे चारों तरफ एक कारागृह बन जाता है।
प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह प्रबुद्ध हो सकता है। आखिर क्यों लाखों में एकाध ही व्यक्ति जागा? इस बात की गहराई में जाना जरूरी है। लाखों में एकाध ही व्यक्ति इसलिए जागा कि लाखों में एकाध ही व्यक्ति इतनी हिम्मत जुटा पाया कि अनुशासन के बंधन को तोड़ कर मुक्त जीवन जीने का खतरा मोल ले। वह जुआरी का काम है। वह भूल-चूक करने की तैयारी है। वह इस बात की घोषणा है कि भूल-चूक भी करूंगा तो भी उधार नहीं करूंगा, अपनी करूंगा।
स्वयं का उत्तरदायित्व जो स्वीकार करता है वही जाग सकता है। और अनुशासन उसमें ही बाधा बन जाता है।
इसलिए वसंत लाहिरी, मैं तुम्हें कोई अनुशासन नहीं दे सकता हूं। बहुत
हो चुका अनुशासन, परिणाम क्या हुआ? लाखों पौधे लगाए कोई माली और कभी किसी एकाध पौधे में एकाध फूल खिल जाए, यह कोई माली की गरिमा हुई? कोई गौरव हुआ? यह कोई बगीचा हुआ?
हां, इससे उलटा हो तो क्षम्य है कि कोई एकाध पौधा कभी बिना फूल के रह जाए और सारे पौधों पर फूल लद जाएं। सारे फूलों पर सुगंध उड़े, कोई एकाध फूल अगर सुगंधहीन भी रह जाए तो क्षमा योग्य है।
आदमी अब तक जिस ढंग से रहा है, वह ढंग क्षमा योग्य नहीं है। और उसमें तुम्हारे बुद्ध पुरुषों का भी हाथ है। चूंकि उन्होंने अनुशासन दिया... और मजा यह है कि उन्होंने स्वयं सत्य को पाया समस्त अनुशासन को छोड़ कर।
गौतम बुद्ध बुद्ध हुए, क्योंकि वे हिंदू अनुशासन को स्वीकार नहीं किए। हिंदू घर में पैदा हुए। उचित तो यही था कि पंडित-पुरोहितों की मान कर, मनुस्मृति के अनुसार जीते, वेद का पठन-पाठन करते, मंत्रोच्चार करते, हवन-यज्ञ इत्यादि विधि-विधान करते। और जो बंधी हुई लकीर थी उसके फकीर रहते। फिर वे भी बुद्ध न हो पाते। फिर वे भी वैसे ही बुद्धू रहते जैसे और बुद्धू हैं। लेकिन उन्होंने अनुशासन छोड़ दिया। उन्होंने समाज के द्वारा आरोपित नियम, विधान इनकार कर दिए। कहा कि सत्य को मैं स्वयं जानूंगा। किसी के माध्यम से क्यों जानूं? और माध्यम से जो सत्य जाना जाएगा, वह सत्य नहीं हो सकता; बासा होगा, उधार होगा।

किसी और ने मिठास ली और उसने तुम्हें खबर दी, इससे तुम्हें मिठास मिलने वाली नहीं है, उसका अनुभव तुम्हें नहीं होगा। सिर्फ शब्द तुम्हारे हाथ रह जाएगा--मिठास। मगर शब्द मिठास में क्या कोई मिठास है? शब्द तो कोरा है, शब्द तो खाली है। उसमें कोई अनुभूति तो नहीं।
जिसने ईश्वर को जाना, जिसने उसे चखा, जिसने उसका रस पीया उसकी बात और
ही है। और फिर उसने तुमसे कहा। उसके कहने से रसधार तुम्हारे भीतर नहीं पहुंच जाएगी। उसके कहने से केवल शब्द तुम्हारे पास इकट्ठे हो जाएंगे। प्यारे-प्यारे शब्द, सुंदर-सुंदर शब्द। पर शब्द अंततः शब्द हैं। उनको निचोड़ो तो कुछ भी न निकलेगा। न कोई रस, न कोई स्वाद, न कोई आनंद, न कोई उत्सव। और उन शब्दों को ही तुम ढोते रहोगे।
और जिस भांति किसी एक व्यक्ति ने सत्य को जाना है, कोई दूसरा व्यक्ति उसी भांति सत्य को कभी नहीं जानेगा। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। अनुशासन संभव कैसे है? बुद्ध ने जिस ढंग से जाना, फिर इन ढाई हजार वर्षों में लाखों-लाखों लोगों ने उसी ढंग से जीने की कोशिश की है, मगर कितने बुद्ध हुए? ढंग में थोड़े ही बात होती है। उधार ढंग केवल नकलची पैदा करता है; ज्यादा से ज्यादा कुशल अभिनेता पैदा करता है।
बौद्ध भिक्षु हैं--ये कुशल अभिनेता हैं। ठीक बुद्ध जैसे वस्त्र पहनते हैं। बुद्ध जिस कंधे को उघाड़ा रखते थे उसी कंधे को उघाड़ा रखते हैं। चादर जिस कंधे पर डालते थे उसी कंधे पर डालते हैं। जिस ढंग से बैठते थे उसी ढंग से बैठते हैं, उसी ढंग से उठते हैं। मगर क्या सत्य का इस तरह कोई अनुभव कर सकता है? क्या सत्य का कोई भी संबंध है कि किस कंधे को ढांका और किस कंधे को उघाड़ा छोड़ा? बुद्ध जो भोजन करते थे वही भोजन करते हैं। जब भोजन करते थे तभी भोजन करते हैं। ठीक वैसा ही भिक्षापात्र रखते हैं। मगर यह सब नकल, यह सब रामलीला, यह सब नाटक किसी काम नहीं आता। एक प्रवंचना पैदा होती है। जैन मुनि ठीक महावीर के ढंग से उठता है, बैठता है, चलता है। मगर फिर कोई महावीर पैदा क्यों नहीं होता? लाखों महावीर पैदा होने चाहिए थे। और इन जैन मुनियों को देख कर तुम्हें महावीर पर भी शक पैदा होगा कि महावीर भी कभी हुए! इनकी कतार देख कर महावीर के जीवन को कोई बल नहीं मिलता, बल्कि महावीर का जीवन कपोल-कल्पित मालूम होने लगता है। क्योंकि इनके जीवन में वह किरण तो दिखाई पड़ती नहीं। अगर महावीर की बात मान कर कोई भी उस किरण को उपलब्ध नहीं होता तो शक स्वाभाविक है, संदेह बिल्कुल संगत है कि पता नहीं महावीर भी उपलब्ध हुए थे या नहीं!
अनुशासन तो उधार होगा। और फिर सोए हुए लोगों के लिए तुम कहते हो, वसंत लाहिरी, तुम्हारे प्रश्न में ऐसा लगता है कि तुम अपने को सोए हुए लोगों में नहीं गिन रहे हो। तुम अपने को तो अलग रख रहे हो। ये बेचारे सोए हुए लोग, इनके लिए अनुशासन की जरूरत है।
इन सोए हुए लोगों को किसने सोया हुआ रखा है? इनकी नींद का आधार क्या है? जिंदगी जगाने को काफी है, मगर अनुशासन का जहर नहीं जागने देता।
जीसस जागे; यहूदी घर में पैदा हुए, लेकिन यहूदी अनुशासन को नहीं माना।
मोहम्मद जागे, क्योंकि जो मोहम्मद की परंपरा थी उसको इनकार किया। अब तक वही जागा है जिसने परंपरा को इनकार किया है; जो परंपरा से मुक्त हुआ है; जिसने स्वच्छंद गीत गाया है; जिसने अपने स्वयं के छंद का उदघोष किया है। जागना अनिवार्य रूप से वैयक्तिक घटना है।
लेकिन तुम्हें फिक्र है सोए हुए लोगों की। तुम्हें इस बात की जरा भी चिंता नहीं है कि ये सोए क्यों हैं! ये इसीलिए सोए हैं कि हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, यहूदी हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं। अगर कुछ इनको चाहिए तो बगावत चाहिए, क्रांति चाहिए, अनुशासन नहीं; विद्रोह चाहिए।
फिर, इनको अनुशासन भी दे दो, अगर ये सोए हुए हैं तो ये तुम्हारे अनुशासन को भी तो अपनी नींद की भाषा में ही समझेंगे। ये तुम्हारे अनुशासन का अनुवाद भी तो अपनी नींद की भाषा में ही करेंगे।
महावीर नग्न हुए। सोए हुए लोगों ने देखा कि महावीर नग्न हुए और उनकी सोई हुई दुनिया में महावीर की नग्नता उन्हें ऐसी आभासी कि नग्न होने से सत्य पाया जाता है।

अब नग्न होने से सत्य पाने का कोई भी संबंध नहीं है। सारे पशु-पक्षी नग्न हैं। सभी बच्चे नग्न पैदा होते हैं। तब तो सभी बच्चे सत्य को उपलब्ध ही हैं।
महावीर नग्न होकर सत्य को उपलब्ध नहीं हुए। महावीर सत्य को उपलब्ध हुए और नग्नता सहज सत्य की छाया की तरह आई। नग्नता केवल उनकी निर्दोषता का उदघोष है। वे छोटे बच्चे की भांति सरल हो गए। छिपाने को कुछ भी न रहा। वस्त्र भी व्यर्थ मालूम पड़े।
वस्त्र छिपाने का उपाय है। वस्त्र ढांक रहे हैं तुम्हें। नग्न होने में तुम्हें डर लगेगा। क्योंकि वस्त्रों ने बहुत सी बातों को छिपा रखा है, जो नग्न होते ही प्रकट हो जाएंगी।
वस्त्रों में ढंके हुए तुम रास्ते से गुजरते हो अपनी पत्नी के साथ और
एक सुंदर स्त्री को देखते हो। वस्त्रों में ढंके हो, इसलिए पत्नी को पता नहीं चलता कि तुम्हारे भीतर क्या हो रहा है। अगर नंग-धड़ंग पत्नी के साथ चल रहे हो और सुंदर स्त्री दिखाई पड़ जाए तो शरीर ही खबर दे देगा। वहीं रास्ते पर पत्नी तुम्हारी कुटाई-पिटाई कर देगी। और आस-पास जो भीड़ इकट्ठी होगी, वह भी ऐसा मौका चूकेगी नहीं। और तुम इनकार भी न कर सकोगे, क्योंकि तुम्हारा शरीर गवाही दे रहा होगा कि तुम्हारे भीतर क्या हो रहा है।
वस्त्र ढांके हुए हैं। वस्त्र तुम्हारे पाखंड को छिपाए हुए हैं। वस्त्रों का बड़ा सहारा है।
महावीर के पास जब कुछ छिपाने को न रहा, जब जीवन यूं सरल हो गया जैसे छोटे बच्चे का जीवन, तो वस्त्र अपने से गिर गए। यह तो महावीर के भीतर की घटना है कि सत्य पहले मिला, स्वानुभव पहले हुआ, समाधि पहले घटी, वस्त्र बाद में गिरे। मगर समाधि तो दिखाई पड़ती नहीं, वह तो अदृश्य है। वस्त्रों का गिर जाना दृश्य है, वह दिखाई पड़ता है। सोए हुए आदमियों ने गणित को उलटा बिठाया। उन्होंने सोचाः वस्त्रों के गिरने से, नग्न होने से सत्य की उपलब्धि। यह तर्क ही बदल गया। और यही सोए हुए लोग अनुशासन बनाएंगे। महावीर के संबंध में उल्लेख है कि महावीर बोले ही नहीं, महावीर मौन ही रहे, महावीर चुप ही रहे। चुप इसीलिए रहे कि क्या कहो? किससे कहो? जो कहोगे वही गलत समझा जाएगा।
लेकिन उनको यह पता नहीं था कि नहीं कहोगे तो भी गलत समझे जाओगे। कहो
या न कहो, गलत समझने को जो बैठा है वह गलत समझेगा ही। महावीर तो नहीं बोले, लेकिन उनके पास पंडितों की एक कतार इकट्ठी हो गई--उनके ग्यारह गणधर, ग्यारह ब्राह्मण पंडित। वे लोगों को समझाने लगे कि महावीर जो बोलते हैं मौन-वाणी, वह हमारी समझ में आती है, हम उनके संदेशवाहक हैं। और इन गणधरों ने सारा अनुशासन तय कर दिया। और ये गणधर उतने ही सोए हुए हैं जितने कि तुम सोए हुए हो।
यह सारा अनुशासन सोए हुए लोग ही निर्धारित कर लेते हैं दूसरे सोए हुए लोगों के लिए। न ये खुद समझ पाते हैं, न दूसरे समझ पाते हैं। जाग्रत व्यक्ति के जीवन को समझने का इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि तुम भी जाग जाओ। सोए-सोए तो तुम कुछ का कुछ समझोगे।
डाक्टर मरीज की पत्नी से बोला, क्षमा करें, आपके पति तो मर चुके हैं।
और अब कुछ भी किया नहीं जा सकता है।
तभी मरीज बोल उठा, लेकिन डाक्टर साहब, मैं तो जिंदा हूं!
पत्नी बोली, लल्लू के पप्पा, हजार बार कहा, बीच-बीच में न बोला करो।
तुम चुप रहो! क्या तुम डाक्टर से भी ज्यादा जानते हो?
स्वभावतः डाक्टर विशेषज्ञ है। ये लल्लू के पप्पा बीच में बोल रहे हैं। शर्म नहीं, संकोच नहीं।
लोग क्या समझेंगे? वही समझेंगे न जो समझ सकते हैं।
पार्टी में एक व्यक्ति बहुत ही ज्यादा बकबक कर रहा था। चंदूलाल मारवाड़ी बहुत परेशान थे। उन्होंने अपने मित्र मुल्ला नसरुद्दीन से कहा, इस हरामजादे को देखो, कितनी बकवास लगा रखी है, बोले ही चला जा रहा है! किसी और को तो बोलने का मौका ही नहीं दे रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं, यह उसका खानदानी मर्ज है।

चंदूलाल ने पूछा, खानदानी मर्ज? मैं कुछ समझा नहीं।
तो मुल्ला नसरुद्दीन ने समझाया कि समझो! इसके परदादा एक महापंडित थे।
इसके दादा एक बड़े राजनेता थे। इसके पिता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे।
और इसकी मां तो एक औरत है ही।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन जल्दी ही अपने दफ्तर पहुंच गया। उसने देखा
कि उसका चपरासी उसकी सुंदर टाइपिस्ट लड़की को चूम रहा है। मुल्ला भनभना उठा। गुस्से में बोला कि क्या मैंने तुम्हें इसीलिए नौकरी पर रखा है, क्या इसी की तनख्वाह देता हूं?
चपरासी बोला, नहीं मालिक, नहीं हुजूर, यह काम तो मैं निःशुल्क ही कर देता हूं।
डाक्टर ने मरीज को सलाह दी कि वह कुछ दिन तक हलका-फुलका काम करे। फिर पूछा, वैसे तुम काम क्या करते हो जी?
मरीज ने कहा, अब आपसे क्या छिपाना? घरों में सेंध लगाता हूं। कोई बात नहीं लेकिन डाक्टर साहब, कुछ दिन जेब काट कर ही काम चला लूंगा। हलका-फुलका काम ही करेंगे, सेंध न लगाएंगे, जेब काटेंगे!
अनुशासन तो दे दोगे तुम, लेकिन अनुशासन समझेगा कौन? अनुशासन रूपांतरित हो जाएगा सोए हुए आदमी तक पहुंचते-पहुंचते।
आस्कर वाइल्ड का नाटक पहली ही रात फेल हो गया। दूसरे दिन उसके मित्रों ने पूछा, कहो यार, कल तुम्हारा नाटक कैसा रहा?
आस्कर वाइल्ड ने जवाब दिया, नाटक बेहद सफल रहा, लेकिन देखने वाले फेल
हो गए।
मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि कल मेरे साथ शराबघर में बड़ी बदतमीजी हुई। उन लोगों ने मुझे धक्का देकर पीछे के दरवाजे से बाहर निकाल दिया।
मैंने पूछा, फिर तुमने क्या किया?
उसने कहा कि मैंने उन लोगों को बताया कि मैं शहर के एक प्रतिष्ठित परिवार का व्यक्ति हूं, इस तरह अशोभन व्यवहार मेरे साथ मत करो। नहीं तो पीछे पछताओगे। मैं इसका बदला चुकाऊंगा।
तो मैंने पूछा, अच्छा, फिर क्या हुआ?
नसरुद्दीन प्रसन्नता से बोला, फिर उन लोगों ने मुझे अंदर ले लिया और खूब धक्के मारे और सामने के दरवाजे से बाहर निकाल दिया।
प्रतिष्ठित परिवार के व्यक्ति हो, पीछे के दरवाजे से निकालना अशोभन,
तो सामने के दरवाजे से! मगर धक्के तो वही, धक्कों में कोई फर्क न पड़ेगा! तुम्हें अनुशासन दिए गए, लेकिन तुमने हर अनुशासन में तरकीब निकाल ली। बुद्ध के जीवन में यह प्रसिद्ध उल्लेख है--बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा था कि कभी भी भिक्षा मांगते समय कोई मांग न करना कि मुझे यह चाहिए। महावीर ने भी अपने साधुओं को, साध्वियों को कहा था कि कभी भिक्षा मांगते हुए जबान न खोलना, कि मुझे यह दो, मुझे वह दो। तो जैन मुनि जबान नहीं खोलता, हाथ से इशारा करता है। सब भोजन सजा कर रख दिया जाता है। जैन श्रावक कहते हैंः पधारो, धन्य भाग हमारे। और फिर मुनि इशारा करता है। स्वभावतः इशारा कोई रूखी-सूखी रोटी की तरफ नहीं करता। इशारा करता है--रसमलाई, चमचम, संदेश, गुलाब जामुन। अंगुली से इशारा करता है, जबान नहीं खोलता। जबान तो खोलने के लिए मनाही कर दी है।
अब तुम यह मत सोचो कि महावीर यह भी कह देते अगर कि अंगुली भी मत उठाना,
तो आंख से ही इशारा हो सकता था। कोई अंगुली उठाने की भी जरूरत है? जरा आंख गड़ा कर देख दिया गुलाब जामुन की तरफ, बात खतम हो गई!
बुद्ध ने भी अपने भिक्षुओं को कहा था, मांगना मत कुछ, क्योंकि पता नहीं जिससे तुम मांग रहे हो उसकी हैसियत भी है देने की या नहीं। और तुम मांगो और मजबूरी में उसे देना पड़े, तो मजा न रहा, बात में रस न रहा, बात बेहूदी हो गई। इसलिए जो मिल जाए वह स्वीकार कर लेना।
एक दिन यूं हुआ कि एक भिक्षु अपने भिक्षापात्र में भिक्षा लेकर लौट रहा था कि एक चील आकाश में उड़ती होगी, उसके मुंह से मांस का एक टुकड़ा छूटा और उसके भिक्षापात्र में गिर गया। बुद्ध ने कहा था, जो भिक्षापात्र में आ जाए उसे स्वीकार कर लेना। अब भिक्षु को सवाल उठा कि यह मांस का टुकड़ा

भिक्षापात्र में आया, मैंने तो मांगा नहीं। इसे स्वीकार करना कि नहीं करना? लेकिन स्थिति ऐसी थी कि बुद्ध ने इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा था, इसलिए उसने उचित समझा कि निवेदन कर दे। भिक्षु-संघ में उसने निवेदन किया कि मैं क्या करूं? आपके अनुसार, जो भी भिक्षापात्र में पड़ जाए, वह स्वीकार कर लेना चाहिए। आप मांसाहार के विरोध में हैं। लोगों को पता है, इसलिए कोई मांस हमारे भिक्षापात्रों में डालता नहीं। लेकिन यह चील मांस का टुकड़ा डाल गई है।
बुद्ध ने कहा था, जो भिक्षापात्र में आ जाए उसे अस्वीकार मत करना। क्योंकि आदमी की होशियारियां बहुत हैं। अगर उसे अस्वीकार करने का मौका हो तो जो-जो उसे पसंद नहीं है, या जो-जो साधारण है, छोड़ देगा; और जो-जो उसके स्वाद के अनुकूल है, उसे रुचिकर है, वह ग्रहण कर लेगा। इसलिए जो मिल जाए। बुद्ध थोड़े सोच-विचार में पड़े कि क्या करना। थोड़ी देर आंख बंद किए रहे। फिर उन्होंने सोचा कि चील कोई रोज ही थोड़े हर किसी के भिक्षापात्र में मांस डालेगी। यह तो बिल्कुल अपवाद स्वरूप है। इसलिए अगर मैं यह कहूं कि इसे इनकार कर दो, तो वह जो मौलिक नियम है उसमें बाधा पड़ जाएगी, फिर लोग बाद में इनकार करने के सिलसिले पर चल पड़ेंगे।
तो उन्होंने कहा, कोई फिक्र न करो। चील कोई रोज-रोज किसी के भिक्षापात्र में मांस डालने वाली नहीं है। इसलिए जो पड़ गया तुम्हारे भिक्षापात्र में, स्वीकार कर लो। तुमने हिंसा नहीं की है, तुमने मारा नहीं, तुमने मांगा नहीं। कोई हर्ज नहीं। यह छोटा सा टुकड़ा मांस का अगर अंगीकार भी कर लिया तो कोई हर्ज नहीं।
मगर इस छोटी सी घटना के कारण सारे बौद्ध दुनिया के मांसाहारी हो गए।
यह सोए हुए लोगों को दिए गए अनुशासन का परिणाम होता है। सारे दुनिया के बौद्ध मांसाहारी हो गए--इस छोटी सी घटना से। जिसको बुद्ध ने समझा था अपवाद, वह नियम हो गया। चीन में, जापान में, कोरिया में, जहां बौद्ध धर्म का प्रचार है, वहां हर होटल पर, जैसे यहां भारत में लिखा रहता है कि यहां शुद्ध घी की मिठाइयां मिलती हैं, ऐसे वहां लिखा रहता है कि यहां अपने आप मर गए जानवर का मांस मिलता है। अपने आप मर गए!
इतने जानवर कैसे अपने आप रोज मरते हैं, यह भी चकित करने वाली बात है। करोड़ों लोगों के लिए भोजन जुटा जाते हैं अपने आप मर कर। और मजा यह है कि चीन, जापान या कोरिया में फिर बूचड़खाने किसलिए हैं? जब अपने आप ही सब मर-मर के बौद्धों के लिए मांसाहार जुटा देते हैं, तो ये बूचड़खाने किसके लिए हैं? क्योंकि बौद्धों के अतिरिक्त इन देशों में कोई रहता ही नहीं। ये विराट बूचड़खाने भी चल रहे हैं। रोज जानवर मारे जा रहे हैं। लेकिन अपने आप मर गए जानवर का मांसाहार करने में कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि मारने में हिंसा है, मारो मत।
उस भिक्षु को कहा कि तुमने मारा नहीं, चील ने भी मारा नहीं, क्योंकि चील किसको मारेगी? मरे हुए किसी जानवर के मांस का टुकड़ा ले उड़ी होगी। अब जो मर ही गया है, उसके मांसाहार को कर लेने में क्या पाप है? पाप तो मारने में है, किसी का जीवन छीनने में है। इसमें किसी का जीवन नहीं छिन रहा है। तू यह मांस का टुकड़ा स्वीकार कर ले।
बुद्ध की आकांक्षा यह थी कि इस तरह अपवाद अपवाद ही रहेगा। मगर बुद्ध
की इच्छा और बुद्धुओं की समझ में जमीन-आसमान का फर्क होता है। वह अपवाद ही नियम बन गया। आज मजे से बौद्ध भिक्षु मांसाहार करते हैं, कोई अड़चन नहीं, कोई कठिनाई नहीं।
अनुशासन तो दिया जा सकता है, वसंत लाहिरी, पर अनुशासन का अनुवाद कौन करेगा? तुम्हारी निद्रा में ही अनुवाद होगा, तुम उसे अपने अनुकूल ही बना लोगे। तुम अपने हिसाब से ही, अपने उपयोग के लिए ही, तुम अपनी नींद के समर्थन के लिए ही सारे अनुशासन का उपयोग कर लोगे।
तुम कहते हो कि अतीत के बुद्धों ने सोए हुए लोगों के लिए भी अनुशासन बताए।
अगर बताए तो उन्होंने गलती की। नहीं बताने थे। उनकी गलती जाहिर है।
सारी दुनिया अनुशासनबद्ध मालूम होती है। और सारी दुनिया पाखंडी है।

जीसस ने नियम दिया है अपने अनुयायियों को कि कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर देना।
प्यारा अनुशासन हुआ! सुंदर सूत्र हुआ!
एक ईसाई फकीर चर्च में प्रवचन दिया इसी सूत्र पर, और बड़ा सारगर्भित प्रवचन दिया। एक नास्तिक भी सुन रहा था प्रवचन। उसने कहा--सोचा मन में-- क्यों न प्रयोग करके देख लिया जाए। जैसे ही सभा समाप्त हुई, वह गया और उसने फकीर के गाल पर एक चांटा लगाया। फकीर ने तत्क्षण दूसरा गाल उसके सामने कर दिया। थोड़ा हैरान हुआ वह आदमी। लेकिन था वह भी नास्तिक। अगर फकीर अड़ा था अपनी ईसाइयत पर तो वह भी अड़ा था अपनी नास्तिकता पर। उसने दूसरे गाल पर और भी कस कर चांटा जड़ दिया। जैसे ही दूसरे गाल पर चांटा जड़ा कि फकीर एकदम से झपट कर उसके ऊपर टूट पड़ा और उसकी ऐसी पिटाई की कि उसकी पसलियां टूट गईं। वह चिल्लाए भी कि अरे भाई यह क्या कर रहे हो? अभी तुम क्या समझा रहे थे? मगर फकीर ने पहले तो उसकी धुनाई की। जब उसकी बिल्कुल ही हड्डी-पसली तोड़ डाली, तब भी वह आदमी बोला कि यह तो मुझे बताओ, तुमने अभी प्रवचन में क्या कहा? फकीर ने कहा, प्रवचन में जो कहा, उसका अनुशासन मैंने पालन भी किया। जीसस ने कहा हैः जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना। तीसरे की तो कोई बात ही नहीं है। तीसरा गाल है भी नहीं। दो तक उनका नियम था, उसके बाद मैं स्वतंत्र हूं। दो तक मैंने बराबर उनके नियम का अनुसरण किया। उसके आगे उन्होंने कुछ कहा भी नहीं है। उसके आगे तो प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है।
जीसस के जीवन में यह उल्लेख है कि एक व्यक्ति ने पूछा कि आप कहते हैं क्षमा कर दो, दुश्मन को भी क्षमा कर दो। कितनी बार?
जीसस ने कहा, सात बार क्षमा करो।
उस आदमी ने कहा, अच्छी बात है!
जिस ढंग से उसने कहा अच्छी बात है, जीसस को लगा कि यह आदमी आठवीं बार सातों बार का बदला ले लेगा। कहते हैं न--लाख सुनार की और एक लुहार की।
सुनार खट-खट, खट-खट, छोटी सी हथौड़ी, बारीक नाजुक काम। और लुहार का तो एक ही हथौड़ा काफी है।
तो जीसस ने कहा, नहीं, सात बार नहीं, सतहत्तर बार।
उस आदमी ने कहा, कोई बात नहीं। सतहत्तर बार भी सही।
आदमी अजीब है। सतहत्तर बार भी क्षमा कर सकते हैं। लेकिन आखिर सतहत्तर
की भी सीमा तो आएगी। आखिर अठहत्तरवां मौका तो आएगा। देर सही, थोड़ी अबेर सही। लेकिन आखिर में असली आदमी तो प्रकट होगा ही होगा। असली आदमी कहां जाएगा।
यह असली आदमी अगर सोया हुआ है, तो तुम इसे कोई भी नियम दे दो, यह उन नियमों को अपनी नींद में ढाल लेगा। वे नियम इसकी नींद को तोड़ने में सहयोगी नहीं होंगे, इसकी नींद को मजबूत करेंगे। इसलिए मैं कोई भी अनुशासन नहीं दे रहा हूं।
तुम कहते होः "अतीत में बुद्धों ने सोए हुए लोगों के लिए अनुशासन बताए थे, जो अब समय-बाह्य हो गए हैं। उनके लिए आप क्या अनुशासन देंगे?"
मैं तो अनुशासन को ही समय-बाह्य मानता हूं। अनुशासन मात्र तिथि-बाह्य
हो गया है। देख चुके अतीत में इतना कि क्या परिणाम होता है, अब और नहीं। अब तो मैं एक ही बात कहता हूंः जागो। तुम्हारे पूरे जीवन को एक ही सूत्र पर निर्धारित करना है--जागने पर। फिर जागने से तुम्हारे जीवन में अनुशासन आएगा। मगर वह आएगा तुम्हारे भीतर से, मेरा दिया हुआ नहीं होगा। और जब अनुशासन स्वयं के जीवन में उठता है स्वस्फूर्त, तो उसका सौंदर्य और, उसकी सुगंध और, उसका आनंद और। उससे गुलामी पैदा नहीं होती। उससे स्वतंत्रता पैदा होती है। उससे तुम जंजीरों में नहीं जकड़ जाते। उससे तुम कारागृह में नहीं पड़ जाते।
और ये सब कारागृह हैं--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी, सिक्ख--ये सब कारागृह बन गए। नानक का यह इरादा न था। कबीर का यह इरादा न था। बुद्ध का यह इरादा न था। जीसस का यह इरादा न था। मोहम्मद का यह इरादा न था। जरथुस्त्र का यह इरादा न था। मगर इरादे का सवाल नहीं है। इरादे तुम्हारे अच्छे हों, लेकिन सोए हुए लोग तुम्हारे इरादों को समझ सकेंगे? उन तक

पहुंचते-पहुंचते बात बिल्कुल विकृत हो जाती है। वे उसमें से ऐसे अर्थ निकाल लेंगे और ऐसी तरकीबें निकाल लेंगे, जिनकी तुम्हें कल्पना भी नहीं होगी। और तुम कितना ही इंतजाम बिठाओ... ।
बौद्ध शास्त्रों में तैंतीस हजार नियम दिए गए हैं। तैंतीस हजार नियम! याद भी रखना मुश्किल। हर छोटी बात के लिए नियम दिया है। और उस छोटी बात से तुम कहीं निकल कर भाग न जाओ, इसलिए कोई भी रंध्र नहीं छोड़ी है। तो हर रंध्र को भरने के लिए भी नियम दिया है। फिर भी निकलने वाले निकल गए। फिर भी निकलने वाले उपाय खोज लेते हैं।
मैं एक जैन घर में मेहमान था। पर्युषण के दिन थे। जैन शास्त्र कहते हैं, पर्युषण के दिनों में--जैनों का धार्मिक उत्सव; व्रत, नियम, साधना का समय--हरी सब्जी मत खाना। क्योंकि जैन धारणा में वृक्ष में भी जीवन है, जो कि अब वैज्ञानिक सत्य भी है। जगदीशचंद्र बसु की खोजों ने इस बात को वैज्ञानिक आधार दे दिया है। और जगदीशचंद्र ने जहां तक बात पहुंचाई थी, उनके बाद इन पचास-साठ सालों में बात और भी आगे पहुंच गई।
अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि पौधों में इतनी संवेदनशीलता है जिसकी तुम कल्पना ही नहीं कर सकते। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तुम कुल्हाड़ी लेकर किसी पौधे को काटने जाते हो, अभी तुमने पौधे को काटना शुरू नहीं किया, तुम सिर्फ कुल्हाड़ी लेकर बगीचे में प्रविष्ट हुए हो, और वह पौधा कंप उठता है। जैसे कि तुम्हारे मन के विचार का भी उस पर परिणाम होता है। उसके कंपन को नापने के अब तो वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो गए हैं। जैसे कि तुम्हारा कार्डियोग्राम लिया जाता है, जो तुम्हारे हृदय की धड़कन नापता है--ठीक वैसे ही यंत्र निर्मित हो गए हैं, जो वृक्ष पर लगा दिए जाते हैं और वृक्ष के नीचे कार्डियोग्राम बनने लगता है, ग्राफ बनने लगता है कि वृक्ष की संवेदना क्या है। वृक्ष आनंदित है, दुखी है, परेशान है, चिंतित है, भयभीत है, प्रफुल्लित है, इस सबके अलग-अलग ग्राफ बनते हैं। अभी कुल्हाड़ी लिए हुए लकड़हारा भीतर नहीं आया था, एक ग्राफ बन रहा था, जो बड़ा लययुक्त था, संगीतपूर्ण था। और जैसे ही कुल्हाड़ी लिए हुए वह आदमी प्रविष्ट हुआ, जिस वृक्ष को काटने का उसका इरादा है उसका सिर्फ ग्राफ बदलता है। बाकी वृक्षों के ग्राफ अभी भी वही बनते हैं जो पहले बन रहे थे।
इसका तो अर्थ यह हुआ कि विचार भी संप्रेषित हो रहा है, वृक्ष विचार को
भी पहचान रहा है। इस आदमी के इरादे अभी इसने जाहिर भी नहीं किए, शायद इसने किसी को कहा भी न हो, यह अपने मन में ही सोच रहा हो कि फलां वृक्ष काटना है, उसी को काटने की नीयत लेकर आया हो, वही वृक्ष तत्क्षण भयातुर हो जाएगा। उसका ग्राफ डांवाडोल हो जाएगा।
वृक्षों में जीवन है और अति संवेदनशील जीवन है। वृक्ष भलीभांति समझ पाते हैं कि कौन उन्हें प्रेम करता है, कौन उन्हें घृणा करता है; कौन उनका दुश्मन है, कौन उनका मित्र है। माली को देखकर प्रफुल्लित हो जाते हैं। कवि को देखकर आह्लादित हो जाते हैं। चित्रकार को देखकर नाचने लगते हैं, डोलने लगते हैं, मस्त हो जाते हैं; जैसे किसी ने शराब पिला दी हो, यूं मदमस्त हो जाते हैं!
महावीर ने कहा कि जहां तक बने वृक्षों को चोट मत पहुंचाना। इसीलिए जैनों ने खेती-बाड़ी बंद कर दी, क्योंकि खेती-बाड़ी करोगे तो वृक्ष तो काटने ही होंगे। पौधे काटने होंगे, फसल काटनी होगी। जैन अनिवार्य रूप से व्यवसायी हो गए, उसका कारण यह नियम था। लेकिन महावीर ने न सोचा होगा कि परिणाम यह होने वाला है। क्षत्रिय तो हो नहीं सकते थे।
महावीर खुद क्षत्रिय थे। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय थे। इसलिए जो लोग महावीर और जैनों के तीर्थंकरों के पास पहली बार इकट्ठे हुए थे उनमें अधिकतम लोग क्षत्रिय थे। यह क्षत्रियों की ही बगावत थी ब्राह्मणों के शोषण के प्रति। लेकिन अब तलवार तो उठा नहीं सकते थे, क्योंकि तलवार में हिंसा होगी। इसलिए क्षत्रिय होने का उपाय तो बंद हो गया। खेती-बाड़ी कर नहीं सकते थे, क्योंकि इसमें हिंसा होगी। ब्राह्मणों से बगावत की थी, इसलिए यज्ञ-हवन-कुंड, ये तो कर नहीं सकते थे, क्योंकि यही तो उनका बुनियादी विद्रोह था। शूद्र होने को कोई राजी न था। चमार तो हो नहीं सकते थे, क्योंकि चमार का धंधा ही चमड़े का था। मरे हुए जानवरों को

ढोना, उनका मांस निकालना, उनका चमड़ा अलग करना, यह संभव न था। और कौन भंगी होना चाहे! तो एक ही विकल्प बचा--व्यवसाय का। इसलिए सारे जैन व्यवसायी हो गए।
माना कि उन्होंने वृक्षों की हिंसा बंद कर दी और आदमियों को काटना बंद कर दिया। मगर आदमियों का खून चूसना शुरू कर दिया। सूक्ष्म उपाय खोजे-- ब्याज और चक्रवृद्धि ब्याज। यूं स्थूल हिंसा बंद हुई--यह अनुशासन का परिणाम हुआ--और सूक्ष्म हिंसा शुरू हो गई। तो जैनों ने जितना धन इकट्ठा कर लिया उतना धन कोई भी इकट्ठा नहीं कर पाया इस देश में।
मैं एक जैन घर में मेहमान था। पर्युषण के दिन मैंने देखा कि उनकी थालियों में केले हैं। मैंने पूछा कि यह क्या? पर्युषण में केले! उन्होंने कहा, यह तो हरी सब्जी नहीं है, केला तो पीला है।
तुम देखते हो तरकीबें सोए हुए आदमी की! महावीर का हरे से मतलब था कि जो वृक्ष से तोड़ा गया है, अभी-अभी तोड़ा गया है। और महावीर का गैर-हरे से मतलब था कि जो वृक्ष से पक कर अपने आप गिरा है। जो अपने आप गिरा है, वृक्ष से पक कर गिरा है, वह अंगीकार किया जा सकता है। लेकिन हरे का उन्होंने मतलब रंग ले लिया। ऐसा सोया हुआ आदमी अपनी तरकीबें निकालता है।
तुम कितने ही नियम दो, इसमें कुछ फर्क न होगा। यूं समझो कि सोया हुआ आदमी अलार्म भर कर सोता है कि सुबह ब्रह्ममुहूर्त में तीन बजे उठना है। और जब अलार्म बजता है तो सोया हुआ आदमी एक सपना देखता है कि मंदिर में गया है-- धार्मिक सपना--मंदिर में गया है, मंदिर की घंटी बज रही हैं। अलार्म की घंटी बज रही है। सपना देखता हैः मंदिर की घंटियां बज रही हैं, क्या प्यारी घंटियां बज रही हैं। भाव-विभोर होकर सुनता रहता है।
अब अलार्म कोई सदा के लिए तो बजता नहीं रहेगा। थोड़ी देर तक बजेगा। सोया हुआ आदमी, अपनी नींद में, अलार्म की घंटी को भी बदल लिया, रूपांतरित कर लिया। उसने उसे मंदिर की सुंदर घंटियों में बदल दिया। और जब मंदिर की घंटियां शांत हो गईं तो मंदिर की घंटियों का सुखद नाद उसे और गहरी नींद में ले जाएगा। लोरी बन गई। अलार्म की घड़ी लोरी बन गई। नींद और गहरी लग जाएगी। एक करवट और लेगा, कंबल को और खींच लेगा, शांति से सो जाएगा। और बड़े आनंद भाव से सो जाएगा कि अहा! क्या सुंदर धार्मिक सपना देखा! मंदिर देखा, भगवान कृष्ण देखे! क्या बांसुरी बजा रहे थे! मीरा नाच रही थी! क्या घुंघरुओं का नाच हो रहा था! नींद में आदमी रूपांतरित करेगा।
इसलिए मैं अनुशासन देने में उत्सुक नहीं हूं। मैं तो सिर्फ जगाने में उत्सुक हूं। ध्यान जागने की प्रक्रिया है; ध्यान अनुशासन नहीं है। समाधि जाग्रत अवस्था का दूसरा नाम है--परिपूर्ण जागृति का। निश्चित ही फिर समाधि के उस उत्तुंग शिखर से हजार-हजार झरने बहते हैं। लेकिन वे झरने तुम्हारे हैं। और जब कोई अनुशासन तुम्हारा अपना होता है तो स्वभावतः तुम्हारे जीवन में पाखंड नहीं आता। कैसे आएगा पाखंड? जब दूसरा नियम देता है तो पाखंड आता है। क्योंकि दूसरा नियम जो देगा वह अपने अनुसार देगा। तुम दूसरे जैसे नहीं हो। तुम सिर्फ अपने जैसे हो। तुम्हारे जैसा कोई व्यक्ति कभी नहीं रहा।
जैसे दूसरों के जूते तुम पहनोगे तो अड़चन आएगी। कभी ढीले, चलोगे तो चलना मुश्किल। कभी चुस्त, इतने चुस्त कि प्राण निकाल डालें। और उधार जूते। दूसरे के पैर जिन जूतों में जम गए थे, उस दूसरे आदमी के पैरों ने जूतों के भीतर की आकृति भी बदल दी। तुम्हारे पैर की आकृति और। तुम्हारे पैर को ये जूते कष्ट देंगे।
उधार कपड़े पहनोगे, झंझट खड़ी होगी। कभी बहुत चुस्त होंगे, यूं लगेगा कि फांसी लग गई। कभी बहुत ढीले होंगे, यूं लगेगा कि भिखमंगे हो गए। मगर यह बहुत असंभव है कि तुम्हें ठीक-ठीक कपड़े मिल जाएं, जो दूसरे के हैं। और फिर कितने ही ठीक क्यों न हों, उधार होंगे, गंदे भी होंगे, फटे-पुराने भी होंगे, जराजीर्ण भी होंगे।
तुम दूसरों के जूते पहनना पसंद नहीं करते। तुम दूसरों के कपड़े पहनना
भी पसंद नहीं करते। जब तुम शरीर के संबंध में इतनी स्वतंत्रता बरतते हो तो तुमने आत्मा को इतना भी मूल्य नहीं दिया? शरीर से भी गई-बीती समझा है?

आत्मा के संबंध में तुम दूसरों के जूते पहनने को राजी हो और दूसरों के कपड़े पहने को राजी हो। आत्मा की महिमा तो समझो।
इसका कुल परिणाम इतना होता है कि एक पाखंड पैदा हो जाता है। तुम दूसरे
के नियम मान कर जीते हो, वह तुम्हारी ऊपर की सतह होती है। और भीतर तुम्हारा असली स्वभाव होता है जो उसके विपरीत होता है। होगा ही विपरीत। उसके अनुकूल कभी नहीं हो सकता। इन दोनों के बीच संघर्ष पैदा होगा।
एक मित्र ने पूछा है--मित्र का नाम है आशुतोष सदाचारी--भगवान, मैंने कुछ साल पहले बाबा कंठीवाले से गुरुमंत्र लिया था। उनके पास मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था। और उन्होंने मुझे बार-बार चेताया था कि मैं कभी किसी पराई स्त्री का विचार न करूं; और तो और अपनी पत्नी को भी अपनी मां के समान समझूं। अब कंठीवाले बाबा तो स्वर्ग सिधार गए और मेरी साधना अभी अधूरी है, इसलिए मैं आपके पास आया हूं। क्या आप मुझे अपनी साधना पूरी करने में सहायता देंगे? मेरे लिए तो बस ब्रह्मचर्य ही जीवन का संबल है।
अब आशुतोष सदाचारी मुश्किल में पड़े। और कंठीवाले बाबा फांसी लगा गए।
वे बार-बार चेता गए इनको कि कभी किसी पराई स्त्री का विचार न करना।
पहली तो बात यह है कि स्त्री को पराई और अपनी मानना ही बेहूदगी है।
स्त्री कोई वस्तु है कि अपनी और पराई? यह भाषा तो वस्तुओं के संबंध में ठीक है। लेकिन स्त्री को तो वस्तु न बनाओ। लेकिन ये कंठीवाले बाबाओं की परंपरा! ये हमेशा स्त्री को संपत्ति कहते रहे।
यह मूढ़ता जारी है। अभी भी बाप शादी करता है बेटी की तो कन्यादान करता है। पुत्रदान नहीं करता, कन्यादान करता है। पुत्र का कैसे दान किया जाए! पुत्र कोई संपत्ति थोड़े ही है! कन्या का दान किया जाता है। दान! न संकोच लगता लोगों को, न शर्म आती, न अभद्रता दिखाई पड़ती है। पुराने संस्कारों में जकड़े हुए हैं। वे सोचते हैं बड़े गजब का काम कर रहे हैं--कन्यादान कर रहे हैं। लेकिन इस शब्द के भीतर ही स्त्री को संपत्ति समझ लियाः पराई स्त्री का विचार न करो।
कंठीवाले बाबा को क्या पड़ी थी बार-बार चेताने की? ये जरूर पराई स्त्रियों का विचार करते रहे होंगे। नहीं तो पराई स्त्रियों से इनको क्या लेना-देना? और बार-बार चेताना। मतलब इनको गुदगुदी उठती ही रहती होगी। नहीं तो बार-बार किसलिए चेताएंगे? अरे, एकाध बार चेता देते, चलो ठीक।
और यही नहीं, वे तुमसे यह भी कह गए कि अपनी पत्नी को भी अपनी मां के समान समझो। फिर अपनी मां को क्या समझोगे? फिर बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई थी। तो वह बड़ा क्रोधित था। दुखी कम, क्रोधित ज्यादा। मैंने उससे पूछा कि पत्नी मर गई, दुखित होना समझ में आता है, क्रोधित क्यों हो भाई?
उसने कहा, क्रोधित इसलिए हूं कि ये सब मुहल्ले-पड़ोस वाले सब लुच्चे हैं, सब लफंगे हैं। जब मेरी मां मरी, तो सब बुढ़िएं आईं और कहने लगीं--बेटा, चिंता न करो, अरे हम तो हैं! हमको अपनी मां समझो। मेरी बहन मरी, सब हरामजादियां आईं कि कोई चिंता न करो भैया! अरे, हम तो हैं! हम राखी बांधेंगी। और अब मेरी पत्नी मरी, कोई नहीं आ रहा है। आज तीन दिन हो गए, एक औरत नहीं आती कि भैया, चिंता न करो, अरे हम तो हैं! क्रोध न आए तो क्या आए? यह क्या पागलपन की बात है कि अपनी पत्नी को भी अपनी मां के समान समझो।
और पत्नी तुमको क्या समझे, पिता के समान समझे? बड़ी झंझट खड़ी हो जाएगी। पत्नी तुम्हारी मां, तुम पत्नी के पिता। बड़ा गजब का नाता हो गया!
अब ये कंठीवाले तुम्हें फंसा गए। और आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत दिला गए। खुद तो मर गए, तुम्हें भी मार गए।
और तुम इस भूल में मत रहना कि कंठीवाले बाबा स्वर्ग सिधार गए। ये नहीं
जा सकते स्वर्ग। ये अभी औरों के गले में फांसी लगा रहे होंगे कहीं और समझा रहे होंगे, फिर चेता रहे होंगे, कि देखो पराई स्त्री की तरफ मत देखना। ये इसी गोरखधंधे में रहेंगे। स्वर्ग वगैरह इनको कहां मिलने वाला है! स्वर्ग कहीं यूं मिलता है? ये तुम्हारे लिए नर्क खड़ा कर गए। खुद भी नर्क में जीए होंगे।
असल में दूसरे के द्वारा दिए गए अनुशासन भयंकर सिद्ध होते हैं।

ब्रह्मचर्य समाधि की सुगंध है। उस शब्द को ही समझो। उसका अर्थ हैः ब्रह्म जैसी चर्या। इसकी तुम कसम खा सकते हो? जब तक ब्रह्म का अनुभव न हो तब तक ब्रह्मचर्य कैसे हो सकता है? यह अदभुत प्यारा शब्द, लेकिन दुष्टों ने ऐसा खराब किया है। सुंदर से सुंदर शब्द गलत लोगों के हाथ में पड़ कर विकृत हो जाते हैं।
ब्रह्मचर्य सीधा-सादा शब्द है--ब्रह्म जैसी चर्या। लेकिन इसका अर्थ क्या हुआ? क्या कसम लेकर कोई ब्रह्म जैसी चर्या कर सकता है? जब ब्रह्म का अनुभव ही न हो तो तुम कैसे ब्रह्म जैसी चर्या करोगे? ब्रह्म अनुभव का तो पहली बात है, वह केंद्र बनेगा, ब्रह्मानुभव, और फिर उसकी परिधि पर ब्रह्मचर्य फैलेगा।
ब्रह्मचर्य की कसमें नहीं ली जा सकतीं। कसम का तो मतलब ही यह है कि भीतर कामवासना भरी है, इसलिए तुम कसम ले रहे हो। तुम कसम क्यों ले रहे हो ब्रह्मचर्य की? अगर तुम्हारे भीतर कामवासना समाप्त हो गई है तो ब्रह्मचर्य की कसम क्यों लोगे?
जो आदमी शराब नहीं पीता वह कभी कसम भी नहीं लेता कि मैं शराब न पीऊंगा। यह बात ही व्यर्थ है, यह बात ही असंगत है। जो आदमी तंबाकू नहीं खाता, वह आदमी कसम भी नहीं लेता कि मैं तंबाकू का त्याग करता हूं। इसका कोई मानी ही न होगा। यह बात बेमानी हो जाएगी। तुम उसी बात की तो कसम खाते हो जिसके विपरीत तुम लड़ रहे हो। कामवासना भीतर उद्दाम वेग ले रही है। अब इसको दबाने के लिए तुम कसम खाते हो ब्रह्मचर्य की। दबा लोगे, मगर मुक्त न हो पाओगे। दमन से कोई कभी मुक्त नहीं होता।
और कंठीवाले बाबा तुम्हारी छाती पर बैठे हैं। वे चेता रहे हैं कि दबा! बेटा और दबा! एकदम दबा दे! अपनी पत्नी को भी अपनी मां समझ!
और तुम इस तरह के जाल में पड़ जाओगे, तुम्हारे भीतर ऐसा द्वैत खड़ा हो जाएगा कि तुम्हारे भीतर दबी हुई वासना तुम्हारे रग-रेशे में प्रवेश कर जाएगी, तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाएगी। तुम्हारे सपनों में पराई स्त्रियां आएंगी, जिनको तुम त्याग किए बैठे हो। सच तो यह है कि पराई स्त्रियों का तुम त्याग ही क्यों कर रहे हो? वे तुम्हारी हैं ही नहीं। यह भी खूब मजे की बात हुई!
पूर्णिमा की रात दो अफीमची एक वृक्ष के नीचे लेटे थे। और एक अफीमची ने कहा, अहा! अगर एक करोड़ रुपया भी कोई मांगता हो तो मैं देने को राजी हूं, मगर यह चांद खरीद कर रहूंगा।
दूसरे ने कहा, चुप रह रे! मुझे बेचना ही नहीं। एक करोड़ क्या, तू दस करोड़
भी दे, जब बेचना ही नहीं!
चांद किसी का भी नहीं है, खरीद-फरोख्त हो रही है। पराई स्त्रियों का त्याग कर रहे हो! देखना ही नहीं। यह घबड़ाहट, यह भय, कोई साधना है?
आशुतोष! और तुम अगर यहां आए हो कि मैं तुम्हारी इस साधना में सहयोगी बनूं तो तुम गलत जगह आ गए। हां, अगर तुम्हें सच में ही साधना में उतरना है तो ये मूर्खताएं छोड़नी पड़ेंगी। यह मूर्खता तुम्हें किसी ने भी दी हो। इस देश में कंठीवाले बाबाओं की कोई कमी नहीं है। एक से एक बुद्धू यहां बाबा बने बैठे हैं। यहां बाबा बन कर बैठना इतना आसान है जिसका हिसाब नहीं। कुछ अकल नहीं चाहिए। अकल जैसी चीज की कोई जरूरत ही नहीं है। सिर्फ बुद्धूपन चाहिए। जितना सघन बुद्धूपन हो उतने ही पहुंचे हुए परमहंस तुम हो जाओगे। अगर तुम में थोड़ी बुद्धि हो तो इस तरह के जालों में तुम पड़ोगे नहीं। ये सस्ती बातें हैं--व्रत ले लेना, नियम ले लेना, कसम खा लेनी, फिर कसम में बंध जाना। यह सिर्फ अहंकार का पोषण है।
अब तुम कह रहे होः "मेरे लिए तो बस ब्रह्मचर्य ही जीवन का संबल है।"
अभी तुमने ब्रह्मचर्य जाना कहां? कसम खाई है। जाना कहां, पहचाना कहां? अगर ब्रह्मचर्य को ही जान लेते तो अब साधना में कमी क्या रह गई जो तुम यहां आए? अगर ब्रह्मचर्या ही तुमने पहचान ली, अगर ब्रह्म का ही अनुभव तुम्हारे भीतर उतर आया, अगर वह प्रकाश घट गया, तो अब साधना में कमी क्या रह गई? न तो ब्रह्मचर्य घटा है, न कोई साधना घटी है।
इसलिए पहली तो बात याद रख लो कि अगर तुम चाहते हो मेरे साथ साधना में उतरना, तो तुमने जो भी बकवास सीख रखी हो, वह छोड़ देनी पड़ेगी। तुम्हारी

साधना में मैं सहयोगी नहीं हो सकता। हां, मैं तुम्हें साधना के सूत्र दे सकता हूं। और कठिन नहीं है मेरी साधना। अत्यंत सुगम है और सरल है, सीधी-साफ है। दो और दो चार जैसा स्पष्ट मेरा गणित है। लेकिन उसके लिए साहस करना होगा। उसके लिए साहस करना होगा पुराने कूड़ा-कचरा को बिल्कुल जला देने का। अगर तुम नये होकर मेरे पास आना चाहो तो ही काम शुरू हो सकता है--कोरे कागज की तरह।
इसलिए मैं कहता हूं, वसंत लाहिरी, मैं कोई अनुशासन नहीं देता। मैं तो, अनुशासन जहां से जन्मता है, उस समाधि के अनुभव की तरफ थोड़े से इशारे देता हूं। वह भी इशारे। बहुत सख्त नहीं, बहुत कठोर नहीं--लोचपूर्ण। क्योंकि सख्त इशारे भी बंधन बन जाएंगे। बहुत लोचपूर्ण कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुकूल अपने स्वभाव से मेल खा सके, इस ढंग से यात्रा कर सके।
ध्यान के अतिरिक्त न कभी कोई मार्ग था, न है। हां, जरूर ध्यान के अनुभव
से जीवन में क्रांति घटती है। मगर तब तुम अपने स्वयं शास्ता होते हो। मैं तुम्हारा शास्ता नहीं हूं। मैं तुम्हें शासन नहीं दे रहा हूं। यह शासन देने की धारणा भी, छिपे रूप में, आदमियों के ऊपर मालकियत करने की चेष्टा है। राजनेता भी इसी आकांक्षा से भरा है कि शासन करे। और धर्मगुरु भी इसी आकांक्षा से भरा है कि शासन करे। दोनों शासन करने को आतुर हैं।
मेरी कोई आकांक्षा तुम्हारे ऊपर शासन करने की नहीं है। मैं तो अपने हृदय को तुम्हारे सामने खोल कर रख देता हूं। इसमें से अगर कोई बात तुम्हारी हृदय-तंत्री को छेड़ दे, इसमें से कोई घटना, कोई शब्द, कोई मौन, कोई संकेत तुम्हारी नींद को तोड़ने का कारण बन जाए, तो सत्संग सफल हुआ। फिर तुम अपने मार्ग पर चलोगे, अपने ढंग से चलोगे।
मेरा प्रत्येक संन्यासी अपनी निजता में जीएगा। वह कोई कार्बन-कापी नहीं है। मैं उसे स्वतंत्रता दे रहा हूं, अनुशासन नहीं। मैं उसे स्वयं के छंद को गाने की सुविधा दे रहा हूं, कोई अनुशासन नहीं। अनुशासन समय-बाह्य हो चुका, उसका अब कोई भविष्य नहीं है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, अशनाया वै पात्मामतिः। अर्थात भूख ही सब पापों की
जड़ है। वही बुद्धि को भ्रष्ट करती है।
ओशो, एतरेय ब्राह्मण के इस सूत्र को समझने वाले लोग दरिद्रता को कब और क्यों आदर देने लगे?

मधुसूदन मिश्र, यह सूत्र तो प्यारा है। इस सूत्र के साथ तो मैं पूरा- पूरा राजी हूंः अशनाया वै पात्मामतिः। भूख, गरीबी, दरिद्रता--सब पापों की जड़ है। और तुम्हारा प्रश्न सार्थक है कि कब यह सूत्र खो गया? और कब और कैसे लोग दरिद्रता को आदर देने लगे?
इस सूत्र के खो जाने के पीछे एक लंबा शड्यंत्र है। इस शड्यंत्र में राजनीतिज्ञों और पुरोहितों की सांठ-गांठ है। पुरोहित का धंधा ही लोगों के पाप पर है। अगर कोई पाप न करे तो पुरोहित के लिए कोई आधार नहीं बचता। इसलिए पुरोहित नहीं चाहेगा कि दुनिया में लोग सुखी हों, आनंदित हों, समृद्ध हों। क्योंकि समृद्धि, आनंद और सुख उनके पाप की संभावना को समाप्त कर देंगे। और पापी आदमी को ही डराया जा सकता है; नर्क का भय दिया जा सकता है, स्वर्ग का प्रलोभन दिया जा सकता है। पापी आदमी को ही घबड़ाया जा सकता है। पापी आदमी को अपराध की ग्लानि पैदा करवाई जा सकती है। उसी ग्लानि में इन पंडित-पुरोहितों के वह चरण छूता है। इनके पैर पकड़ता है कि मुझे बचाओ, मुझे उबारो, इस पाप से मेरा छुटकारा दिलाओ! मैं क्या करूं, क्या न करूं? पाप से बचने के लिए वह कंठीवाले बाबाओं के पास जाता है कि मुझे मंत्र दो। कोई ऐसा मंत्र दो जो मेरे लिए सुरक्षा बन जाए, संबल बन जाए। कोई ऐसा व्रत दो, कोई ऐसा नियम दो, कोई ऐसा अनुशासन दो जिससे कि मैं पाप से बच जाऊं।
और मुश्किल यह है कि पाप से वह बच न सकेगा जब तक दीन है और दरिद्र है। मजबूरी है उसकी। वह लाख उपाय करे, वह किसी न किसी तरह के पाप में फंसेगा ही।
लाओत्सु के जीवन में यह प्यारा उल्लेख है कि चीन के सम्राट ने उसे महान बुद्धिमान समझ कर अपना प्रधान न्यायाधीश नियुक्त कर दिया। लाओत्सु

ने बहुत इनकार किया कि मेरा और आपका साथ बैठेगा नहीं। लेकिन सम्राट माना नहीं, जिद्दी था। उसने कहा, क्यों नहीं बैठेगा? तुम जैसा बुद्धिमान व्यक्ति ही सम्यक न्याय कर सकता है। लाओत्सु ने कहा, जैसी मर्जी।
पहले ही दिन मामला बिगड़ गया। पहला ही निर्णय लाओत्सु ने दिया और सम्राट ने कहा कि यह आदमी ठीक ही कहता था। इससे ताल-मेल बैठना मुश्किल है। एक चोर रंगे हाथों पकड़ा गया। लाओत्सु ने सारी बात सुनी। प्रत्यक्ष प्रमाण थे और चोर ने स्वयं अंगीकार भी कर लिया कि मैं चोर हूं और मैंने चोरी की है, और जो भी दंड आप देना चाहें जरूर दें। आपके सामने मैं झूठ नहीं बोल सकता। कोई और होता तो बात और थी। लेकिन लाओत्सु जैसे बुद्ध पुरुष के सामने कैसे मैं झूठ बोलूं? मैं स्वीकार करता हूं। तुम्हारे हाथ से दंड भी सौभाग्य है।
लाओत्सु ने कहा कि तुझे छह महीने की सजा और जिसके घर में तूने चोरी की उसको भी छह महीने की सजा।
जिसके घर में चोरी हुई थी वह आदमी तो एकदम हैरान हो गया। उसने कहा, यह
तो हद हो गई! न कभी ऐसा न्याय सुना, न देखा। यह तो अन्याय की आखिरी सीमा हो गई। मेरे घर चोरी हो और मुझे सजा मिले!
लाओत्सु ने कहा कि सच पूछो तो अन्याय जरूर हो रहा है। अन्याय यह हो रहा है कि तुझे सजा ज्यादा मिलनी चाहिए। लेकिन मैं इधर नया-नया हूं। अभी शुरुआत ही है काम की। छह महीने काफी नहीं है। तू अपना सौभाग्य मना कि तुझे उतनी ही सजा दे रहा हूं जितनी चोर को। क्योंकि तेरा पाप ज्यादा बड़ा है। तूने इस सारे गांव के धन को इकट्ठा कर लिया है। तूने सारे गांव को दरिद्र कर दिया है। और दरिद्र पाप न करेंगे तो क्या करेंगे? चोरी न करेंगे तो क्या करेंगे? तू इस सारे गांव के चोरों के लिए जिम्मेवार है। इस आदमी का कसूर बड़ा नहीं है कि इसने चोरी की। तेरा कसूर बहुत बड़ा है, अनंत गुना बड़ा है। तू चोरी के लिए मूल आधार जुटाया है। तू चोरों का गुरु है।
वह आदमी भागा हुआ सम्राट के पास गया। और उसने कहा, यह हद हो गई। और अगर
यह आदमी मुझे चोरों का गुरु कह रहा है तो आप भी सावधान! क्योंकि मेरी क्या बिसात आपके सामने! आप तो समझो गुरुघंटाल! अगर मुझे छह महीने की सजा तो तुम्हें तो छह जन्म की सजा भी कम होगी।
बात सम्राट को भी समझ में आई कि यह तो बात खतरनाक है। लाओत्सु को उसी क्षण विदा किया कि तुम ठीक कहते थे, मेरी गलती है। लाओत्सु ने कहा, मैंने पहले ही तुम्हें सचेत किया था कि मैं तो वही करूंगा जो सत्य है। धर्मगुरु, पंडित-पुरोहित नहीं चाहेंगे कि पाप मिट जाए। एकदम जरूरी है उनके अस्तित्व के लिए कि पाप जारी रहे। और पाप जारी रखना हो तो गरीबी जारी रहनी चाहिए। इसलिए गरीबी को आदर देना शुरू किया गया। गरीबी को सम्मान देना शुरू किया गया। जैसे गरीबी में कोई गौरव है! जैसे गरीबी में कोई गुणवत्ता है! और राजनेता भी नहीं चाहता कि दुनिया से पाप और अपराध समाप्त हो जाएं। राजनीति भी मर जाएगी उसी दिन जिस दिन पाप और अपराध समाप्त हो जाएंगे। पाप हैं तो राजनीति है। अपराध हैं तो राजनीति है। युद्ध हैं तो राजनीति है। हिंसाएं हैं, आत्महत्याएं हैं, तो राजनीति है। चोरी और डाके बिल्कुल जरूरी हैं।
इसलिए न तो राजनेता इस पक्ष में हैं, न धर्मगुरु इस पक्ष में हैं कि दुनिया से दरिद्रता मिटनी चाहिए। कार्ल मार्क्स का यह वक्तव्य बिल्कुल सही है कि धर्म ने लोगों के लिए करीब-करीब अफीम का काम किया है। लोगों को अफीम देकर धर्म की सुलाए रखा गया है। न बगावत कर सकें, न दीनता मिटा सकें, न दरिद्रता मिटा सकें। और हजार तरकीबें खोजी गईं कि परमात्मा ने तुम्हारे भाग्य में गरीबी लिखी है। या कि पिछले जन्मों का कर्मफल तुम भोग रहे हो। सांत्वना से, धैर्य से, संतोष से भोग लो तो अगले जन्म में बहुत सुख पाओगे। गरीब को सब तरह से, गरीब बना रहे, इसके उपाय किए गए हैं। और इस ढंग से उपाय किए जाते हैं कि लगता नहीं, समझ में नहीं आता, पकड़ में नहीं आता।
महात्मा गांधी जैसे लोग विज्ञान के विरोध में थे। और कुल कारण विज्ञान के विरोध में होने का यही है कि विज्ञान लोगों की गरीबी मिटा सकता है। और गरीबी मिट जाए तो सब महात्मागिरी भी मिटती है। गरीबी संबल है सब

महात्मागिरी का। गरीबी मिट सकती है, गरीबी के मिटने में कोई अड़चन नहीं है।
लेकिन गरीबी को मिटने नहीं देना है, बचाए रखना है।
इथोपिया के सम्राट हेल सिलासी के जीवन में यह उल्लेख है और महत्वपूर्ण उल्लेख है कि इथोपिया में लोग भयंकर बीमारियों से ग्रस्त थे।
और बीमारियों का कुल कारण इतना था कि इथोपिया के लोग, बरसात में गड्ढों में रास्तों के किनारे जो पानी भर जाता है, उसको पीते हैं। वह गंदा पानी होता है। उस पानी में सब तरह के कीटाणु होते हैं।
यू एन ओ ने चिकित्सकों का एक दल अध्ययन के लिए भेजा कि क्यों इथोपिया में इतनी बीमारियों से लोग ग्रसित हैं। और उसने अपनी रिपोर्ट इथोपिया के सम्राट को दी। और कहा कि बड़ी आसानी से बीमारियां मिटाई जा सकती हैं, सिर्फ लोगों को, पानी पीने की जो उनकी सदियों पुरानी आदत है, उसे थोड़ा रोकना पड़ेगा। बेहतर कुएं बनाने पड़ेंगे या पानी के जलाशय बनाने पड़ेंगे। बस पानी की व्यवस्था बदलनी है। ये लोग सड़कों के किनारे गंदे डबरों में जो पानी इकट्ठा हो जाता है इसको पीना बंद कर दें तो यह सारी बीमारी समाप्त हो सकती है। लोग स्वस्थ हो सकते हैं।
लेकिन हेल सिलासी ने कहा कि तुम्हारी बात सही होगी। लेकिन मैं यह करने को राजी नहीं हूं। क्योंकि लोग जैसे ही स्वस्थ होंगे वैसे ही मेरे लिए उपद्रव खड़ा होगा। न तो लोगों के स्वस्थ होने की जरूरत है, न शिक्षित होने की जरूरत है। जैसे ही शिक्षित होते हैं, जैसे ही स्वस्थ होते हैं, जैसे ही थोड़ा सा उनके जीवन में सुख आता है कि बस अड़चन शुरू होती है, बगावत शुरू होती है, क्रांति की बातें होने लगती हैं। मैं यह नहीं होने दूंगा। और उसने नहीं होने दिया। लेकिन यह कब तक रुक सकती थी बात! आखिर जब इथोपिया के लोगों को भी पता चलना शुरू हुआ कि हमारी बीमारी का असली कारण यह है, तो अंततः सिलासी को राजी होना पड़ा।
और जो उसने सोचा था वह सही साबित हुआ। जैसे ही लोग स्वस्थ हुए, और जैसे
ही लोगों के लिए शिक्षा का उपाय हुआ, और जैसे ही लोगों का बीमारी से जाल टूटा, वैसे ही बगावत हो गई। वैसे ही हेल सिलासी को सिंहासन से उतार दिया गया। हेल सिलासी मजबूत से मजबूत सम्राट था। लेकिन उसका सारा आधार बिखर गया। वह मरा एक कैदी की तरह।
हेल सिलासी की बात में सार्थकता है। ये सारे सत्ताधिकारी लोग, फिर चाहे वे धार्मिक सत्ताधिकारी हों और चाहे राजनीति के सत्ताधिकारी हों, इनका सारा सत्ता का खेल, इनके अहंकार की प्रतिष्ठा, इस बात में ही है कि लोग दीन हों, गरीब हों, अशिक्षित हों। ताकि लोग जैसे हैं उसको ही अंगीकार कर सकें। इनके जीवन में कोई सूरज की किरण नहीं होनी चाहिए।
एतरेय ब्राह्मण का यह सूत्र बिल्कुल ठीक कहता है। मगर न तो राजनेता इससे राजी हैं, न धर्मगुरु राजी हैं।
अखिल भारतीय साधु समाज की मध्यस्थ सलाहकार समिति के अध्यक्ष श्री गुलजारी लाल नंदा ने कहा है कि साधुओं को भौतिकवाद की ओर जा रहे लोगों में आध्यात्मिक गुणों का विकास करना होगा। उन्हें एकांतवास से निकल कर महात्मा गांधी के रामराज्य की स्थापना में सहयोग करना चाहिए।
भौतिकवाद के बिना समृद्धि नहीं हो सकती। भौतिकवाद के बिना एतरेय ब्राह्मण का यह सूत्र पूरा नहीं हो सकता। दरिद्रता रहेगी। अब गुलजारी लाल नंदा जो कह रहे हैं, इनका नाम रख दोः गुलजारी लाल अंधा। इन अंधे लोगों को यह दिखाई भी नहीं पड़ता कि सदियों से यही बकवास लगा रखी है कि आध्यात्मिक गुणों का विकास करना होगा। लोग भूखे मर रहे हैं। लोगों के पेट में रोटी नहीं है। और ये उनके आध्यात्मिक गुणों का विकास करना चाहते हैं। ये भरे पेट लोग रामधुन करने में लगे हैं। ये सोचते हैं कि इनके भरे पेट हैं तो सभी के भरे पेट हैं।
इस देश में नब्बे प्रतिशत लोग भूखे हैं। पचास प्रतिशत तो बिल्कुल ही भूखे हैं। इनमें आध्यात्मिक गुणों का विकास करवाना है। ये कहीं भौतिकवाद की तरफ न चले जाएं, इससे गुलजारी लाल अंधा को बड़ी तकलीफ हो रही है। और क्यों तकलीफ हो रही है गुलजारी लाल अंधा को? क्योंकि धंधा खतरे में है। और आध्यात्मिक गुणों का विकास तुम दस हजार सालों से कर रहे हो, और कितना समय

चाहिए? कुछ और भी होने दोगे कि आध्यात्मिक गुणों का विकास! और गुलजारी लाल अंधा में कौन से आध्यात्मिक गुण हैं?
यह बड़े मजे की बात है! इस देश में राजनेता भाषणबाजी में बड़े कुशल हैं। सारे देश को आध्यात्मिक गुण सिखाना चाहते हैं। और इनके जीवन में कोई देखे, तो ये निपट गुंडे हैं, और कुछ भी नहीं। लेकिन सत्ता में हैं, सो इनको गुंडा नहीं कह सकते। इनको कहना पड़ता है--दादा। मगर मतलब वही है। इनमें कौन से आध्यात्मिक गुण हैं? इनके भीतर सब तरह की चालबाजियां, सब तरह की कूटनीतियां, सब तरह की बेईमानियां, जितनी इनके भीतर हैं और किसी के भीतर नहीं। राजनीति का पूरा दांव-पेंच बेईमानी का है। यह धंधा लुच्चों का है। इसमें कोई सच्चा आदमी तो टिक ही नहीं सकता, लुच्चा ही टिक सकता है।
मगर जब ये व्याख्यान देते हैं तो जनता ताली बजाती है। और जनता भी भलीभांति इनको पहचानती है; तभी तक ताली बजाती है जब तक ये सत्ता में हों। जैसे ही सत्ता के बाहर होते हैं, फिर कोई ताली वगैरह नहीं बजाता।
अभी कुछ दिन पहले मैंने एक खबर पढ़ी कि मोरारजी देसाई यात्रा करके बंबई पहुंचे, कोई लेने ही नहीं आया। वे पुराने ही ख्याल में होंगे। यह उनको पता ही नहीं है कि अब तुम्हारी गिनती भूत-प्रेतों में है। भूतपूर्व मतलब भूत-प्रेत। अब तुम्हें कौन लेने आने वाला है! और मजा यह कि उन्हें ख्याल ही नहीं था कि कोई लेने नहीं आएगा, सो उनके पास पैसे भी नहीं थे टैक्सी के। टैक्सी में चलने का सोचा भी नहीं होगा। टैक्सी में जाना पड़ा, और वह भी किसी आदमी से पैसे उधार लेकर! क्योंकि टैक्सी वाला भी भूत-प्रेतों को ऐसे नहीं बिठालता। राजनेता जो जा चुके, खतम हो चुके, जिनकी अरथी निकल चुकी, उनसे वह कहता है, भैया, पैसा पहले। और सबसे बाद में ले लेगा। मगर इनसे बाद में क्या भरोसा, मिलें न मिलें। टैक्सी वाले ने पैसे पहले लिए होंगे।
ये राजनेता आध्यात्मिक गुणों का विकास करवाना चाहते हैं! इनके खुद के जीवन में कोई आध्यात्मिक गुण हैं? और ये पंडित-पुरोहित भी इसी बकवास में लगे हैं कि लोग कहीं भौतिकवादी न हो जाएं। और इस देश को बड़ी से बड़ी जरूरत इस बात की है कि यह भौतिकवादी हो।
मेरे हिसाब में भौतिकवाद में और अध्यात्म में कोई विरोध नहीं है। भौतिकवाद आधारशिला है अध्यात्म की। तभी एतरेय ब्राह्मण का यह सूत्र सत्य हो सकता है, अगर भौतिकवाद अध्यात्म की आधारशिला बने तो ही। अगर भौतिकवाद और अध्यात्म में विरोध रहे तो यह सूत्र पूरा नहीं हो सकता।
और यही, मधुसूदन मिश्र, उपद्रव हुआ। धर्मगुरु भौतिकवाद का विरोध करता रहा। और भौतिकवाद ही पेट भर सकता है, अध्यात्मवाद पेट नहीं भर सकता। वह अध्यात्मवाद की सामर्थ्य नहीं है। वह तुम्हें आत्मा के जगत में प्रवेश दिला सकता है। लेकिन जब तक पेट न भरा हो तब तक आत्मा के जगत में प्रवेश करने योग्य शक्ति भी कहां? सामर्थ्य भी कहां? पैर ही डगमगा जाएंगे उस अनंत की यात्रा पर। भूखे भजन न होहिं गोपाला। भजन भी नहीं हो सकता, भगवान से मिलना तो बहुत दूर, भगवान हो जाना तो बहुत दूर, भगवत्ता का अनुभव तो असंभव। तो पंडितों ने, पुजारियों ने, राजनेताओं ने यह शड्यंत्र रचा हुआ है। महामंडलेश्वर स्वामी सुमित्रानंद सरस्वती, गोवर्धनपुरी, यहां मौजूद हैं। उन्होंने पूछा है--
हिंदू धर्म दुनिया का सबसे पुराना धर्म है। उसकी धारा गंगा की भांति अखंड और पवित्र है। हिंदू धर्म की छाती बड़ी है। अपनी परम उदारता के ही कारण हिंदू धर्म ने अपने विरोधी जैन धर्म, बुद्ध धर्म और चार्वाकी धर्मों को भी बड़ी सरलता से अपने में समा लिया है। आप और आपके संन्यासी हिंदू धर्म का चाहे जितना विरोध करें, अंततः हिंदू धर्म की इस सनातन धारा में सरलता से खो जाएंगे। क्या यह धर्म और मानवता के हित में न होगा कि आप और आपके संन्यासी सारा विरोध त्याग कर हिंदू धर्म की सेवा में लगें और हिंदू धर्म को नया जीवन, नये आयाम, नये विस्तार दें?
इन महामंडलेश्वर की बुद्धि पर थोड़ा विचार करो। पहली तो बात कहते हैंः "हिंदू धर्म दुनिया का सबसे पुराना धर्म है।"
इसमें क्या गौरव है? मूढ़ता दुनिया में बहुत पुरानी है। अज्ञान बहुत पुराना है, हिंदू धर्म से भी पुराना है। पाप बहुत पुराना है। लोगों की

नींद बहुत पुरानी है। पुराने होने से किसी चीज की कोई महत्ता होती है? पुराना होना ही क्या पर्याप्त है किसी चीज के महत्वपूर्ण होने के लिए? सच तो यह है कि जितना पुराना उतना ही सड़ा, जितना पुराना उतना ही मुर्दा, जितना पुराना उतना ही खंडहर और जराजीर्ण।
और फिर यह दावा भी जरूरी नहीं है कि सच हो, क्योंकि जैनों का दावा है
कि उनका धर्म सबसे ज्यादा पुराना है। और उनके दावे के भी आधार हैं। ऋग्वेद में जैनों के प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख है। ऋग्वेद के आधार पर ही हिंदू कहते हैं कि हिंदू धर्म सबसे पुराना है, क्योंकि हमारा ऋग्वेद सबसे पुराना है। लेकिन ऋग्वेद में जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव का बहुत सम्मान से उल्लेख है। इससे दो बातें तय होती हैं कि ऋग्वेद के समय जैन धर्म प्रतिष्ठित था। ऋग्वेद जितना पुराना है जैन धर्म उतना पुराना है, इतना तो निश्चित ही है; थोड़ा ज्यादा पुराना हो सकता है। क्योंकि जैसा लोगों का रिवाज है, जिंदा आदमी को आदर देना लोगों की आदत नहीं। अगर ऋषभदेव जिंदा थे तो गालियां मिली होंगी, आदर नहीं मिल सकता था। ऋषभदेव को मरे हजारों साल हो जाने चाहिए, तभी ऋग्वेद में समादर से उल्लेख हो सकता है, नहीं तो समादर से उल्लेख नहीं हो सकता। समादर से उल्लेख होने के लिए समय का अंतराल होना चाहिए।
संभावना इस बात की है कि जैन धर्म हिंदू धर्म से ज्यादा पुराना है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई ने भी यह सिद्ध किया है। क्योंकि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में ऐसी मूर्तियां मिली हैं जो नग्न हैं। वे नग्न मूर्तियां इस बात की प्रतीक हैं। उनका ढंग, उनकी शैली वही है जो महावीर की प्रतिमाओं की है, जो जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की है। इस बात की संभावना है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैन धर्म से आच्छादित थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में हिंदू धर्म की कोई भी संभावना का सूत्र अब तक नहीं मिला है। हिंदू धर्म उतना पुराना नहीं है जितना मोहनजोदड़ो और हड़प्पा। लेकिन जैन धर्म के प्रतीक मिले हैं। स्वास्तिक का प्रतीक मिला है; वह जैन धर्म का प्रतीक है। और नग्न प्रतिमाएं मिली हैं जो ठीक जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं से मेल खाती हैं।
लेकिन पुराने होने से क्या होता है? मोहनजोदड़ो अच्छा शब्द है; इसका मतलब होता है--मुर्दों का ढेर। मुर्दों का ढेर है जितना पुराना कोई धर्म हो।
जीवन सदा नया है। जीवन प्रतिपल नया है, नितनूतन है। इतना नया है जैसे सुबह की ओस। इतना ताजा है जैसे सूरज की पहली-पहली किरण। इतना युवा है जैसे अभी-अभी खिला हुआ गुलाब का फूल।
मुझे, महामंडलेश्वर स्वामी सुमित्रानंद सरस्वती, हिंदू धर्म को पुराना कह कर तुम प्रभावित न कर सकोगे। पुराने में मैं कोई गरिमा नहीं देखता। पुराने का मतलब ही यह होता है कि अब वह समय के बाहर हो चुका, जमाना जा चुका, उसका समय व्यतीत हो चुका। अब तुम लाश को ढोए फिरो, यह और बात है। लेकिन लाश बदबू दे रही है। तुम्हारी सारी धारणाएं तुम्हारी गुलामी, तुम्हारी दीनता, तुम्हारी दरिद्रता का कारण हैं।
मधुसूदन मिश्र, इस तरह के महामंडलेश्वर कारण हैं, जिन्होंने एतरेय ब्राह्मण के उस अदभुत सूत्र को नष्ट कर दिया।
महामंडलेश्वर कहते हैंः "उसकी धारा गंगा की भांति अखंड और पवित्र है।"
किसने कहा कि गंगा की धारा पवित्र है? गंगा से ज्यादा अपवित्र इस पृथ्वी पर दूसरी कोई नदी नहीं है। मुर्दे फेंको, अधजले मुर्दे फेंको, मुर्दे तैरते हैं। वैज्ञानिकों ने खोजबीन की है और पाया है कि गंगा अत्यधिक अपवित्र है। और यूं भी, अगर हिंदू कहते हैं उसमें कुछ सचाई है कि गंगा में नहाने से पाप धुल जाते हैं, तुम्हारे धुल जाते होंगे, गंगा का क्या होता है? धुल कर कहां जाएंगे? गंगा में ही तैरेंगे। सदियों से हिंदू अपने पाप गंगा में धोते रहे। करोड़ों-अरबों लोगों ने पाप धोए, गंगा की तो दुर्गति हो गई होगी। गंगा की भी तो कुछ सोचो। किस आधार पर तुम कहते हो कि गंगा जैसा पवित्र? गंगा जैसा ही अपवित्र है।
और तुम कहते होः "हिंदू धर्म की छाती बड़ी है।"

गलती में हो। हिंदू धर्म की छाती बिल्कुल बड़ी नहीं है। यह वहम, यह अहंकार छोड़ दो। कौन कहता है कि तुम बौद्ध धर्म को पचा पाए? हिंदुओं ने बौद्ध भिक्षुओं को जलाया जिंदा, बौद्ध मठों को बर्बाद किया, बौद्ध मंदिर गिराए, बौद्ध मंदिरों पर कब्जा करके बैठ गए। बोधगया का मंदिर अब भी हिंदू ब्राह्मण के कब्जे में है। मंदिर बुद्ध का, लेकिन महंत हिंदू ब्राह्मण। और हिंदुस्तान से बौद्ध धर्म तिरोहित कैसे हुआ, अगर तुम्हारी छाती बड़ी है? यह बुद्ध ने जो बिरवा रोपा था इस देश में क्रांति का, अदभुत, यह कैसे तिरोहित हुआ? सारा एशिया बौद्ध हो गया, सिर्फ हिंदुस्तान से बौद्ध समाप्त हो गए। सिर्फ हिंदू बौद्ध धर्म से वंचित रह गए। छाती बड़ी? यह किसने तुम्हें वहम दे दिया? किसी गलत दर्पण के सामने खड़े होओगे। दर्पण होते न, जिसमें आदमी की छाती बड़ी दिखाई पड़ती है। होती तो नहीं, मगर बड़ी दिखाई पड़ती है।
तुम्हारे शंकराचार्यों ने क्या किया फिर, अगर तुम्हारी छाती बड़ी थी?
तो बुद्ध को स्वीकार क्यों नहीं किया? बुद्ध का खंडन क्यों? छाती बड़ी नहीं है।
और शंकराचार्य निपट चोर हैं, क्योंकि जो भी वे कह रहे हैं वह वही है जो बुद्ध ने कहा था। सिर्फ शब्द बदल कर सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं कि यह सब हिंदू शास्त्रों में है। और ऐसा मैं नहीं कहता हूं, रामानुज ने भी कहा है कि शंकर जो हैं प्रच्छन्न बौद्ध हैं। निम्बार्क ने भी कहा कि शंकर प्रच्छन्न बौद्ध हैं, छिपे हुए बौद्ध हैं। लेकिन शंकराचार्य हिंदू धर्म के रक्षक बन कर बैठे हैं।
तुम्हारी छाती बड़ी है, इस भ्रांति को छोड़ दो। बुद्ध के संबंध में तुम्हारे पुराणों में जो कथाएं हैं, वे कहती हैं कि छाती बड़ी नहीं है। तुम्हारी कथाएं कहती हैं कि जब परमात्मा ने स्वर्ग और नर्क बनाए तो दुनिया में कोई पाप ही नहीं करता था। इसलिए नर्क खाली ही पड़ा था। अंततः नर्क के शैतान ने और उसके शिष्यों ने, जो वहां खाली हाथ बैठे थे, कोई न आए, न कोई जाए। रोज बेचारे आग जलाते होंगे, कढ़ाहे चढ़ाते होंगे, और सांझ उतार लेते होंगे। आखिर थक गए, यह भी क्या दुकान कि ग्राहक हैं ही नहीं। उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की। तो परमात्मा ने कहा, फिक्र न करो। अब जब नर्क बनाया है तो नर्क में लोगों को भेजने का उपाय भी मैं करूंगा। मैं बुद्ध के रूप में अवतरित होऊंगा। और उसके बाद फिर कोई अड़चन न रहेगी नर्क में। मैं बुद्ध के रूप में प्रकट होकर लोगों को भ्रष्ट करूंगा। उनको पाप सिखाऊंगा। उनको नर्क की तरफ भेजूंगा।
यह कहानी बड़ी छाती वाले लोगों ने गढ़ी? यह पुराण बड़ी छाती वाले लोगों
ने लिखा? बुद्ध के बाद नर्क में भीड़ है, कतारें लगी हैं! आज मरोगे तो आज ही प्रवेश न पा सकोगे, ख्याल रखना! कई सदियों तक तुम्हें खड़े रहना पड़ेगा कतार में। तब से स्वर्ग में भीड़-भाड़ ही नहीं है, सन्नाटा है।
यह तुमने बुद्ध के नाम सम्मान दिया! और तुमने छाती बड़ी होने की बात कही। लेकिन तुम्हारा कोई शास्त्र महावीर का उल्लेख भी नहीं करता। महावीर जैसा अदभुत व्यक्ति पैदा हो, और हिंदू शास्त्रों में उल्लेख भी नहीं! इस तरफ की उपेक्षा! और छाती तुम्हारी बड़ी है!
यह भ्रांति छोड़ो। तुम्हारी छाती बड़ी इत्यादि कुछ भी नहीं है। किसी धर्म की छाती बड़ी नहीं होती--हो नहीं सकती। क्योंकि धर्म सीमा बनाता है। और धर्म पक्षपात से भरता है। उन्हीं पक्षपातों से तुम भी भरे हुए हो।
तुम कह रहे होः "अपनी परम उदारता के कारण ही हिंदू धर्म ने अपने विरोधी जैन धर्म, बुद्ध धर्म और चार्वाकी धर्मों को भी बड़ी सरलता से अपने में समा लिया है।"
जरा भी नहीं समाया। जैन धर्म आज भी अलग धर्म है। बुद्ध धर्म आज भी अलग धर्म है। तुम क्या खाक बुद्धों को और जैनों को अपनी छाती में समाओगे! तुम अपनों को नहीं समा पा रहे, तुम्हारे शूद्र तुम्हारे भीतर नहीं समा पा रहे, तुम किसी और को क्या समाओगे?
और तुम कहते होः "आप और आपके संन्यासी हिंदू धर्म का चाहे जितना विरोध करें... ।"

मुझे कोई हिंदू धर्म का विरोध करने में रस ही नहीं है। मैं तो समस्त धर्मों का विरोध कर रहा हूं। उसमें हिंदू धर्म भी आ जाता है--प्रसंगवशात। लेकिन मैं तो उन सारी धारणाओं का विरोध कर रहा हूं जिनके आधार पर पुराने धर्म निर्मित रहे हैं। वे धारणाएं हिंदुओं की भी हैं, बौद्धों की भी हैं, जैनों की भी हैं, ईसाइयों की भी हैं, पारसियों की भी हैं, मुसलमानों की भी हैं। मैं तो मूल आधारशिलाओं पर चोट कर रहा हूं। कोई हिंदू धर्म से मुझे लेना-देना नहीं है। इतना महत्वपूर्ण मैं उसे मानता भी नहीं। मैं तो मूल आधार पर चोट कर रहा हूं। और यह चोट जारी रहेगी।
और तुम कहते होः "अंततः हिंदू धर्म की सनातन धारा में आपके संन्यासी
भी सरलता से खो जाएंगे।"
यह भ्रांति छोड़ दो। मेरे संन्यासी किसी धर्म को ही नहीं मानते हैं।
मेरे संन्यासी न तो नास्तिक हैं, न आस्तिक; न हिंदू हैं, न मुसलमान, न ईसाई।
मेरे संन्यासी तो एक नयी तरह की धार्मिकता की शुरुआत हैं। धर्म की शुरुआत नहीं; एक नयी तरह की धार्मिकता की शुरुआत हैं। धार्मिकता बड़ी और बात है। जिनको तुम धार्मिक व्यक्ति मानते हो वे तो धार्मिक होते ही नहीं। हिंदू जो है वह क्या खाक धार्मिक होगा! वह तो विचारधारा से बंधा है। और विचारधारा तो मन का हिस्सा होती है। मुसलमान भी विचार से बंधा है और जैन भी विचार से बंधा है। विचारों के कारण ही तो यह भेद है। और मैं निर्विचार सिखा रहा हूं। अमनी दशा में उतरना है। उस दशा में कहां कौन हिंदू? कहां कौन मुसलमान? कहां कौन ईसाई? उस अवस्था में तो सिर्फ एक सुगंध रह जाती है परमात्मा की।
मेरे संन्यासियों को तुम न पचा सकोगे। मेरे संन्यासी को पचाने का कोई उपाय ही नहीं है।
और तुम कहते हो कि "क्या यह धर्म और मानवता के हित में न होगा कि आप और आपके संन्यासी सारा विरोध त्याग कर हिंदू धर्म की सेवा में लगें और हिंदू धर्म को नया जीवन, नये आयाम, नये विस्तार दें?"
यह धर्म के हित में है जो मैं कर रहा हूं। धर्मों का विरोध धर्म के हित में है, क्योंकि धार्मिकता धर्म की आत्मा है। और धर्म के नाम से जो चलता है वह तो केवल देह मात्र है। देह के पार जाना है, शास्त्र के पार जाना है, तब सत्य मिलता है। मन के पार जाना है, तब कभी आत्मा का साक्षात्कार होता है। समस्त विचारों के पार जो उठ जाता है, वही भगवत्ता को पहचान पाता है।
यही मनुष्यता के हित में है जो मैं कर रहा हूं। और तुम चाहते हो कि हिंदू धर्म की सेवा में लगूं। हिंदू धर्म की सेवा से मनुष्यता का हित होना होता तो मनुष्यता का हित कभी का हो चुका होता। तुम जैसे महामंडलेश्वर और क्या कर रहे हैं? दस हजार सालों से यही बकवास तो तुमने लगा रखी है। मनुष्यता का कोई हित तो हुआ नहीं और न ही कोई धर्म का हित हुआ। अब समय आ गया है कि धर्म और मनुष्यता का हित किया जाए। और उस हित के लिए जिस चीज का भी खंडन करना होगा, जिस चीज का भी विरोध करना होगा, उसका विरोध किया जाएगा। मैं न तो किसी बात की पवित्रता को मानता हूं, न किसी बात की प्राचीनता
को मानता हूं। मेरे अनुभव से, मेरे सत्य से जो चीज मेल खाती है, जरूर मैं उसका समर्थन करता हूं; जैसे एतरेय ब्राह्मण का मैंने समर्थन किया। मगर इस कारण नहीं कि यह हिंदुओं का ग्रंथ है। एतरेय ब्राह्मण में ऐसे वचन हैं जिनका मैंने विरोध किया है--इस कारण नहीं कि वह हिंदू ग्रंथ है। न मेरे विरोध में कोई हिंदुओं से संबंध है, न मेरे समर्थन में। सत्य का समर्थन है; वह कहीं भी हो। मेरी छाती बड़ी है, तुम्हारी छाती बड़ी नहीं है।
अब तुम कहते हो कि हिंदू धर्म की सेवा करें, हिंदू धर्म को नया जीवन...
।
अब जो मर ही गया, उसको नया जीवन कहां से दो? और इंजेक्शन लगा-लगा कर किसी तरह से, और यंत्र लगा-लगा कर किसी तरह से फेफड़ों को चलाए भी रखो, तो क्या फायदा है? जो मर चुका उसे दफनाओ। रामनाम सत्य है। रामनाम जान्यो नहीं! अब तो हिंदू धर्म के लिए एक ही बात है--रामनाम सत्य है! अब इसकी अरथी बनाओ। इसकी अरथी बनाने में मैं, जो भी सेवा चाहिए, राजी हूं।
आज इतना ही।

रामनाम जान्यो नहीं
दसवां प्रवचन

मनुष्य बीज है भगवत्ता का

पहला प्रश्नः ओशो, शतपथ ब्राह्मण में एक प्रश्न हैः को वेद मनुष्यस्य? मनुष्य को कौन जानता है? ओशो, क्या मनुष्य इतना जटिल और रहस्यपूर्ण है कि उसे कोई नहीं जान सकता है?

पुरुषोत्तम महंती, मनुष्य जटिल नहीं है, रहस्यपूर्ण जरूर है। जटिल होता तो जानना कठिन न होता। कितना ही जटिल हो, जटिलता सुलझाई जा सकती है। जटिलता एक पहेली है, जो बुद्धि की सीमा के पार नहीं, बुद्धि की सीमा के भीतर है। जो जटिल था उसे मनुष्य ने सुलझा लिया है, या नहीं सुलझाया है तो सुलझा लेगा। जो कल अज्ञात था, आज ज्ञात है। जो आज अज्ञात है, कल ज्ञात हो जाएगा।
विज्ञान ये दो कोटियां ही मानता है--ज्ञात और अज्ञात। इन दोनों के बीच कोई गुणात्मक भेद नहीं है; थोड़ा समय का अंतराल है। अज्ञात वह है जो ज्ञात होने में समर्थ है। सिर्फ थोड़ी और चेष्टा, थोड़ी और खोज, थोड़ी और शोध, थोड़ा और तर्क, थोड़ा और विज्ञान। लेकिन रहस्य गुणात्मक रूप से भिन्न है, परिमाणात्मक रूप से ही नहीं। रहस्य का अर्थ अज्ञात नहीं है; रहस्य का अर्थ है अज्ञेय, जो जाना ही न जा सके; जो बुद्धि की सीमा के पार है; जिसे जीया तो जा सकता है, लेकिन जाना नहीं जा सकता। जानने का अर्थ होता है--शब्द में ढाला जा सके, तर्क में तौला जा सके, बुद्धि माप सके। रहस्य का अर्थ होता है--अमाप; जिसको जानने का, तौलने का कोई उपाय नहीं, लेकिन जो है; लेकिन अनंत है, असीम है। जितना जानोगे उतना ही पाओगे कि जानना मुश्किल है। जितना पहचानोगे उतना ही पाओगे पहचानने को बहुत और शेष है, सदा शेष है।
सुकरात का वचन प्रीतिकर है। सुकरात कहता हैः मैं एक ही बात जान पाया
कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं! उपनिषद कहते हैंः जो जानता है वह नहीं जानता। जो नहीं जानता है, वही जानता है। यह भी उपनिषद कहते हैं कि अज्ञानी तो अंधकार में भटक जाते हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। यह वचन बहुत आग्नेय है, बहुत क्रांतिकारी है। इसकी चिनगारी भी तुम्हारे भीतर पड़ जाए तो तुम्हारे जीवन के जंगल में आग लग जाए। सब कूड़ा-कर्कट जल जाए। फिर वही बचे जो खालिस सोना है।
तुम पूछते होः "क्या मनुष्य इतना जटिल और रहस्यपूर्ण है कि उसे कोई नहीं जान सकता?"
तुम जटिलता और रहस्य को पर्यायवाची समझ रहे हो। वे पर्यायवाची नहीं हैं। जटिलता तो सिर्फ एक चुनौती है बुद्धि के लिए। रहस्य बड़ी गहरी बात है। बुद्धि तो सतही है। रहस्य को जानना हो तो जानने का ढंग काम नहीं आता। वहां तो सुकरात जैसा अज्ञानी हो जाना पड़े।
जीसस ने कहा हैः जो बच्चों की भांति निर्दोष होंगे, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।
वहां ज्ञानी की बिसात नहीं। वहां जानने वाले के लिए कोई प्रवेश नहीं; वहां निर्दोष, सरल-चित्तता, इतनी सरल-चित्तता जैसे कोरा कागज! जब तुम कोरे कागज की भांति हो जाते हो, तो परिचय होता है, प्रत्यभिज्ञा होती है, तो स्वाद आता है, तो रस बहता है, तो जीवन में उत्सव सधता है।
और शतपथ ब्राह्मण का यह सूत्र ठीक कहता हैः "को वेद मनुष्यस्य?"
मनुष्य को कौन जानता है? कौन सा वेद है जो मनुष्य को जानता है? कौन सा ज्ञान है जो मनुष्य को जानता है? कौन सा सिद्धांत है जो मनुष्य को जानता है? कौन सा धर्म है जो दावा कर सके मनुष्य को जानने का? और मनुष्य को ही क्यों चुना है? क्योंकि मनुष्य पराकाष्ठा है जीवन के रहस्य की। यूं तो सारा जीवन रहस्यपूर्ण है। यूं तो एक गुलाब के फूल को भी जानना कहां संभव है!
अंग्रेजी के महाकवि टेनीसन ने कहा है... एक सुबह घूमते हुए, पत्थर की
एक दीवाल में घास का एक पौधा वर्षा के दिनों में ऊग आया है, और उस पर एक

छोटा सा घास का फूल खिला है। सुबह की ताजी हवा, सूरज की ऊगती हुई नयी-नयी किरणें, पक्षियों के गीत और पत्थर को तोड़ कर ऊग आए इस घास के पौधे का राज! नहीं कि सिर्फ पौधा ऊग आया है, वरन फूला भी है। टेनीसन ठिठक कर खड़ा हो गया। और टेनीसन ने जो वचन कहा... कहा कि काश! मैं इस घास के फूल को पूरा का पूरा जान लूं, जड़ से लेकर शिखर तक, तो मैं सारे अस्तित्व को जान लूंगा। फिर कुछ और जानने को शेष न रह जाएगा।
घास का एक छोटा सा फूल भी पूरा-पूरा नहीं जाना जा सकता है, कुछ छूट ही जाता है। जो छूट जाता है वही राज है। जो छूट जाता है वही रहस्य है। जो पकड़ में आ जाता है, दो कौड़ी का है। जो पकड़ में नहीं आता वही प्राण है।
घास का फूल अगर इतना रहस्यपूर्ण हो तो फिर गुलाब की तो क्या बात है! फिर झील में खिल आए कमल को तो समझना बहुत मुश्किल होगा। और यह जो चेतना का सहस्रदल कमल है, यह जो मनुष्य के भीतर छिपा हुआ सहस्रार है, यह जो मनुष्य की चेतना का फूल है, यह तो इस पृथ्वी पर, इस सारे अस्तित्व में अनूठा है, अद्वितीय है। पदार्थ में खिले फूलों को भी नहीं जाना जा सकता तो चेतना के फूल को तो कैसे जाना जा सकेगा?
"को वेद मनुष्यस्य?"
कौन जानता है मनुष्य को? कौन सा वेद जानता है? कौन सा शास्त्र जानता है? कौन सी किताब है जो मनुष्य के राज को खोल सकी है?
सारे शास्त्रों ने, सारी किताबों ने, सारे ज्ञानियों ने, सारे प्रबुद्ध पुरुषों ने मनुष्य के रहस्य की तरफ ही इशारा किया है। यही कहा हैः चुप हो जाओ तो शायद कुछ पहचान हो; खोजो मत, ठहर जाओ, तो शायद कुछ झलक मिले। मन का उपयोग न करो, क्योंकि मन की सीमा है और यह चेतना असीम है। सीमित साधन का उपयोग करोगे तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। साधन ही बाधा बन जाएगा।
मनुष्य को पहचानना हो तो मन से गहरे जाना होगा। मनुष्य शरीर नहीं है,
मन भी नहीं है; इन दोनों के पीछे छिपा हुआ चैतन्य है, साक्षी है। जो मन के पार है, उसे जानने की भाषा में नहीं जाना जा सकता। उसे तो प्रेम की भाषा में पीया जा सकता है।
और मन के पार हो जाने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। इसलिए जिसे ध्यान में प्रवेश करना है उसे सारे शास्त्रों को अग्नि को समर्पित कर देना होता है। वही एक यज्ञ करने जैसा है। वही एक हवन धार्मिक व्यक्ति के योग्य है। खाक कर दे सारे शब्दों को, चाहे वे कितने ही सुंदर हों, कितने ही प्यारे लोगों ने कहे हों, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। क्योंकि शब्द तो मन तक ही जाएंगे। उनकी दौड़ उसके आगे नहीं। जहां निःशब्द शुरू होता है, वहीं मनुष्य की असली सत्ता का प्रारंभ है। जहां विचार गिर जाते हैं और निर्विचार का आयाम खुलता है, वहीं मनुष्य की चेतना में पहली दफे तुम्हारा प्रवेश होता है। जहां तक मन वहां तक तुम नहीं। जहां अ-मन आया वहीं तुम हो। फिर स्वभावतः इस रहस्य को कोई और नहीं जी सकता है। प्रत्येक व्यक्ति
को अपना रहस्य स्वयं जानना होगा। इसलिए यह शतपथ ब्राह्मण ठीक ही कहता है-- "को वेद मनुष्यस्य? मनुष्य को कौन जानता है?"
तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें कोई भी नहीं जान सकता है। और तुम भी तभी जान सकोगे जब अतिक्रमण कर जाओ देह, मन का। जब इन दोनों की सीढ़ियों पर चढ़ जाओ तो मंदिर में प्रवेश हो। केवल तुम्हारे और कोई तुम्हें नहीं जान सकता। और तुम्हारा भी जानना जानना नहीं कहा जा सकता, जीना ही कहा जा सकता है। जानने में फासला होता है। जिसे तुम जानते हो वह और, जो जानता है वह और। जानने में द्वैत होता है--अनिवार्य, बिना द्वैत के जानना सधेगा नहीं। वहां जिसको तुम जान रहे हो, ज्ञेय; जो जान रहा है, ज्ञाता--इन दोनों के बीच के संबंध का नाम ही ज्ञान है। लेकिन स्वयं को जानने में तो द्वैत नहीं हो सकता। वहां तो जानने वाला और जाना जाने वाला एक है। इसलिए जानने की भाषा वहां काम नहीं आएगी। जीने की भाषा काम आएगी। जीना ही वहां जानना है, जीना ही वहां पहचानना है।
और तुम्हारे जीवन को सब तरह से अवरुद्ध कर दिया गया है। जीवन की इतनी निंदा की गई है और शास्त्रों की इतनी प्रशंसा की गई है। शब्दों को सिर पर ढोओ और अपनी निंदा और ग्लानि के बोझ से दबे रहो--यही सिखाया गया है सदियों

से। जब कि यह स्वयं से परिचित होने का मार्ग नहीं है; स्वयं से अपरिचित रह जाने की विधि है।
लेकिन सत्ताधारी यही चाहते हैं कि तुम अपने को न जान पाओ, तुम अपने को
न पहचान पाओ, तुम अपने को न जी पाओ, ताकि तुम्हें गुलाम बनाया जा सके। और गुलामियों के बहुत नाम हैं। धर्मों के नाम पर गुलामी है; राष्ट्रों के नाम पर गुलामी है; सिद्धांतों के नाम पर गुलामी है। गुलामी के इतने ढंग हैं, इतने रूप हैं, जंजीरें ऐसे-ऐसे सुंदर रंगों में सोने और चांदी से मढ़ी हुई हैं कि लगता है आभूषण हैं। लोग भूल ही गए हैं कि चाहे सोने से ही मढ़ी क्यों न हो जंजीर, चाहे बेड़ियां हीरे-जवाहरातों से क्यों न टंकी पड़ी हों, बेड़ियां बेड़ियां हैं, हथकड़ियां हथकड़ियां हैं। और कारागृह चाहे संगमरमर से ही क्यों न बनाया गया हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता, कारागृह कारागृह है। वह खुला आकाश नहीं है। उसमें आकाश के न चांद हैं, न सूरज हैं, न तारे हैं, न आकाश में उड़ने की संभावना है।
तुम सब पिंजड़ों में बंद हो और खुले आकाश में उड़ता हुआ पक्षी--बात और। वही पक्षी पिंजड़े में बंद हो जाए तो बात और। खुले आकाश में उड़ते हुए उसके पंखों का जादू, उसकी स्वच्छंदता, उसकी मुक्ति, और सारा आकाश उसका अपना, चांद-तारे उसके, सूरज उसका, वृक्ष उसके, फूल उसके। आकाश में उड़ते हुए बादलों को पार करने का आनंद उसका। दूर-दूर के सितारों को लक्ष्य बना लेने की मौज उसकी। और फिर इस मौज से उठता हुआ गीत, खुलते हुए पंख, खुलता हुआ कंठ भी।
वही पक्षी तुम बंद कर लो सोने के पिंजड़े में सही, सारी सुविधाएं जुटा दो, भोजन की चिंता न रहे उसे, लेकिन फिर भी यह पक्षी वही नहीं है जिसे तुमने आकाश में पंखों को तौलते देखा था। यह पक्षी वही नहीं है जो बादलों को पार करता हुआ देखा गया था। यह पक्षी वही नहीं है जिसने सुबह-सुबह सूरज का स्वागत किया था और गीत गाए थे। यह पक्षी वही नहीं है जो सांझ अपने आनंद से अपने नीड़ में वापस लौटता था। यह चहल-पहल वही नहीं है। यह पक्षी मर गया, नाम-मात्र को जिंदा है।
यूं ही हिंदू हैं, यूं ही मुसलमान हैं, यूं ही ईसाई हैं, यूं ही जैन हैं। ये सब पिंजड़ों में बंद लोग हैं। इनमें से कोई भी मनुष्य की चेतना को नहीं जान सकता। इन सबके सिद्धांत हैं। और जो सिद्धांतों को पकड़ कर चलता है, मन के पार कैसे जाएगा? उसके सिद्धांत ही उसे अटका लेंगे। उसके सिद्धांत ही उसके पैरों को खींच लेंगे, उसके पंखों को काट देंगे। वह अपने सिद्धांतों को सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न रहेगा। उसकी आतुरता सत्य के लिए नहीं है, उसकी आतुरता एक है कि मेरा सिद्धांत सत्य सिद्ध होना चाहिए।
सत्य का अन्वेषण सिद्धांतों को छोड़ कर ही हो सकता है। जब तुम्हारी आंखों पर सिद्धांत लदे हों तो तुम कैसे सत्य को देख पाओगे? और सारे लोग सिद्धांतों से भरे हुए हैं। उनकी आंखें सिद्धांतों ने अंधी कर दी हैं। वे वही देख पाते हैं जो उनके सिद्धांत उन्हें आज्ञा देते हैं।
सत्ताधिकारी चाहे धार्मिक हों, चाहे राजनैतिक हों, उनकी आकांक्षा नहीं है कि तुम सत्य को जान लो। क्योंकि जो सत्य को जान लेगा उसे गुलाम नहीं बनाया जा सकता। जो सत्य को जान लेगा, फिर उसे इन टुच्ची और क्षुद्र सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। वह न तो भारतीय होगा, न चीनी होगा, न जापानी होगा। वह न काला होगा, न गोरा होगा। जिसने सत्य को जाना वस्तुतः वह न स्त्री होगा, न पुरुष होगा। वह सिर्फ शुद्ध चैतन्य होगा। वहां कोई कोटियां काम न आएंगी। वहां विभाजन नहीं हो सकता।
और विभाजन सत्ताधिकारी का सूत्र हैः बांटो और राज्य करो। पुरोहित वही करता है, राजनेता वही करता है। बांटो, लोग बंटे रहें, लोग आपस में लड़ते रहें, यही सत्ताधिकारी का बल है। और लोग अंधे रहें तो ही तो नेताओं की कीमत है। तो ही धर्मगुरुओं की जरूरत है। आंख तुम्हारी खुल जाए तो फिर बहुत मुश्किल हो जाती है। आंख खुल गई तो फिर किसी नेता की तुम्हें कोई जरूरत नहीं है। तुम अपने मार्ग-द्रष्टा हो। तुम अपने प्रकाश स्वयं हो। तुम्हारी भीतर की ज्योति जल उठी।

मनुष्य को जटिल मत समझना। मनुष्य बहुत सरल है। लेकिन जितना सरल है उतना ही रहस्यपूर्ण है। जटिलता को समझना आसान है, क्योंकि जटिलता को बांटा जा सकता है, काटा जा सकता है, विभाजित किया जा सकता है। सरलता को जानना असंभव है, क्योंकि उसका कोई विश्लेषण नहीं हो सकता।

यूं समझो, वैज्ञानिक से अगर पूछो कि पानी क्या है? तो वह जवाब देगा कि उदजन और अक्षजन का जोड़ है--एच टू ओ। दो हिस्सा उदजन, एक हिस्सा अक्षजन; बस इन तीन हिस्सों से मिल कर पानी बन जाता है। उससे पूछो, उदजन क्या है? तो भी वह जवाब देने में समर्थ है कि उदजन कितने इलेक्ट्रान, कितने न्यूट्रान और प्रोटान से बनती है। लेकिन उससे अगर तुम पूछो कि इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान क्या हैं? तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। क्योंकि उनका विभाजन नहीं हो सकता। इलेक्ट्रान का कोई विभाजन नहीं हो सकता। पानी को विभाजित किया जा सकता है, इसलिए उत्तर दिया जा सकता है कि यह दो का जोड़ है। लेकिन इलेक्ट्रान का कोई विभाजन संभव नहीं है--अविभाज्य है, सरल है; उसमें द्वैत नहीं है, दुविधा नहीं है; एक है। क्या उत्तर दो! इलेक्ट्रान इलेक्ट्रान है। इसलिए वैज्ञानिक के पास कोई उत्तर नहीं है। वहां जाकर सब उत्तर गिर जाते हैं।
पदार्थ की दुनिया में जब यह घटता है तो चेतना की दुनिया में तुम सोच सकते हो, और भी अनंत गुने रूप में यह घटना घटती है। चेतना तो बिल्कुल सरल है, बिल्कुल अविभाज्य है। यह हो सकता है कभी इलेक्ट्रान का भी विभाजन हो सके, तब उत्तर हो जाएगा। लेकिन उत्तर केवल प्रश्न को थोड़ा और आगे सरका देगा। जिनसे इलेक्ट्रान बना होगा उन पर प्रश्न चला जाएगा। बात बनेगी भी और बनेगी भी नहीं। विज्ञान प्रश्नों को पीछे सरकाता जाता है, लेकिन अंततः एक जगह आकर तो रुक ही जाना पड़ता है। वह चेतना है।
चेतना को न विभाजित किया जा सकता, न विज्ञान के दूरदर्शक यंत्रों से देखा जा सकता, न सूक्ष्मदर्शक यंत्रों से देखा जा सकता, न विज्ञान के तराजुओं के पास ऐसे कोई मापदंड हैं जिन पर तौला जा सके। इसलिए विज्ञान तो इनकार ही कर देता है कि चेतना है ही नहीं। यह झंझट से बचने के लिए। क्योंकि अगर चेतना है तो विज्ञान को उत्तर देना होगा। और उत्तर नहीं है पास। और कोई अपने अज्ञान को मानने को राजी नहीं है। अहंकार मानने नहीं देता अज्ञान को। इसलिए यही उचित है कि जो हल न होता हो, कह दो कि है ही नहीं। लेकिन ध्यान में चेतना का साक्षात्कार होता है। इनकार तो किया नहीं
जा सकता। निरपवाद रूप से जब भी किसी व्यक्ति ने मन के पार छलांग लगाई है और ध्यान को जन्म दिया है, उसने जाना है चेतना को। इस एक सत्य के संबंध में कोई प्रबुद्ध पुरुष किसी दूसरे से भिन्न नहीं है। यह एक ही तत्व है जिसके संबंध में सारे प्रबुद्ध पुरुष राजी हैं, सहमत हैं।
लेकिन जानना होगा स्वयं ही, खुद ही। तुम्हारे भीतर ही यह रहस्य है। तुम्हें उस गहराई में अपने भीतर डूबना होगा जहां इस रहस्य से तुम्हारा तालमेल हो जाए, जहां संगीत बज उठे, जहां एक हाथ की ताली बजे, जहां अद्वैत का बोध हो।
शतपथ ब्राह्मण ठीक ही कहता हैः "को वेद मनुष्यस्य? कौन जान सका मनुष्य को?"
नहीं कोई दूसरा कभी जान सका। और जब तक मनुष्य भी मनुष्य ही है... मनुष्य शब्द को सोचना, विचारना--मन से बना है। जिसके पास मन है वह मनुष्य। इसलिए मनुष्य भी जब तक मनुष्य है, इसे न जान सकेगा। मनुष्य से थोड़ा पार जाना होगा। मन के पार जाओगे तो मनुष्य के पार चले जाओगे। वही भगवत्ता का लोक है।
मेरे लिए कोई भगवान नहीं है अस्तित्व में, भगवत्ता है। प्रत्येक मनुष्य बीज है भगवत्ता का। मनुष्यता पीछे छूट जाए तो भगवत्ता का फूल खिल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति छिपा हुआ भगवान है। नहीं जानता, नहीं पहचानता-- यह और बात है। और यही उसका रहस्य है।
भगवत्ता है रहस्य मनुष्यता का। और जब तक तुम भगवत्ता से परिचित न हो जाओ, तब तक नहीं अपने को जान सकोगे, नहीं पहचान सकोगे। शास्त्रों को दोहराते रहो तोतों की तरह, प्यारे वचन हैं, सुंदर शब्द हैं, मधुर काव्य है,

सब है, मगर मुर्दा है। जीवंत तो तभी होगा जब स्वयं की प्रतीति होगी। और वह तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।
लेकिन अपने भीतर जाना होगा। मंदिरों में जाने से नहीं होगा, मस्जिदों में जाने से नहीं होगा, चर्चों और गुरुद्वारों में वह नहीं मिलेगा। वह तुम्हारे भीतर विराजमान है। ठहरो, आंख बंद करो, अपने भीतर डूबो। जब सब ठहर जाएगा तुम्हारे भीतर, कोई हलन-चलन न होगी, कोई विकल्प न होगा, निर्विकल्पता होगी--तत्क्षण जैसे सूर्य ऊग आए, सुबह हो जाए, और तुम्हारे प्राणों की वीणा भी बज उठेगी! तुम्हारे गीत भी मुखर हो उठेंगे। तब तुम जानोगे। मगर गूंगे का गुड़ ही रहेगा जानना। जान लोगे, लेकिन कह न सकोगे। जीने लगोगे, मगर अभिव्यक्ति न दे सकोगे।
इसलिए सदगुरु सत्य नहीं दे सकता, लेकिन उसके जीने की आभा, उसकी मौजूदगी का प्रसाद, उसकी उपस्थिति निश्चित ही, तुम्हारे भीतर जो सोया है, उसे सुगबुगा सकती है। तुम्हारे भीतर जो जागा नहीं सदियों से, शायद करवट ले ले। तुम्हारे भीतर जो मूर्च्छा है वह उसके जागरण की चोट से टूट सकती है। और तुम्हारा बुझा दीया उसके जले दीये के करीब आ जाए... । और यही सत्संग का अर्थ हैः जले दीये के करीब बुझे दीये का आ जाना। यही गुरु और शिष्य का संबंध और नाता है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है--जले हुए दीये के करीब बुझे हुए दीये का आ जाना। और एक घड़ी ऐसी है, एक स्थान ऐसा है, जहां जले दीये से ज्योति एक क्षण में बुझे दीये में प्रवेश कर जाती है। और इसका गणित बड़ा अनूठा है। बुझे दीये को सब कुछ मिल जाता है और जले दीये का कुछ भी खोता नहीं है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप कितनी करुणावश बोल रहे हैं! उसे इस देश के लोग नहीं समझते और क्रुद्ध होते हैं। क्या आप इतना जोखिम लिए बगैर अपना कार्य नहीं संपन्न कर सकते? आप फूल से भी अधिक कोमल हैं। हम आपके प्रेम में पड़ गए हैं। आप ही हमारे जीवन-आधार हैं। मुझे भय लग रहा है।

भय की तो जरा भी जरूरत नहीं। क्योंकि जो है उसे मिटाया नहीं जा सकता
और जो नहीं है वह मिटेगा ही। मनुष्य दोनों का जोड़ है--मर्त्य का और अमृत का। मर्त्य तो जाएगा ही, देर-अबेर, ऐसे या ऐसे। मर्त्य को तो विदा होना ही होगा। इसलिए उसके लिए तो भय का कोई कारण ही नहीं। और अमृत सदा है। उसके लिए भी भय का कोई कारण नहीं। अभय होओ! जो मिटना है उससे कोई लगाव न लगाओ। मेरे फूल से बहुत लगाव न लगाओ। मेरी सुगंध को ही पहचानो; वह नहीं मिटेगी।
तुम कहते होः "आप कितनी करुणावश बोल रहे हैं! उसे इस देश के लोग नहीं समझते, क्रुद्ध होते हैं।"
यही सनातन रीति है। यही लोगों का सदा का ढंग है।
न उनकी रीत नयी, न अपनी प्रीत नयी।
न उनकी हार नयी, न अपनी जीत नयी।।
यूं ही होता रहा है। वे भी मजबूर हैं, मैं भी मजबूर हूं। मैं वही कह सकता हूं जो है और वे वही कर सकते हैं जो मूर्च्छा में संभव है। वे क्रुद्ध ही हो सकते हैं। मूर्च्छा में और क्या करेंगे? उनकी समझ जैसी है, जहां है, उसके अनुसार ही तो वर्तन होगा। काश! वे मुझे समझ सकें तो उनके जीवन में क्रांति हो जाए। जो समझ रहे हैं उनके जीवन में क्रांति हो रही है।
लेकिन यह आशा रखना उचित नहीं कि सभी लोग समझ पाएंगे। प्रयास यही होगा
कि सभी समझ पाएं, फिर भी यह आशा रखना उचित नहीं कि सभी समझ पाएंगे। यह उनकी स्वतंत्रता भी है। न समझना चाहें तो उन्हें पूरा हक है न समझने का। सत्य को न लेना चाहें तो कोई जबरदस्ती तो नहीं की जा सकती। क्रोध करके वे यही कह रहे हैं।
क्रोध दो बात का सूचक है। एक तो कि वे डगमगाए, कि वे घबड़ाए, कि अपना असत्य किसी अचेतन तल पर उनको पहचान आने लगा। नहीं तो क्रोध पैदा होने का कोई कारण नहीं। क्रोध पैदा ही तब होता है जब सत्य की चोट तुम्हारे भीतर, असत्य के तुमने जो ताश के महल बना रखे हैं, उनको थरथराने लगती है। जब सत्य की हवाएं तुम्हारी कागज की नावों को डुबाने को तत्पर हो जाती हैं तो क्रोध

पैदा होता है। क्रोध वस्तुतः सूचना है इस बात की कि किसी अचेतन तल पर सत्य को स्वीकृति दी जा रही है। नहीं तो क्रोध पैदा नहीं होता है।
और यह भी ध्यान रखना, लोग करुणा को कभी भी क्षमा नहीं कर पाते। यह कठिन काम है--करुणा को क्षमा करना। इसलिए कठिन काम है कि करुणा का अर्थ ही यह होता है कि कोई तुम्हें दे रहा है कुछ और तुमसे प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं चाहता है। ख्याल रखना, दुनिया में देना कठिन नहीं है, लेना बहुत कठिन है। क्योंकि लेने में अपमान होता है। देने में तो कोई अड़चन नहीं। देने में तो आनंद है, देने में तो मौज है, देने में प्रेम है।
और कुछ ऐसी चीजें हैं जो बांटने से बढ़ती हैं। सत्य ऐसी ही चीज है, आनंद ऐसी ही चीज है, प्रेम ऐसी ही चीज है--बांटो और बढ़ती है; मत बांटो, रुक जाती है, घट जाती है। कंजूसी करो, और तुम्हारा सत्य मरने लगेगा। जैसे नदी बहती रहे तो जीवित रहती है, और डबरा बन जाए तो सड़ना शुरू हो जाती है। जीवन प्रवाह है। और जो भी जीवंत है उसमें प्रवाह होगा।
तो मेरी भी मजबूरी है। जो मेरे भीतर घटा है उसे मैं बांटने को मजबूर हूं। कुछ किया नहीं जा सकता। जो गीत घटा है वह गाया जाएगा। जो आनंद घटा है वह बरसाया जाएगा। मगर लोगों को भी समझने की कोशिश करो। आनंद भी बरसाओ, वे भीगने से डरते हैं, वे छाता खोल लेते हैं। प्रेम दो, वे अपने द्वार बंद कर लेते हैं। क्योंकि लेने में अहंकार को चोट लगती है। मैं, और लूं? असंभव! मैं कोई भिखारी हूं?
और सत्य को लेने में तो और भी चोट पड़ती है। क्योंकि लोग तो माने ही बैठे हैं कि सत्य उन्हें पता है, अब कोई और क्या देगा? किसी ने गीता में पा लिया है, किसी ने बाइबिल में पा लिया है। किसी ने कुरान में पा लिया है; जब कि किताबों में मिलता ही नहीं। किताबों में यूं हो सकता है कि सूखे फूल मिल जाएं किताबों में दबे। लोग रख भी देते हैं गुलाब इत्यादि को अपने बाइबिल में दबा कर। वह केवल स्मृति है गुलाब की, गुलाब नहीं। गुलाब तो मिलेंगे कहीं खिलते हुए झाड़ियों पर, जीवंत। लेकिन एक खतरा है जीवंत गुलाब के पास जाने में, वहां कांटे भी हैं। ये जो मरे हुए गुलाब के फूल किताबों में दबे मिल जाते हैं, इनमें कांटे नहीं होते। इनमें कोई खतरा भी नहीं होता, इनमें कोई सुगंध भी नहीं होती, इनसे कुछ डर भी नहीं होता। ये तुम्हारी किताब में दबे हुए हैं।
और इन किताबों से तुम जो समझ रहे हो, वह तुम्हारी ही समझ है जो तुम किताबों पर आरोपित कर देते हो। किताबें तो मुर्दा हैं, किताबें क्या करेंगी? तुम जो अर्थ कर लोगे वे तुम्हारे होंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र से कह रहा था, जब कभी मुझे जुकाम होता
है तो मैं एक व्हिस्की की बोतल ले आता हूं और एक घंटे में साफ।
मित्र ने पूछा, कमाल करते हो, यार! जुकाम कहीं एक घंटे में साफ होता है! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, जुकाम नहीं भाई।

आम आदमी का आजकल
बहुत ज्यादा जिक्र है।
जिसे देखिए उसे
आम आदमी की ही फिक्र है।
इससे प्रभावित होकर हमने रिसर्च की-- आदमी को आखिर
आम आदमी क्यों कहा जाता है?
इसमें आखिर आम का क्या गुण आ जाता है? हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे
कि आम आदमी अगर कच्चा हो
तो उसकी चटनी अच्छी बनती है
अचार बन जाता है
और अगर वह पक्का हो
तो उसे चूसने में बड़ा मजा आता है।

नेता भाषण देकर आया

नौकर पर आकर गुर्राया
मैं आया हूं थका-थकाया
पैर दबाओ, राम लुभाया।
राम लुभाया बोला--मालिक
एक जरूरी बात बता दूं
भाषण से तो गला थका है
आप कहें तो गला दबा दूं।

नेताजी, पिताश्री के मुख में आग देने जा ही रहे थे कि फोटोग्राफर दिख गया। तड़ से मुसकान जोड़ दी। फोटो जब धुल कर आया, ऐसा लगा जैसे नेताजी पिताजी के हार-फूल से ढंके चेहरे को देख कर गुनगुना रहे हों--आज मेरे बाप की शादी है!
लोगों की समझ, उनकी अपनी आदतें। फोटोग्राफर दिख जाए नेता को और नेता न मुस्कुराए! एकदम बत्तीसों दांत दिखाई पड़ जाते हैं। कैमरे का जादू ऐसा! फिर बाप मर गया हो, आग ही देने क्यों न जा रहे हों, मगर पुरानी आदत यूं तो नहीं छूट जाती।
लोग वही समझ सकते हैं जो समझ सकते हैं। उन पर क्रुद्ध न होना। उनकी गालियों पर नाराज न होना। उनकी मजबूरी है। सदियों से उन्हें ऐसे पाठ पढ़ाए गए हैं, सारी वर्णमाला उलटी पढ़ाई गई है। और आज जब अचानक उनसे सत्य की बात कहो तो संभवतः उन्हें लगता हैः क्या उलटी बातें कर रहे हो!
यूं है कि सारे आदमी जैसे शीर्षासन कर रहे हों, और कोई एक आदमी अपने पैर के बल खड़ा हो जाए और कहने लगे कि भाइयो, क्यों उलटे खड़े हो? स्वभावतः भीड़ कहेगी, पागल हो, उलटे तुम हो। हम तो सब सीधे खड़े हैं। हमारी भीड़ इस बात का सबूत है! इतने लोग गलत तो नहीं हो सकते। तुम एक अकेले को सत्य मिल गया है?
अंधों के बीच आंख वाले आदमी की मुसीबत हो जानी स्वाभाविक है। नहीं तो क्यों सुकरात को जहर दिया जाए? और कैसे पागल लोग हैं, फिर सदियों तक पूजते हैं। पहले जहर देते हैं, फिर सदियों तक पूजते हैं। जब सुकरात जिंदा है तो उसकी करुणा को क्षमा नहीं कर सकते। और फिर जब उसको जहर देकर मार डालते हैं तो फिर अपने को क्षमा नहीं कर सकते। फिर अपराध-भाव पकड़ता है। उस अपराध-भाव से बचने के लिए फिर सुकरात को सम्मान देना शुरू करते हैं। ऐसी उलटी गणित की व्यवस्था है; मगर इतनी पुरानी है, खून-मांस-मज्जा में समा गई है।
आस्कर वाइल्ड जब न्यूयार्क पहुंचे तो कस्टम वालों ने उनसे पूछा, क्या आपके पास कोई आपत्तिजनक वस्तु भी है?
आस्कर वाइल्ड ने जवाब दिया, जी हां, मेरी अक्ल।
अक्ल बड़ी आपत्तिजनक वस्तु है। यहां लोगों की अक्ल तो पोंछ डाली गई है। उसकी लीपापोती कर दी गई है। इसलिए इनसे अक्ल की बात करना इन्हें अड़चन में डालना है। और जब इनको तुम अड़चन में डालोगे... और इससे बड़ी अड़चन क्या होगी कि किसी आदमी को अपनी जीवन-धारणाएं बदलनी पड़ें! अपने जीवन के सिद्धांत बदलने पड़ें! जिस ढर्रे से वह जीया है, जीवन भर जिस भरोसे से जीया है, सब गलत सिद्ध हो जाए! उसके पैर के नीचे से जमीन खिसक जाती है।
इसलिए, अगेह भारती, मेरी मजबूरी है, मैं बोलूंगा। उनकी मजबूरी है कि
वे नाराज होंगे, क्रुद्ध होंगे, समझेंगे नहीं। मगर इसी तरह मेरी मजबूरी और उनकी मजबूरी के बीच कुछ लोग समझेंगे भी। कुछ लोग समझ भी रहे हैं। ऐसे ही तुम मेरे प्रेम में आ गए हो। इस कशमकश में--मैं अपनी बात कहे जाऊंगा, वे गालियां दिए जाएंगे--मगर कुछ लोग, जिनके पास थोड़ी-बहुत भी बुद्धि शेष रह गई है, जिन्होंने किसी तरह अपनी बुद्धि का कुछ अंश बचा लिया है; पंडित-पुरोहित नहीं पहुंच पाए; महामंडलेश्वर, महंत, संत नहीं पहुंच पाए; स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय नहीं पहुंच पाए; जिन्होंने अपनी थोड़ी सी बुद्धि बचा ली है, वे निश्चित ही इस सारी गाली-गलौज के बीच भी सत्य को देख पाएंगे। इस धुएं के बीच भी उन्हें सूरज की किरण देखने में कठिनाई नहीं पड़ेगी। और हजार लोग गालियां दें और एक भी समझ जाए तो पर्याप्त पुरस्कार है। और क्या चाहिए?

तीसरा प्रश्नः ओशो, आपसे प्रश्न पूछना खतरे से खाली नहीं है। लेकिन
आप आदमी बहुत मजेदार हैं। आपकी बातें सुन कर बड़ा मजा आता है। ऐसे किसी संत-महात्मा को सुन कर कभी नहीं हुआ पहले। एक बात समझ में नहीं आती कि आप अपनी बातों का आधार अक्सर महापुरुषों की निंदा क्यों बना लेते हैं? अच्छा होगा यदि आप अपनी बात विधायक रूप से हमारे सामने रखें।

दीनदयाल खत्री, खत्री हो सो खतरा तुमने मोल लिया। अरे खत्री ही क्या! खत्री बच्चा ही क्या जो खतरा मोल न ले! मगर तुम्हें पता है कि कहीं भी वेदों में, शास्त्रों में, तुम्हारे किसी महापुरुष ने, खत्री कैसे उत्पन्न हुए, इसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा है। शूद्र पैर से पैदा हुए; वैश्य जंघाओं से पैदा हुए ईश्वर की; क्षत्रिय छाती से पैदा हुए, बाहुओं से पैदा हुए; ब्राह्मण, स्वभावतः खोपड़ी से पैदा हुए। मगर खत्री? भगवान क्या कोई मुसलमान है कि कुछ लोगों को खतना करके ही पैदा कर दिया!
अब तुमने खतरा ही ले लिया तो मैं भी क्या करूं? मगर मैं तुम्हें राज बताता हूं कि खत्री कैसे पैदा हुए। तुम्हें चिंता होगी, क्योंकि तुम कहोगे कि मैंने फिर महापुरुषों की निंदा कर दी। अब मैं भी क्या करूं? सत्य को कहना ही पड़ेगा।
एक महापुरुष हो गए--परशुराम। मैं उनको महापुरुष नहीं कहता, मगर अब तुम कहते हो। उन्होंने पृथ्वी को अठारह बार क्षत्रियों से खाली कर दिया। उन्होंने जिंदगी भर एक ही धंधा किया--क्षत्रियों की गर्दन काटते फिरे। वे तो लिए ही फिरे फरसा। नाम तो उनका राम ही था, लेकिन परशुराम इसीलिए कहलाने लगे वे--फरसावाले राम। वे तो जहां दिखे क्षत्रिय, फिर देर न करें। वे पहले सरदार थे--सत श्री अकाल! वाहे गुरुजी की फतह, वाहे गुरुजी का खालसा! देखा क्षत्रिय और किया खतम! फिर देर-अबेर नहीं करते। ऐसा उन्होंने सारी पृथ्वी को अठारह बार, एकाध-दो बार भी नहीं, क्षत्रियों से खाली कर दिया।
सो क्षत्रिय तो खतम कर गए तुम्हारे महापुरुष परशुराम। मगर ऋषि- मुनियों की कृपा! अब तुम कहोगे महापुरुषों की निंदा हो गई, मैं भी क्या करूं? पुरुषों को तो काट डाला परशुराम ने; स्त्रियों को काटने में जरा उनको भी संकोच आया कि मर्द बच्चा होकर स्त्रियों को काटे! सो स्त्रियां बच जाएं। और उन दिनों यह रिवाज था कि कोई भी स्त्री जाकर ऋषि-मुनियों से निवेदन कर सकती थी कि हमें पुत्र-दान दो। और पुत्र-दान वह कुछ ऐसा नहीं था कि भभूत वगैरह देकर पुत्र-दान देते थे--असलियत में देते थे! वही उनका काम था। उसके लिए एक पूरी व्यवस्था थी वैदिक काल में--नियोग। ऋषि-मुनियों का काम वही था जो सांडों का काम है। गऊमाता को जब भी चाहिए पुत्र, ले आए सांड। सांड कर देता नियोग। गऊमाता पुत्रवती हो जाती। सो ऋषि-मुनि बेचारे दया करते रहे--करुणावश। महापुरुष हैं सो निंदा नहीं करता। इधर एक महापुरुष क्षत्रियों को काटते रहे, उधर बहुत से महापुरुष नियोग करते रहे। ऐसे खत्री पैदा हुए। भगवान ने तो बनाए नहीं थे। यह महापुरुषों की कृपा से! इसलिए मैं समझ सकता हूं कि तुमको क्यों अड़चन होती है महापुरुषों की निंदा से। क्योंकि यही ऋषि-मुनि... । खत्री असली ऋषि-मुनियों की संतान हैं।
तुम कहते होः "एक बात समझ में नहीं आती कि आप अपनी बातों का आधार अक्सर महापुरुषों की निंदा क्यों बना लेते हैं!"
पहली तो बात यह है कि तुमने जिसे महापुरुष समझा है उसे मैं भी महापुरुष समझूं, यह कोई अनिवार्य है? तुमने तो एक से एक कमबख्तों को महापुरुष समझा हुआ है। अब तुम्हारे महापुरुष मानने से मुझ पर कोई सीमा नहीं लगती। मैं तो उनको वैसे ही देखता हूं जैसे वे हैं।
अब परशुराम को मैं कोई महापुरुष नहीं मान सकता। इससे महान हत्यारा खोजना मुश्किल। किस आधार पर महापुरुष समझो? इससे ज्यादा दुष्ट आदमी खोजना मुश्किल। अठारह बार पूरी पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया!
और यह दुष्ट तो हद दर्जे का रहा होगा। क्योंकि इसके बाप को शक हो गया इसकी मां पर। यह बापों का पुराना धंधा है। और बाप ने कह दिया कि जा मां की गर्दन काट ला! और यह परशुराम अपनी मां की गर्दन काट दिया। पूत के लक्षण पालने में। तभी क्षत्रियों को समझ जाना चाहिए था कि इससे बचो, यह आदमी खतरनाक है।

अब तुम कहते हो इनको महापुरुष कहूं! हालांकि हिंदू इनको अवतार मानते हैं। जो इनको अवतार मानते हैं वे केवल अपनी बुद्धि की सूचना देते हैं। थोड़ा तो सोचो, थोड़ा तो विचारो कि इस तरह के हत्यारे लोगों को तुम अवतार कहते हो! तुम्हारा इन्हें अवतार कहना भी तुम्हारी वृत्तियों के संबंध में खबर देता है। और दूसरी तरफ तुम यह भी कहे चले जाते हो कि यह हिंदू धर्म महान धर्म। अहिंसा परमो धर्म को मानने वाला धर्म। यह तो सबके प्रति उदार। और परशुराम तुम्हारे अवतार! और तुम सबके प्रति उदार, सहिष्णु--और परशुराम तुम्हारे अवतार!
तुम जिसको महापुरुष कहते हो, उससे तुम्हारे संबंध में खबर मिलती है। मेरी कसौटी पर जो महापुरुष नहीं है, वह नहीं है। चाहे लाखों लोगों ने उसे पूजा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं किसी महापुरुष की निंदा नहीं करता हूं, लेकिन अब जो मुझे महापुरुष दिखाई पड़ते ही नहीं और जो तुम्हारे जीवन के आधार बन गए हैं, जो तुम्हारे जीवन में जहर घोल रहे हैं, तुम्हें उस विष से मुक्त करने के लिए मुझे चोट करनी पड़ती है।
और निंदा शब्द भी, दीनदयाल खत्री, तुमने ठीक प्रयोग नहीं किया। आलोचना निंदा नहीं है। मैं जो भी कह रहा हूं वह तुम्हारे शास्त्रों में उल्लिखित है। मैं तो सिर्फ आलोचना कर रहा हूं।
तुम्हारे शास्त्र कहते हैं ब्रह्मा ने सृष्टि बनाई। वह परम पिता है, क्योंकि उसी ने सृष्टि को जन्माया, सो सृष्टि उसकी बेटी हुई। मगर ब्रह्मा अपनी बेटी पर मोहित हो गए। वे उसका पीछा करने लगे। बाप बेटी का पीछा करने लगा। बेटी घबड़ाई और भागी। बेटी भागने लगी, बाप भी भागने लगा। बेटी डर के मारे छिपने लगी। बेटी छिपी, गाय बन गई--छिपने के लिए गाय बन गई। मगर यूं कोई ब्रह्मा को धोखा दे सकता है! वे तत्क्षण सांड बन गए। बेटी भागी और हथिनी बन गई, वे हाथी बन गए। बेटी भागी और बंदरिया बन गई, वे हनुमानजी बन गए! बस वे पीछे पड़े ही रहे। यूं सारी सृष्टि पैदा हुई।
तुम्हारे शास्त्र कहते हैं। मैं कुछ निंदा नहीं कर रहा हूं। लेकिन गंदगी ऐसी है कि सिर्फ उल्लेख कर देना ही पर्याप्त है, आलोचना करने की भी जरूरत नहीं रह जाती। ये तुम्हारे ब्रह्मा हैं! और इनको तुम पूजते हो! और ये तुम्हारे जगत के स्रष्टा हैं, तो फिर तुम कैसे होओगे? फिर तुम्हारे आधार ही गलत हैं। तुम्हारी बुनियाद में ही कुछ जहर है।
तुम मुझसे कहते हो कि "आप आदमी बहुत मजेदार हैं, आपकी बातें सुन कर बड़ा मजा आता है। ऐसे किसी संत-महात्मा को सुन कर कभी नहीं हुआ पहले।"
वह इसीलिए आता है कि जो मैं कह रहा हूं वह सच-सच है। अब तुम चाहते हो कि सारा मजा खतम हो जाए, तो फिर बहुत संत-महात्मा हैं, कहीं भी सत्संग करो। उबाने के लिए तो न मालूम कितने संत-महात्मा हैं, जहां बैठ कर जम्हाइयां लो, जहां बैठ कर सोओ।
तुम्हें मेरी बात प्रीतिकर लग रही है; मगर किस कारण लग रही है, इसकी तुमने खोज नहीं की। तुम्हें मेरी बात प्रीतिकर लग रही है, रसपूर्ण लग रही है, उसका कारण यही है कि सत्य सदा रसपूर्ण है। मगर सत्य कठोर भी है; फूल जैसा कोमल भी, जो समझ पाएं; जो न समझ पाएं तो चट्टान जैसा कठोर भी। निंदा मैं किसी की भी नहीं कर रहा हूं।
तुम कहते होः "अच्छा होगा यदि आप अपनी बात विधायक रूप से हमारे सामने रखें।"
विधायक रूप से ही बात को सामने रख रहा हूं। लेकिन किसी भी चीज को बनाने के पहले बहुत सी चीजें मिटानी पड़ती हैं। इस कहानी को समझने की कोशिश करो।
मैंने सुना है, एक चर्च बहुत पुराना हो गया था। इतना जराजीर्ण कि हवा
का झोंका आता तो चर्च का भवन कंपता था। आकाश में बिजली कड़कती तो यूं लगता कि अब चर्च गिरा तब गिरा। बादल गरजते और चर्च थर्राता। चर्च की ऐसी हालत देख कर कोई चर्च में उपासना के लिए नहीं आता था। औरों की तो बात छोड़ दो, वह जो चर्च का पादरी था वह भी बाहर से ही दो फूल सीढ़ियों पर चढ़ा कर लौट जाता था। वह भी भीतर नहीं घुसता था। कौन जाने कब गिर जाए!
जब देखा कि कोई उपासक नहीं आता और पादरी तक भीतर नहीं जाता, तो मजबूरी में चर्च के ट्रस्टियों को बैठक बुलानी पड़ी। वह बैठक भी बाहर हुई, चर्च से

बहुत दूर, क्योंकि भवन गिरे तो बाहर भी काफी दूर तक उसके परिणाम होंगे। और ट्रस्टियों की इस बैठक में चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहला प्रस्ताव कि बहुत मजबूरी है कि हमें अपने बाप-दादाओं के द्वारा बनाए गए पुराने चर्च को गिराना पड़ेगा; और नया चर्च बनाना जरूरी हो गया है।
पुराने से ऐसा आकर्षण! पुराने से ऐसा मोह! पुराने का बंधन ऐसा! मगर पुराना ही जंजीर है। और जो पुराने को नहीं तोड़ पाता वह नया नहीं हो पाता। बड़ी मजबूरी में, बड़ी उदासी में उन्होंने यह पहला प्रस्ताव पास किया
कि नया चर्च बनाना होगा, यह हम निर्णय लेते हैं। दुख है हमें कि पुरानी चर्च की इमारत को गिराना पड़ेगा, मगर मजबूरी है। हे प्रभु! क्षमा करना। दूसरा प्रस्ताव उन्होंने तत्क्षण कियाः लेकिन यद्यपि हम पुराने चर्च
को गिरा रहे हैं, लेकिन ठीक पुराने चर्च की जगह ही और पुराने चर्च के स्थापत्य के अनुसार ही, ठीक पुराने चर्च के नक्शे से ही नया चर्च निर्मित किया जाएगा। वह बिल्कुल पुराने चर्च जैसा होगा।
और तीसरा प्रस्ताव उन्होंने किया कि नये चर्च में कोई भी नयी चीज उपयोग नहीं की जाएगी। पुराने चर्च के ही खिड़की, द्वार-दरवाजे, ईंटें, पत्थर, उनका ही उपयोग किया जाएगा।
और उन्होंने चौथा प्रस्ताव भी सर्व-सम्मति से पास किया कि जब तक नया चर्च न बन जाए, हम पुराने को गिराएंगे नहीं।
अब यह नया चर्च बनेगा कैसे? दीनदयाल खत्री, तुम्हीं बताओ। यह नया चर्च बनेगा कैसे? पुराने को गिराना होगा।
मेरी बातें विधायक हैं। मगर वे तभी विधायक हो सकती हैं जब पहले पुराने को गिराने की, विध्वंस करने की तैयारी हो। तुम चाहोगे सिर्फ विधायक बातें हों। तुम चाहते हो सिर्फ नये चर्च को बनाने की बातें हों, पुराने चर्च को गिराने की बात न उठाई जाए।
तुम्हारी सलाह बड़ी नेक, मगर मैं मान नहीं सकता, क्योंकि मैं अंधा नहीं हूं। वह पुराना चर्च पहले गिराना होगा, तभी नया चर्च बन सकता है। और कोई जरूरत नहीं है कि पुराने चर्च की ही चीजें उपयोग की जाएं। क्योंकि अगर पुराने चर्च की ही चीजें उपयोग करनी हैं, वही जराजीर्ण चर्च फिर बन कर खड़ा हो जाएगा। अगर नया कुछ भी उपयोग नहीं करना है, पुराने का ही पूरा उपयोग करना है, तो काहे को मेहनत करते हो? वह फिर हिलेगा। फिर बिजलियां आएंगी और कंपेगा। मगर इस तरह की मूर्खता होती है।
मैंने सुना है, एक सरकारी दफ्तर में कोई सौ वर्ष से फाइलें इकट्ठे होते-होते इतनी फाइलें इकट्ठी हो गईं कि दफ्तर में पता लगाना ही मुश्किल हो कि कौन सी फाइल कहां है। और हिंदुस्तानी दफ्तर! एक ही फाइल हो तो उसका पता लगाना मुश्किल है। वहां लाखों फाइलें इकट्ठी हो गईं।
और हिंदुस्तानी दफ्तर फाइलें इकट्ठी करने में जैसा रस लेते हैं! जितनी बड़ी फाइल की थप्पी जिसकी टेबल पर हो वह उतना ही बड़ा आदमी। फाइल की थप्पी बड़ी होती जाती है, आदमी छिपता जाता है, उतना ही बड़ा आदमी! आखिर में फाइलें ही रह जाती हैं, आदमी का कुछ पता ही नहीं चलता। उससे कई लाभ हैं, फाइलों के पीछे जो उसे करना हो करता है। टाइपिस्ट से प्रेम करे, कि चाय पीए, कि पैर पसार कर सोए। फाइलें कवच का काम करती हैं। पीछे कुछ भी होता रहे। रिश्वत ले, दे, जो करना हो करे--फाइलें बचाव करती हैं। और फाइलों का ढेर उसकी गंभीरता बढ़ाता है। वह चलता भी है तो अकड़ से चलता है कि जरा देखो तो फाइलें! सारा बोझ मैं ही ढो रहा हूं। संसार, कौन कहता है, कछुए पर टिका है? मुझ पर टिका है!
उस दफ्तर में प्रवेश करना तक मुश्किल हो गया था। जो प्रवेश कर जाता उसको निकलना मुश्किल हो जाता। जो निकल जाता उसको प्रवेश करना मुश्किल हो जाता। अंततः यह निर्णय किया गया कि अब ये सौ साल पुरानी फाइलें, इनको इकट्ठा रखने से क्या फायदा है? तो दफ्तर के प्रधान ने कहा, अब इनको जला दिया जाए। लेकिन जलाने के पहले एक बात ख्याल रखी जाए--सबकी कापी कर ली जाए। देखते हो बुद्धिमानी! दीनदयाल खत्री, देखते हो? इसको कहते हैं विधायकता। क्या विधायक कदम! अरे कभी जरूरत पड़ जाए, फिर? तो सबकी कापी कर लेनी चाहिए जरूरी। पुरानी तो जला दो, मगर कापियां कर लो।
मैं इस तरह की मूढ़ताओं में भरोसा नहीं करता।

जमीन साफ करनी पड़ेगी। पुरानी इमारतें हटानी होंगी। और तभी नये का निर्माण हो सकता है। विध्वंस निर्माण का अनिवार्य अंग है। बिना विध्वंस के कोई निर्माण कभी नहीं होता है। और जो विध्वंस से डरते हैं वे कभी निर्माण नहीं कर पाते। वे निर्माण की बकवास जितनी चाहे कर लें।
इस देश में खूब रचनात्मक कार्यक्रमों की बातें होती हैं। बस बातचीत
ही बातचीत है। रचनात्मक कार्यक्रम! आजादी के तैंतीस साल गुजर गए, रचनात्मक कार्यक्रम की कितनी योजनाएं, कितनी बकवास! रचना सिर्फ एक होती है--बच्चे पैदा होते हैं। आजादी के वक्त जितनी संख्या थी, अब दुगुनी संख्या है। दुगुनी समस्याएं खड़ी हो गईं।
बस एक ही रचना का काम चलता है इस देश में। होड़ लगी है कि तुमने एक दर्जन बच्चे पैदा किए, दो दर्जन बच्चे पैदा करके बताऊंगा! अरे मैं भी मर्द हूं! यहां मर्द की एक ही पहचान है--कितने बच्चे? यहां स्त्री के भी उर्वरा होने की एक ही पहचान है--कितने बच्चे? जब तक कि पूरा का पूरा ट्रक भर कर तुम अपने बच्चों को पिकनिक कराने न ले जा सको, तुम भी क्या आदमी हो! मतलब लोगों को शक हो जाएगा कि नसबंदी तो नहीं करवा ली! और यहां लोग बहुत डरते हैं कि जिसकी नसबंदी हो गई वह तो खतम ही समझो। अब बचा ही क्या? असली चीज तो निकल ही गई, अब तो घास-फूस रह गया। अब तो इनका एक ही उपयोग है कि कर दो किसी खेत में खड़ा, गांधी टोपी लगा दो, कुर्ता पहना दो, चूड़ीदार पाजामा जमा दो, चिड़ियों इत्यादि को भगाते रहेंगे, कौवों को डराते रहेंगे। अब इनका उपयोग ही क्या, नसबंदी हो गई!
मैं रायपुर में प्रोफेसर था। यूं सांझ को घूमने निकला था कि स्वामी करपात्री महाराज एक जगह व्याख्यान दे रहे थे। तो मैं जरा खड़ा हो गया कि सुन लूं एकाध मूर्खतापूर्ण बात और फिर आगे बढूं। और क्या संयोग कि मैं खड़ा हुआ और उन्होंने कहा... क्या समझा रहे थे वे लोगों को... कि जिस पानी में से बिजली निकाल ली जाती है वह पानी बेकार, उसको पीना मत। उस पानी की असली शक्ति तो निकल ही गई, कुंडलिनी तो निकल ही गई! उसको सींचना भी मत। नहीं तो जो होगी भी फसल, वह बांझ। देखने को गेहूं रहेगा, भीतर कुछ भी नहीं।
और जनता सिर हिला रही थी कि बात तो सच्ची है। अरे बिजली ही जब निकल गई
तो अब क्या, फोकट पानी बचा!
अब ये बुद्धू... नहीं-नहीं, महापुरुष! नहीं तो दीनदयाल खत्री नाराज हो जाएंगे। नहीं, कभी निंदा नहीं करनी चाहिए! अरे निंदा तो दूर, आलोचना भी नहीं करनी चाहिए। ऐसी-ऐसी गजब की खोजें कर रहे हैं, बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को मात दे रहे हैं! क्षमा करना, मैंने बुद्धू कह दिया, वह ठीक नहीं।
जीवन को रूपांतरित करना हो तो पहले विध्वंस करना ही होगा। सदियों- सदियों के सड़े-गले कचरे को आग लगानी होगी। जमीन साफ करनी होगी। तभी उसमें नयी फसल उगाई जा सकती है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आपने मेरी आंखें खोल दीं। मैं अपनी झोली में धर्मशास्त्र रखे हुए हूं, मुझे और अधिक जूते उसमें नहीं डालने। आप अगर मुझ वृद्ध को स्वीकार लें, संन्यास में दीक्षा दें और समाधि का अनुभव कराएं, तो मैं इस धर्मशास्त्रों से भरी झोली को आज ही फेंक दूं। मैं आपके सत्संग में स्वाध्याय, संन्यास और मौन की प्रक्रिया सीखना चाहता हूं। मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि आप मुझे गरीबदास झोलीवाले का पुराना नाम न दें, मैं अब गरीबी और झोली दोनों से मुक्त होना चाहता हूं।

गरीबदास झोलीवाले, यह तो तुमने गजब कर दिया! चमत्कार कहो। क्योंकि इस देश में आदमी आंखें इतनी आसानी से नहीं खोलते। खोलने की कहो तो और भींच कर बंद कर लेते हैं।
तुम ठीक कहते हो कि "मैं अपनी झोली में धर्मशास्त्र रखे हुए हूं।"
सभी धर्मशास्त्रों को ही ढो रहे हैं। और अच्छा ही है कि झोली में रखे
हो, सो छुटकारा आसान! लोगों की तो खोपड़ियों में घुस गए हैं। वहां से निकालने में बड़ी मुसीबत है। बड़ी सर्जरी करनी पड़ती है। पहले तो अपनी खोपड़ी में कोई छेद नहीं करने देता। किसी तरह अगर खोपड़ी में खिड़की बना भी लो--वही मैं करता हूं, संन्यासियों की खोपड़ी में खिड़की बनाता हूं--फिर उस खिड़की

में से धीरे-धीरे शास्त्र निकालने पड़ते हैं। कठिन काम है, क्योंकि शास्त्र भीतर जकड़े हुए हैं। उन्होंने बहुत जाला फैला रखा है। तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हारे शास्त्र झोली में हैं। झोली तो एक झटके में खतम कर दी जाएगी। शायद इसीलिए तुम्हारी इतनी जल्दी आंखें भी खुल गईं। सौभाग्यशाली हो तुम।
और तुम कहते होः "आप अगर मुझ वृद्ध को स्वीकार लें... ।"
तुम्हारी यह आकांक्षा, तुम्हारी यह तैयारी, स्पष्ट कहती है कि तुम वृद्ध नहीं हो। शरीर से वृद्ध कोई हो... । यह चित्त की युवावस्था है। यह हिम्मत, यह साहस, बुढ़ापे में भी! भीतर बहती हुई हिम्मत, यौवन, नये को अंगीकार करने की जोखिम, तुम्हारे वृद्ध होने का प्रमाण नहीं देती। शरीर से बूढ़े होना कोई बात नहीं, वह तो स्वाभाविक है। लेकिन इस देश का अभागापन ऐसा है कि यहां बच्चे पैदाइश से ही बूढ़े होते हैं। नहीं होते तो मां-बाप, शिक्षक, धर्मगुरु, सब मिल-जुल कर उनको बूढ़ा बनाने में लग जाते हैं। बच्चों से लोग अपेक्षा करते हैं कि बूढ़ों की तरह व्यवहार करें। और जो बच्चा बूढ़ों की तरह व्यवहार करता है, बड़ी प्रशंसा पाता है कि बड़ा शिष्टाचारी है।
मुझे यह सौभाग्य बचपन से नहीं मिला। किसी ने कभी मेरी प्रशंसा नहीं की।
मेरे एक अध्यापक, हर वर्ष, ब्राह्मण थे तो श्रावण के महीने में राखी बांधने के समय घर-घर जाकर राखी बांधते थे। वे मुझे भी राखी बांधते थे। जब मुझे राखी बांधते थे तो मेरे पिता कहते थे कि उनके पैर छुओ और यह रुपया उनको भेंट करो। एक बार यूं हुआ कि वे आए, मेरे पिता मौजूद न थे। उन्होंने राखी बांधी, मैं झटके से उठा और उनका हाथ पकड़ कर अपना पैर छुआ दिया।
वे तो एकदम भनभना गए। एकदम क्रुद्ध हो गए। मैंने कहा, यह भी क्या बात! इतनी दफे मैंने छुआ, तुमने मजा लिया। एकाध बार मुझको भी मजा लेने दो। और संयोग की बात है कि आज मेरे पिता हैं नहीं, नहीं तो वे एकदम मेरे पीछे पड़ जाते हैं कि पैर छुओ। और किसी को पता न चलेगा, क्योंकि कोई है ही नहीं, मैं हूं और आप हैं। नाहक क्रुद्ध हो रहे हो! अगर क्रुद्ध हुए तो पूरे गांव को खबर कर दूंगा।
बोले कि भई ठीक, तू भी ठीक कहता है। अब जो हुआ सो हुआ। किसी से कहने की कोई जरूरत नहीं।
और मैंने कहा, आप आइंदा ख्याल रखना। अब मुझे राखी मत बांधना। क्योंकि मैंने मजा ले लिया। अब यह मजा मैं नहीं छोड़ सकता।
वे मुझे डर-डर कर देखते थे कक्षा में भी, और मेरी तरफ नजर रखते। मैं भी आंख से जवाब दे देता कि ख्याल रखना। हालांकि मैंने पूरे गांव में खबर धीरे-धीरे उड़ा दी। वे मुझसे पूछने लगे कि लोगों को कैसे पता चल रहा है? मैंने कहा, अजीब! इस गांव में कई लोग मालूम होता है विचार पढ़ना जानते हैं। मैं किसी से कह नहीं रहा, आप किसी से कह नहीं सकते; पता नहीं कैसे लोगों को पता चल रहा है! लोग मुझसे पूछते हैं तो मजबूरी में मुझे सत्य के लिए हां तो भरना ही पड़ता है कि हां यह बात हुई है, इस तरह की घटना घटी है।
बच्चों को बचपन से ही आज्ञाकारी बनाने की ऐसी चेष्टा चलती है कि धीरे- धीरे वे बेचारे आज्ञाकारी गुलाम ही हो जाते हैं। फिर उनकी सामर्थ्य ही टूट जाती है। वे बूढ़े ही हो जाते हैं--असमय बूढ़े हो जाते हैं।
यह तो सौभाग्य की बात है गरीबदास कि तुम वृद्ध हो, फिर भी मेरी चोटों
को सह सके; न केवल सह सके, बल्कि समझने की भी तुमने चेष्टा की। और तुम राजी भी हो संन्यास के लिए। लेकिन वहां कुछ बातें तुम्हें ख्याल में रखनी होंगी।
तुम कहते होः "आप संन्यास में दीक्षा दें और समाधि का अनुभव कराएं, तो मैं इन धर्मशास्त्रों को आज ही फेंक दूं।"
समाधि का अनुभव शर्त से नहीं हो सकता। जब तक शर्त है तब तक समाधि संभव नहीं। संन्यास में दीक्षा देने को मैं राजी हूं। लेकिन इसके पहले कि तुम शास्त्रों को जलाओ, तुम्हें शर्त को जलाना पड़ेगा। यह शर्त कि आप मुझे समाधि का अनुभव कराएं... । कोई किसी को समाधि का अनुभव नहीं करा सकता। इशारा कर सकता हूं, संकेत दे सकता हूं। करना तो तुम्हीं को होगा। और अगर शर्त पहले से तुम्हारे मन में रही तो तुम न कर पाओगे। तुम्हारी शर्त ही

बाधा बन जाएगी। समाधि तो बेशर्त अनुभव है। अगर तुम्हारी यह अपेक्षा रही कि अब समाधि का अनुभव हो, अब समाधि का अनुभव हो, अभी तक नहीं हुआ! तीन दिन हो गए, तेरह दिन हो गए, तीन साल हो गए, अभी तक नहीं हुआ! बस वहीं अड़चन हो जाएगी। एक बड़ी पुरानी बोधकथा है--जो मुझे प्रीतिकर है--कि नारद स्वर्ग जा रहे हैं, अपनी वीणा पर गीत गुनगुनाते। उन्होंने देखा एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध संन्यासी माला फेर रहा है। रुक गए। कहा कि स्वर्ग जा रहा हूं, परमात्मा से कुछ पूछना हो तो पूछ आऊंगा तुम्हारे लिए।
संन्यासी ने कहा कि जरा पूछ आना कि मेरी मुक्ति में कितनी देर और है? काफी समय हो गया। सुना था मैंने कि देर है, अंधेर नहीं। लेकिन देर इतनी हुई जा रही है कि लगता है अंधेर है। तीन जन्म हो गए, तीन जन्म, माला फेरते- फेरते, राम नाम जपते-जपते। आखिर धैर्य की भी एक सीमा होती है। जरा पूछ आना कि कितनी देर और?
जिस ढंग से उसने कहा उस ढंग में जाहिर है कि यह आदमी अभी भी व्यवसाय की भाषा में सोच रहा है। अभी भी लेन-देन है कि इतनी देर हो गई, इतना श्रम किया है, अब फल मिलना चाहिए। और ध्यान की गहराई तो फलाकांक्षा से मुक्त होने पर होती है। समाधि तो तभी फलित होती है जब सारी फलाकांक्षा तिरोहित हो गई होती है, जब पाने का कोई इरादा ही नहीं होता। यह उलटबांसी है समाधि की। जब पाने का कोई भी इरादा नहीं, जब बात ही बिसर गई, जब समाधि अपने में ही आनंद बन गई, अपने में ही साध्य हो गई, साधन न रही, तभी आकाश बरसता है, तभी अमृत की झरी लग जाती है, और तभी हजार-हजार दीये जलते हैं, और तभी खिलते हैं भीतर के कमल, उसके पहले नहीं।
नारद हंसे और उन्होंने कहा, जरूर पूछ आऊंगा।
दूसरे वृक्ष के नीचे एक युवा संन्यासी नाच रहा था। रहा होगा मेरा ही संन्यासी। कहानी कितनी ही पुरानी हो, इससे क्या फर्क पड़ता है! मगर मैं अपने संन्यासियों को पहचानता हूं, चाहे पुराने हों, चाहे नये हों। क्योंकि मेरे अलावा वह किसी और का संन्यासी हो ही नहीं सकता। वह अपना इकतारा लिए नाच रहा था। नारद थोड़ी देर खड़े रहे, वह रुका ही नहीं, उसने अपनी धुन छोड़ी ही नहीं। नारद ने खुद ही पूछा कि भाई, मैं जा रहा हूं स्वर्ग, तुम्हारे पड़ोस में बैठे हुए वृद्ध संन्यासी ने पूछा है कुछ, तुम कहो तो तुम्हारे लिए भी पूछ आऊं।
वह युवक संन्यासी बोला, व्यर्थ बाधा न दो। आगे बढ़ो! फिजूल की बकवास न करो! किसको जाना है स्वर्ग? और किसको पड़ी परमात्मा पाने की? यहां मैं मजे में हूं, मस्ती में हूं। शर्म भी नहीं आती बेहूदी बातें पूछते! मुझे कुछ पूछना नहीं, मुझे कुछ चाहना नहीं। मेरी कोई चाह नहीं। मैं आनंदित हूं। आनंदित आदमी की क्या चाह हो सकती है?
नारद लौटे। उस बूढ़े संन्यासी को कहा कि मैंने पूछा था; उन्होंने कहा,
कम से कम तीन जन्म और लगेंगे।
बूढ़े संन्यासी ने माला फेंक दी और कहा, भाड़ में जाए बैकुंठ! तीन जन्म?
सो अब तक जो मैंने मेहनत की, व्यर्थ गई। मैं भी पागल था, जो यह माला बैठा पकड़े, बुद्धू था मैं! अरे कुछ भोग ही लेते संसार, कुछ मजा-मौज कर लेते। सारी दुनिया मजा-मौज कर रही है, एक मैं बुद्धू की तरह यहां बैठा राम-राम जप रहा हूं। और तीन जन्म लगेंगे! न लाज है, न संकोच है। कहीं कोई न्याय नहीं।
वह तो इतना भन्नाया कि नारद को डर लगा कि उनकी वीणा वगैरह न तोड़ दे।
और फिर वे युवा संन्यासी के पास गए और कहा कि भई, हालांकि तूने नहीं पूछा था। और अब तो मुझे बहुत डर लग रहा है, क्योंकि जिसने पूछा था उसका उत्तर दिया, उसने माला फेंक दी और उसने ऐसी बातें कहीं जो नहीं कहनी चाहिए। कहने लगा ऐसी की तैसी बैकुंठ की! यह बात शोभा नहीं देती। तूने तो पूछा भी नहीं था, मगर मेरी गलती कि मैं तेरे लिए भी पूछ आया। और जो उन्होंने कहा है, अब मैं डरता हूं कि कहूं कि न कहूं।
वह युवा संन्यासी तो नाचता रहा। उसने कहा, कहना हो भाई तो कह दे, न कहना हो तो न। तू अपना काम कर, हमें अपना काम करने दे। किसको पड़ी है कि क्या तू पूछ आया और क्या उत्तर लाया!

नारद ने कहा, तो फिर हम कहे देते हैं। मैंने पूछा तो उन्होंने कहा, जिस वृक्ष के नीचे वह युवा संन्यासी नाच रहा है, उसमें जितने पत्ते हैं उतने ही जन्म उसको लगेंगे।
वह युवा संन्यासी तो और त्वरा से नाचने लगा। उसके चेहरे पर आनंद ही आनंद! नारद को तो भरोसा न आया। उसने कहा, तू आनंदित किसलिए हो रहा है? समझा कि नहीं? कोई अफीम वगैरह तो नहीं खाता? अरे होश में आ! कितने इस पर पत्ते हैं, कुछ गिनती तो कर!
लेकिन उस युवा संन्यासी ने कहा, अरे बस इतने पत्ते! तो पा ही लिया, देर क्या? संसार में कितने पत्ते हैं! इसी जंगल में कितने पत्ते हैं! एक वृक्ष के पत्ते। अनंत वृक्ष हैं। इतने से पत्ते, गिनती करने की जरूरत क्या है? कौन समय खराब करे! पा ही लिया! तू फिक्र छोड़। तू आगे जा भाई, तू बेकार बरबाद न कर हमारा समय। मिल ही गया। यूं हमें कोई चाह न थी। यूं हमने पूछा भी न था। यूं हमने मांगा भी न था। मगर उसकी कृपा अपरंपार है।
और कहानी कहती है कि वह युवक उसी क्षण मुक्त हो गया।
ऐसी बेशर्त, ऐसी फलाकांक्षा-रहित चित्त की दशा चाहिए। समाधि तो घट सकती है। समाधि कोई अनहोनी बात नहीं। ध्यान भी लगेगा, समाधि भी आएगी। मगर शर्त नहीं।
मेरा संन्यास बेशर्त है। न मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम्हारी योग्यता क्या, पात्रता क्या। मेरी तरफ से भी बेशर्त है। मैंने कभी किसी से नहीं पूछा कि भई तू पात्र भी है! बल्कि लोग खुद ही मुझसे पूछते हैं डरते हुए कि आप हमें संन्यास तो दे रहे हैं, मगर हम पात्र नहीं। हम शराब पीते हैं।
मैं कहता हूं, कोई फिक्र न करो। संन्यास बड़ी चीज है। ऐसी छोटी-मोटी चीजों से नहीं अटकती। शराब पीते हो, पीओ; संन्यास में इससे क्या बाधा पड़ती है? अगर संन्यास में कुछ बल है तो शराब चली जाएगी। क्यों यह शर्त पहले से लगानी कि शराब पीना छोड़ो? यह तो संन्यास की निर्बलता होगी।
कोई तो बेचारे यही कहते हैं कि अब आप दे तो रहे हैं संन्यास, मगर धूम्रपान की आदत है।
अब पागल हो गए हो! अरे धुआं कुछ परमात्मा का दुश्मन है? और धुआं को भीतर ले गए, बाहर लाए, इसमें क्या अड़चन है? इससे संन्यास का क्या विरोध? यूं ही समझो कि जरा गलत ढंग का प्राणायाम कर रहे हो, और क्या! है तो प्राणायाम ही, मगर तुम्हें शुद्ध वायु पसंद नहीं, तुम्हारी मौज। पहले धुआं मिलाते हो उसमें, फिर प्राणायाम करते हो। वैसे भी अब हवा में इतना धुआं है कि जो धूम्रपान नहीं करते वे भी करीब-करीब धूम्रपान कर रहे हैं। इतनी कारें चल रही हैं, ट्रक चल रहे हैं, बसें चल रही हैं, सड़कों पर इतना धुआं है।
वैज्ञानिकों ने खोज की है कि न्यूयार्क की सड़कों पर इतना धुआं है, इतना विषाक्त धुआं है, कि वे चकित हैं कि आदमी जिंदा कैसे है! इतना धुआं, इतना विषाक्त वातावरण, आदमी को मर ही जाना चाहिए। मगर आदमी बड़ा हिम्मतवर प्राणी है। वह हर चीज में अपने को समायोजित कर लेता है। यही तो उसकी खूबी है। और जानवर मर गए। बहुत जानवर इस जमीन पर थे जो अब नहीं हैं। उनमें खराबी एक थी कि वे समायोजित नहीं हो सकते थे नयी परिस्थिति के साथ। जब परिस्थितियां बदलीं, वातावरण बदला या मौसम बदला या कोई दुर्घटना हुई, भूचाल हुआ, भूकंप हुआ, पहाड़ निकले, समुद्र बने, वे बेचारे मर गए। नयी परिस्थिति में वे अपने को न सम्हाल पाए। आदमी की यही तो खूबी है कि हर परिस्थिति में अपने को सम्हाल लेता है, हर मौसम में, हर वातावरण में वह अपने को राजी कर लेता है।
तो मैं उनसे कहता हूं, क्या फिक्र करते हो! थोड़ा-बहुत धुआं निकाला, कोई अड़चन नहीं। ज्यादा ही इसको धार्मिक बनाना हो तो जब भीतर ले गए तब कहा राम, जब बाहर ले गए तब कहा राम। सो माला हो गई, जप हो गया। मगर इससे कुछ संन्यास में बाधा नहीं।
मैं कोई शर्त नहीं लगाता। जुआरी आए, शराबी आए, मैं कोई शर्त नहीं लगाता। और न ही मैं चाहता हूं कि मुझ पर कोई शर्त लगाई जाए।
गरीबदास, मैं तो तैयार हूं संन्यास में तुम्हें दीक्षा देने को-- भलीभांति जानते हुए कि जो झोले में शास्त्र हैं वे सिर्फ झोले में ही नहीं

होंगे, तुम्हारे भीतर भी चले ही गए होंगे। दुष्ट-संग का असर तो होता ही है।
इतने दिन झोले में रहे तो कुछ न कुछ जहर तुम्हारे भीतर गया होगा।
फिर तुम महंत हो। अब महंत होना कोई आसान काम थोड़े ही है। कई तरह की विकृतियां चाहिए महंत होने के लिए। महंत होने के लिए विक्षिप्तताएं चाहिए।
लेकिन गरीबदास यूं हिम्मतवर आदमी मालूम होते हैं। अब तक जो उन्होंने प्रश्न पूछे थे, उनमें हमेशा दस्तखत करते थे--महंत गरीबदास झोलीवाले। आज उन्होंने महंत छोड़ दिया। यह शुभ लक्षण है। मगर शर्तबंदी भी छोड़ दो। समाधि घटेगी। जब घटनी है तब घटेगी। ऐसी जल्दी भी क्या है? ऐसा अधैर्य भी क्या है? यह आकांक्षा भी हम क्यों रख कर चलें? यह वासना भी तो आखिर वासना ही है। और समाधि निर्वासना में घटती है।
तुम कहते हो कि "आप समाधि का अनुभव कराएं, तो मैं इस धर्मशास्त्रों से भरी झोली को आज ही फेंक दूं।"
झोली तो फेंको! रही समाधि, पीछे निपट लेंगे। इस कचरे को तो हटाओ, भूमि
तो साफ करो, फिर बीज पीछे बो लेंगे।
तुम कहते होः "आपके सत्संग में स्वाध्याय, संन्यास और मौन की प्रक्रिया सीखना चाहता हूं।"
सहज ही घटित हो जाएगा सब। क्योंकि स्वाध्याय का यहां तो वही अर्थ है
जो स्वाध्याय का होना चाहिएः स्वयं का अध्ययन। यहां कोई गीता, कुरान, बाइबिल का अध्ययन स्वाध्याय नहीं है। स्वयं का अध्ययन!
और वही मौन की प्रक्रिया है। जैसे-जैसे तुम स्वयं के अध्ययन में लीन होते हो, जैसे-जैसे स्वयं का निरीक्षण करते हो, साक्षी बनते हो, अपने आप मौन होते चले जाते हो।
और जो व्यक्ति मौन को उपलब्ध हो जाता है, जो अपने भीतर शून्य को पा लेता है, उसके जीवन में संन्यास।
दीक्षा तो केवल प्राथमिक चरण है, सिर्फ पहला कदम है, सिर्फ उदघोषणा है
कि अब मैं स्वयं को खोजने चलता हूं। निर्णय है कि अब से मेरा जीवन स्वयं की खोज होगा। लेकिन जिस दिन व्यक्ति अपने भीतर स्वाध्याय के द्वारा मौन को अनुभव कर लेता है उस दिन संन्यास का फूल खिलता है। तब इस संसार के कोलाहल में जीता है, लेकिन मौन। तब बाजार में जीता है, लेकिन मौन। तब भीड़-भाड़ में जीता है, लेकिन एकांत में ही होता है। उसका एकांत अखंडित होता है। उसका मौन अखंडित होता है। कोई घटना उसके मौन को नष्ट नहीं कर सकती और कोई भीड़-भाड़ उससे उसके एकांत को नहीं छीन सकती। वह हमेशा अपने भीतर के शून्य में विराजमान होता है। वही असली मंदिर है।
तुम कहते होः "मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि आप मुझे गरीबदास झोलीवाले
का पुराना नाम न दें।"
तुम प्रार्थना न भी करो, तो भी मैं यह नाम तो तुम्हें दे नहीं सकता। तुम गरीब हो नहीं। कोई गरीब नहीं है। जिसके भीतर भगवान विराजमान हो वह कैसे गरीब हो सकता है? ईश्वर शब्द का अर्थ ही ऐश्वर्य होता है। ऐश्वर्य से ही वह शब्द बना है। और हम सब के भीतर, आज संभावना सही, कल सत्य हो सकता है। आज बीज सही, कल वसंत आ सकता है, फूल ही फूल खिल सकते हैं। भगवत्ता जिनके भीतर है, वे कैसे गरीब? तुम्हें कोई नाम दूंगा जो भगवत्ता का स्मरण कराए। तुम इसकी चिंता न करो। नाम तो मैं प्यारे चुनता हूं, क्योंकि नाम तुम्हारे भविष्य की दिशा का संकेत बनते हैं।
तुम कहते होः "मैं अब गरीबी और झोली दोनों से मुक्त होना चाहता हूं।"
तब तुम ठीक जगह आ गए हो। यहां न गरीबी का समर्थन है, न झोली का समर्थन है। मेरे संन्यासी भिक्षु नहीं। मेरे संन्यासी दीन-दरिद्रता में भरोसा नहीं करते।
भगवत्ता को जीना है। और भगवत्ता से बड़ी कोई समृद्धि नहीं। भगवत्ता हमारा साम्राज्य है। और प्रत्येक व्यक्ति को यूं जीना है जैसे शहंशाह हो।
शहंशाह भी मात हो जाने चाहिए, यूं जीना है। बाहर की बादशाहत भी कोई बादशाहत है? भीतर की बादशाहत ही असली बादशाहत है।
आज इतना ही।